साठोत्तर हिन्दी सिने-गीत

वस्तु एवं शिल्प

हैदराबाद विश्वविद्यालय की पी-एच. डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए
प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

१९८४

अनुसंधित्सु :
दयाकृष्ण गोयल, एम.ए.

निर्देशक :
डॉ. चन्द्रभान रावत
एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्
प्रोफेसर एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद–५०० ००१

DECLARATION

It is declared that this work has been originally carried out by the undersigned, under the supervision of Professor & Head Department of Hindi, Central University of Hyderabad Dr.Chandra Bhan Rawat and that this has not been submitted for any degree to any other University.

HYDERABAD (INDIA)

DAYA KRISHAN GOEL
Senior Research Fellow,
Department of Hindi,
University of Hyderabad
HYDERABAD - 500 001.

UNIVERSITY OF HYDERABAD.
Acc. No. 178
Date 27 JAN 86.
LIBRARY

CERTIFICATE FROM THE RESEARCH SUPERVISOR

This is to certify that this thesis entitled " SAATHOTAR CINE-GEET VASTU EVAM SHILPA " is a record of Research Work done by Sri Daya Krishana Goel during the period of his whole time study under my direction and that this thesis has not previously formed the basis for the award to the candidate of any degree or diploma or associateship of other similar title.

Date: 27-2-1984.

Place: Hyderabad A.P.

Signature of Supervisor.

Professor & Head Dept. of Hindi
University of Hyderabad,
HYDERABAD-A.P.

विषय-सूची

प्राक्कथन 1-9

खण्ड - एक [विषय-प्रवेश] 10-47

अध्याय : 0.		विषय-प्रवेश 10-19
	0.1	सिनेमा कला : संधारणा 20-25
	0.2	हिन्दी सिने गीत : यात्रा एवं परिदृश्य 26-47

खण्ड - दो [साठोत्तर परिवेश] 48-144

अध्याय : 1.		युग-परिवेश 48-144

खण्ड - तीन [गीत-वस्तु] 145-355

प्रास्ताविक 145-146

अध्याय : 2[अ]		प्रेम-काम 147-228
	2[ब]	रूप-सौन्दर्य 229-260
अध्याय : 3		समाज-जीवन 261-355

खण्ड - चार [शिल्प-चेतना] 356-517

प्रास्ताविक 356-360

अध्याय : 4		गीत-शिल्प 361-408
अध्याय : 5		भाषा-शिल्प 408-517

खण्ड - पाँच [उपसंहार] 518-522

उपसंहार 518-522

परिशिष्ट - 1 : चलचित्र सूची 523-530

परिशिष्ट - 2 : सिने गीतकारों की सूची 531-53

परिशिष्ट - 3 : सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची 533-542

परिशिष्ट - 4 : सिने गीत रिकार्डिंग 543-54

अनुक्रमणिका

अ नु क्र म णि का

प्राक्कथन 1–9

खण्ड – एक [विषय प्रवेश] 10-47

अध्याय : 0. विषय प्रवेश 10-19

0.1 सिनेमा कला : संधारणा 20-25

0.2 हिन्दी सिने गीत : यात्रा एवं परिचय 26-47

खण्ड – दो [साठोत्तर परिवेश] 48-144

अध्याय : 1. युग-परिवेश 48

1.0 प्रास्ताविक 48

1.1 उदय 52

1.2 युग-सन्दर्भ 55

1.2.1 पाक-चीन संघर्ष 55

1.2.2 युद्ध 57

1.2.3 चौथा आम चुनाव 58

1.2.4 योजना 61

1.3 अर्थ संकट 62

1.3.1 अकाल 62

1.3.2 भ्रष्टाचार 63

1.3.3 आर्थिक शोषण 66

1.4 आधुनिक दृष्टि 66

1.4.1 आधुनिकता 67

1.4.2 आधुनिकता के लक्षण 68

1.4.3 आस्तिकता 71

1.4.4 नवीन नैतिकता 72

1.5 मूल्य संक्रमण 75

1.5.1 प्रेम सम्बन्ध 77

1.6 अस्तित्व संकट 82

1.6.1 मृत्यु-बोध 82

1.6.2 व्यर्थता-बोध 86

1.7 साठोत्तरी सिने आन्दोलन 89

1.8 परम्परा - टूटना - तोड़ना 90

1.9 रचना प्रक्रिया : सिने गीत
अनुभव बनाम अनुभूति 91

1.9.1 सिने गीतों में मानवीय सन्दर्भ 92

1.10 देश सन्दर्भ 93

1.10.1 नगर सन्दर्भ-नगर 97

1.10.2 स्नायविक तनाव और शहर 101

1.10.3 घर 103

1.10.4 सड़क 104

1.10.5 बस : रेलगाड़ी और स्टेशन 104

1.10.6 रेलगाड़ी 105

1.10.7 प्लेट फार्म 105

1.10.8 पार्क 105

1.10.9 होटल 106

1.10.10 मदिरालय 107

1.10.11 अस्पताल 108

1.10.12 कार्यालय 109

1.10.13 अन्य स्थान 110

1.11 काल सन्दर्भ 110

1.11.1 सप्ताहान्त 111

1.11.2 दिवस खंड 113

1.12 मानवीय सम्बन्ध 114

1.13 पारिवारिक सम्बन्ध 115

1.13.1 पारिवारिक विघटन 115

1.13.2 पारिवारिक सम्बन्धों की बदलती हुई संरचना 117

1.13.3 पति की अस्वाभाविक स्थिति : दाम्पत्य विकृति 118

1.13.4 पत्नी के आर्थिक व्यक्तित्व का उदय और दाम्पत्य 119

1.13.5 विधवा/परित्यक्ता/अर्थ क्रिया 121

1.13.6 परित्यक्ता 122

1.13.7 विवाह/यौनाचार 123

1.13.8 माँ और संतति 123

1.13.9 प्राकृतिक माँ 124

1.13.10 माँ का पारिवारिक रूप 125

1.13.11 माँ के प्रति ऊब और टूटन 125

1.13.12 पिता : पुत्र/पुत्री 126

1.13.13 पुत्र-पुत्री प्रतिक्रिया 127

1.14 प्रेम यौन सम्बन्ध 127

1.14.1 प्रेम सम्बन्धी मानसिकता 128
1.14.2 प्रेम निष्कर्ष 129
1.14.3 सम्बन्ध टूटने का कारण 130
1.15 मनुष्य के रूप 131
1.15.1 सामाजिक स्थिति 131
1.15.2 वर्गीय स्थिति 132
1.15.3 मध्य वित्तीय वर्ग का युवक 132
1.15.4 नौकरी पेशा मध्य वित्तीय युवक 133
1.15.5 बेकार युवक 134
1.16.1 अधिक दबावजन्य विकृतियाँ 135
1.17.1 विद्रोही 136
1.18.1 भीड़ में मनुष्य 137
1.19.1 अन्तर्गत व्यक्ति 138
1.20.1 दोहरा व्यक्तित्व 138
1.21.1 भय और संत्रास 139
1.22.1 अन्तर्मुखता 139
1.23.1 अकेलापन/खालीपन/सूनापन 140
1.24.1 चाय, सिग्रेट, शराब 140
1.24.2 शराब 141
1.25.1 वेश्यालय - एक शरण 141
1.25.2 बीमारी 142
1.26.1 टूटन 142
1.26.2 आत्महत्या : एक विशेष मनःस्थिति 143

1.28.1 त्रिजीविषा 143

खण्ड - तीन (गीत-वस्तु)

प्रास्ताविक - 145

अध्याय (क)(ब) : प्रेम और काम 147

0. प्रास्ताविक 147
1. प्रेम दर्शन 150
1.1 शुद्ध प्रेम 150
1.2 प्रेमानन्द 157
1.3 प्रेम और धन 159
2. प्रेम का मनोविज्ञान 161
2.1 काम 162
2.2 यौन कुण्ठायें 163
2.3 काम एक विश्व रोग 168
2.4 प्रेम-क्रान्ति 171
3. प्रेम व्यवहार 174
3.1 संयोग 174
3.1.1 अनदेखे से प्रेम 174
3.1.2 प्रथम दर्शन 176
3.1.3 प्रेम किरण 177
3.1.4 प्रेम का प्रभाव 180
3.1.5 प्रेम स्वप्न 181
3.1.6 मिलन स्थल 183
3.1.7 मांसल प्रेम 191
3.2 वियोग 198
3.2.1 विरह : कारण और रूप
प्रतीक्षा-प्रवास-सन्देह-अपबोध-ईर्ष्या 199

3.2.2 विरह दशाये : 208
स्मृति-प्रेमोद्वेग-अनिद्रा
नैराश्य-हृदयमग्नता-पर पीड़न
विलाप और रुदन - आत्म-
पीड़न और पश्चाताप - प्रेमरोग

अध्याय 2 (ब) : रूप-सौन्दर्य 229—260

0. प्रास्ताविक 229
1. नारी सौन्दर्य 231
1.1 प्राकृतिक सौन्दर्य 231
1.1.1 यौवनागम 231
1.1.2 ऐन्द्रिय-बोध 233
1.1.3 नैसर्गिक अंग सौन्दर्य 235
1.1.4 शृंगार प्रसाधनजन्य सौन्दर्य 243
1.1.5 अंग भंगिमाओं का सौन्दर्य 246
2. प्रकृति का सौन्दर्य 250

अध्याय : 3 समाज-जीवन 261

0. प्रास्ताविक 261
1. राष्ट्र और राष्ट्रीयता 263
1.1 विकास-पथ 263
1.2 देश की धरती 267
1.3 अतीत गौरव 270
1.4 संकल्प, चेतावनी और प्रतिज्ञा 271
2. स्वतन्त्रता और स्वप्न-भंग 275
3. विदेशी आक्रमण 278

4. सामाजिक चेतना २८०

4.1 समकालीन जीवन दर्शन २८०

4.1.1 आस्तिकता २८४

4.1.2 क्षणवाद २९४

4.1.3 मृत्यु-बोध २९८

4.1.4 गति-प्रगति ३००

4.1.5 संत्रास ३०5

4.2 सामयिक ३०९

4.2.1 आवारापन ३०९

4.2.2 नशा 312

4.2.3 जुआ और सट्टा 314

4.2.4 पैसा बनाम मूल्य 316

4.2.5 जनसंख्या 318

4.2.6 भ्रष्टाचार 319

4.2.7 विद्यार्थी 321

4.3 वर्तमान समाज में नारी 322

4.4 मानवीय सम्बन्ध 343

4.4.0 प्रास्ताविक 343

4.4.1 भाई-बहन 345

4.4.2 माता 347

4.4.3 जननी 348

4.4.4 माता-पुत्र:पुत्री 348

4.4.5 दाम्पत्य 349

4.4.6 पति की अस्वाभाविक स्थिति 350

4.4.7 पत्नी की अस्वाभाविक स्थिति 351

4.4.8 सन्देह 352

4.4.9 पत्नी-पूर्व प्रेमी 352

खण्ड - चार [शिल्प-चेतना] 355-517

प्रास्ताविक 355-359

अध्याय : 4 0. गीत शिल्प 360-408

4.1 रचना प्रक्रिया 360

4.2 संगीत 368

4.3 गीत रूप 381

4.3.1 एक स्वर 382

4.3.2 युगल गीत 385

4.3.3 समयुगल गीत 388

4.3.4 समूह गीत 389

4.3.5 शीर्षक गीत 391

4.3.6 नृत्य गीत 395

4.3.7 मुजरा गीत 396

4.3.8 डिस्को एवं कैबरे 397

4.4 लोक गीत और लोक शैलियाँ 399

4.4.1 लोक गीत 399

4.4.2 लोक शैलियाँ 401

कजली-लावणी-पूर्वी-चैती

दरवेशों फकीरों की शैली - विरहा

फेरीवालों की शैली - व्यंग शैली

लोक शिक्षण शैली - लोकोक्ति शैली-

प्रश्नोत्तर शैली - पहेलियों की शैली

अध्याय : 5 भाषा-शिल्प 409-517

5.0 प्रास्ताविक 409

5.1 बोलचाल की भाषा 411

5.1.1 आंचलिकता 414

5.1.2 लोक भाषा 417

5.1.3 लोकोक्ति 418

5.2 शब्द शिल्प 424

5.2.1 शब्द भण्डार 426

5.2.2 तत्सम शब्द 426

5.2.3 तद्भव शब्द 427

5.2.4 अंग्रेजी शब्द 428

5.2.5 उर्दू [अरबी-फारसी] शब्द 429

5.2.6 देशज शब्द 434

5.2.7 विभिन्न भारतीय भाषाओं के शब्द 435

5.2.8 विचित्र बोल 436

5.2.9 द्विरुक्ति पद 437

5.2.10 शब्द युग्म 438

5.2.11 ध्वन्यात्मक शब्द 439

5.3. पर्याय शब्द 440

5.3.1 नायक के पर्याय 441

5.3.2 भाषागत वैविध्य 441

5.3.3 तत्सम शब्द 441

5.3.4 तद्भव पर्याय 442

5.3.5 आंचलिक पर्याय 443

5.3.6 विभिन्न भाषाओं के पर्याय 444

5.3.7 विदेशी भाषाओं के शब्द 444

औ

5.3.8 सांस्कृतिक पर्याय 446
5.3.9 व्यक्तिवाचक पर्याय शब्द 446
5.3.10 रचनागत वैविध्य 447
5.3.11 विशेषण मूलक पर्याय 447
5.3.12 प्रतीक शब्द 448
5.3.13 आलंकारिक पर्याय 449
5.3.14 नायक नायिका युग्म पर्याय 450
5.3.15 नायिका के लिये प्रयुक्त पर्याय 454
5.3.16 विशेषण मूलक 457
5.3.17 प्रतीक शब्द 457
5.3.18 अलंकारिक पर्याय 458
5.4 छन्द 461-467
5.5 बिम्ब 468-486
5.5.0 प्रास्ताविक 468
5.5.1 सिने गीतों में बिम्ब प्रयोग 470
5.5.2 चाक्षुष बिम्ब 471
5.5.3 भाव बिम्ब 472
5.5.4 अलंकार बिम्ब 473
5.5.5 सान्द्र बिम्ब 474
5.5.6 वस्तु बिम्ब 475
5.5.7 विवरण परक बिम्ब 476
5.5.8 प्राकृतिक बिम्ब 477
5.5.9 सांस्कृतिक बिम्ब 478
5.5.10 व्यवहारिक बिम्ब 479

5.5.11 पौराणिक बिम्ब 480

5.5.12 दार्शनिक बिम्ब 481

5.5.13 स्मृति बिम्ब 482

5.5.14 ऐतिहासिक बिम्ब 483

5.5.15 राजनैतिक बिम्ब 484

5.5.16 सामाजिक बिम्ब 484

5.5.17 समसामायिक बिम्ब 485

5.5.18 वैज्ञानिक बिम्ब 485

5.5.19 परा मनोवैज्ञानिक बिम्ब 485

5.5.A प्रतीक 487-497

5.6 अलंकार 498-517

5.6.0 प्रास्ताविक 498

5.6.1 अलंकारीय 499

5.6.2 आलंकारिक विशेषण 500

5.6.3 मानवीकरण 502

5.6.4 उपमा 505

5.6.5 रूपक 507

5.6.6 उत्प्रेक्षा 510

5.6.7 विभावना 512

5.6.8 रूपकातिशयोक्ति 514

5.6.9 अन्य अलंकार रचनायें 515

5.6.10 नये उपमानों की खोज 517

खण्ड - पाँच [उपसंहार] 518-522

उपसंहार 518-522

परिशिष्ट - एक : 523-530

शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त गीतों के पंक्तियों की सूची

अँ

परिशिष्ट - दो : 531-532

शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त गीतों के
गीतकारों की सूची

परिशिष्ट - तीन : 533-542

सन्दर्भ ग्रन्थ {हिन्दी} 533-538
सन्दर्भ ग्रन्थ {अंग्रेजी} 539-544

परिशिष्ट - चार : 543-545

सिने गीत रिकार्डिंग विधि

प्राक्कथन

प्राक्कथन : ....

फिल्म सम्बन्धी तीन विषय हैं जिनपर साहित्यिक शोध कार्य सम्भव है - कथा, संवाद तथा गीत । यह तीनों ही वे साहित्यिक संरचनायें हैं जिनके साथ फिल्म सम्बन्धी संगीत और प्रस्तुतिकरण की अन्य संरचनायें गुम्फित होकर एक समन्वित कला इकाई को रूप देती हैं । अभी तक फिल्म की तीनों इकाइयों में से गीत *और पटकथा[2] को साहित्यिक शोध का विषय बनाया गया है ।

---

* "हिन्दी-चित्रपट का गीति-साहित्य" डा० ओंकार प्रसाद माहेश्वरी द्वारा आगरा विश्वविद्यालय को पी-एच.डी. उपाधि के लिये सन् 1964 में प्रस्तुत शोध

2 "हिन्दी चित्रपट की कथाओं का अध्ययन" डा० महेन्द्र मित्तल द्वारा मेरठ विश्वविद्यालय की पी-एच.डी.उपाधि के लिये 1969 में प्रस्तुत शोध

इन पर भी जितनी दृष्टियों से शोधकार्य हो सकता था और होना चाहिये था उतना नहीं हुआ । प्रस्तुत प्रयास इसी विरल परम्परा की एक कड़ी है । इस कड़ी को आवश्यकता यह थी कि विकास-क्रम के अग्रगामी चरण को समाजोतिहासिक परिप्रेक्ष्य और क्रमिकता में उत्पन्न वैशिष्ट्य को उजागर किया जाय - एक ऐतिहासिक विभाजक रेखा खींची जाय । यदि इसका पूर्ववर्ती शोधकार्य सन् 1960 तक के गीतों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है तो प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आगे के दशकों के गीतों को अनुसंधेय मानकर चलता है । सत्य यह है कि - सिने सम्बन्धी शोधकार्य को बल देने और उसकी सम्भावनाओं को उजागर करने का प्रयत्न इसमें सन्निहित है ।

यह विषय यूँ ही नहीं चुन लिया गया । इसके चुनाव में अनुसंधित्सु की अभिरुचि और निर्देशक की प्रेरणा का सक्रिय सामंजस्य है । मेरी अभिरुचि के इस विकास का भी एक गतिक्रम है । अपने विद्यार्थी जीवन में नाट्य और रंगमंच की भूमिका में अभिरुचि ने अपना बीज रूप प्राप्त किया था । कथा एवं गीत साहित्य का प्रेम भी इसको पुष्ट करता रहा । इस अभिरुचि के कारण मैंने अपने आपको जाने-अनजाने एक दिन सिने-जगत में पाया । इस उद्योग के क्षेत्र में मेरे छोटे-मोटे प्रयास भी चले, उनको प्रोत्साहन भी मिला तथा मीठे कड़ुए अनुभव भी हुए "रज़िया" फिल्म जो की हैदराबाद की पहली रंगीन फिल्म थी, के निर्माण में मेरी यह रुचि सक्रिय हुई ।

तात्पर्य यह है कि सिने गीतों का यह अध्ययन मेरे ऊपर अध्यारोपित नहीं है, मेरी अभिरुचि से उगा है । मेरे निर्देशक महोदय ने इस विषय को स्वीकृत करके मेरी रुचि और तत्सम्बन्धी शोध योजना को प्रोत्साहित किया है और जैसा बन पड़ा है, मेरा यह विनम्र प्रयास प्रस्तुत है ।

आज सिनेमा जन-जीवन के साथ बहुत घुल-मिल चुका है। प्रत्येक वर्ग के साथ इसका सम्बन्ध बना है, और बन रहा है। सामान्य जन के क्षुब्ध और क्लान्त क्षणों को सिनेमा स्पन्दित करता है और उच्च वर्ग की ऊब और एकरसता का परिमार्जन भी इसके द्वारा होता है। सम्भवतः साहित्य की कोई भी विधा इतनी लोकप्रिय नहीं है। अपने आसपास के परिवेश, अपने प्रभाव की व्यापकता और समग्र जन की मानसिक तथा रागात्मक आवश्यकता की दृष्टि से सिनेमा ने अपना बहुविध विकास किया है। एक समय था जब सिनेमा का सम्बन्ध चारित्रिक-पतन से जोड़ा जाता था। यह भी माना जाता था कि सिनेमा कामुक और लिजलिजे प्रेम का कलाहीन एवं घिनौना प्रदर्शन है। इसमें समाज की व्यापक समस्याओं को छोड़ दिया जाता है। और आरम्भिक युग के चित्रपटों को देखते हुए यह बात ठीक भी दिखाई पड़ती है।

किन्तु यह स्थिति बदली। प्रेम की घटनापरक और कामपरक परिणतियों के स्थान पर प्रेम की गम्भीर अनुभूतियाँ भी सिने साहित्य में बिंबित-प्रतिबिंबित होने लगीं। कुछ फिल्मों में सामाजिक समस्याएँ और वर्गीय द्वन्द के नये आयाम सम्मूर्तित हुए। पुरानी "रोटी" फिल्म की परम्परा में आनेवाली फिल्मों को लक्षित करके यह बात कही जा रही है, "समाज को बदल डालो", "अंकुर", "निशांत", "मंडी", "आक्रोश", "मंथन", "अर्धसत्य" जैसे अपवाद सामने आये जो सम्भवतः आगे नियम में बदल जायेंगे। सिनेमा के इस परिधि विस्तार को देखते हुए भी मुझे ऐसा अनुभव होता रहा कि जितना अध्ययन इस साहित्य पर होना चाहिए था नहीं हो रहा है। इससे भी मेरी प्रेरणा को एक ज़मीन मिली।

जहाँ तक सिने गीतों के विकास का प्रश्न है, इनमें भी उल्लेखनीय पड़ाव आये । सबसे बड़ी बात यह हुई कि ये गीत शुद्ध संगीत के क्षेत्र से साहित्य के क्षेत्र में संक्रमित हुए । साहित्यिक गीतकारों को सिने जगत से आह्वान मिला और सिने गीतों में साहित्यिक संरचना महत्वपूर्ण होने लगी । इन हस्ताक्षरों में नरेन्द्र शर्मा, शैलेन्द्र, इन्दीवर, साहिर मजरूह, हसरत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जो आलोच्य युग से पहले ही गीतों को साहित्यिक मोड़ दे चुके थे । आलोच्य युग में नीरज, अन्जान और योगेश जैसे गीतकारों ने परम्परा को गति, दिशा और दृष्टि प्रदान की । यद्यपि आनंद बक्षी साहित्य के क्षेत्र से नहीं आये थे फिर भी साहित्यिक सिने गीतों की रचना उनके कृतित्व को याद किये बिना अधूरी ही रहेगी ।

सिने गीतों की इस बढ़ती हुई साहित्यिकता से ही प्रस्तुत विषय का औचित्य सिद्ध होता है । अनेक गीत तो ऐसे लिखे गये हैं जिनका संकलन साहित्यिक गीतों से बिल्कुल भी भिन्न नहीं होगा अन्तर केवल एक बात को लेकर रहता है कि सिने गीत की साहित्यिकता संगीत की प्रविधियों में ढलने के लिये बाध्य रहती है जबकि शुद्ध साहित्यिक गीतों के साथ इस किस्म की बाध्यता नहीं है ।

यह बात तो सही है कि हिन्दी फिल्मों में ज्यों ज्यों सामाजिक चेतना का ताना बाना घना हुआ है त्यों त्यों गीतों की संख्या कम होती गई है किन्तु इसके साथ यह भी स्मरणीय है कि जीवन के यथार्थ बोध, जीवन की चुनौतियों और संघर्ष को रूपायित करनेवाले गीत भी लिखे गये । हो सकता है अभी तक उनका अनुपात वांछनीय सीमा का स्पर्श न कर पाया हो । इस प्रकार के गीतों के आने से गीत की अन्तर्वस्तु वैविध्यपूर्ण हुई है और साहित्य के

अध्येताओं के लिये उन्होंने एक चुनौती भी दी है । गीतों में प्रेम और सौन्दर्य का एकाधिकार शिथिल हुआ है और सामाजिक चेतना सिने गीतों में धीरे-धीरे घुसी है । प्रस्तुत अध्ययन में इस मोड़ का पूर्ण रूप से ध्यान रखा गया है ।

उपर्युक्त सभी दृष्टियों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की योजना तैयार हुई है । पद्धति की दृष्टि से गीतवस्तु और गीत-शिल्प को जोड़कर चलना ही श्रेयस्कर लगा । विवेचन में विश्लेषण और विकास-क्रम को विशेष रूप से दृष्टि में रखा गया है । अध्यायों की योजना भी इन्हीं सूत्रों के आधार पर हुई है ।

आरम्भ में विषय-प्रवेश का शून्यांकित अध्याय है । जिसमें सामान्य रूप से "मास मीडियों" के रूप में सिने-कला के विकास को देखा गया है और हिन्दी सिने कला के विकास को भी स्पष्ट किया गया है । इस विकास यात्रा में गीत विकास का रूपाकार भी उभरा है । इस प्रवृत्ति-गत विकास की भूमिका शोध प्रबन्ध के सभी अध्यायों को प्राप्त हुई है ।

पहले अध्याय का रेखांकित सिद्धान्त यह है कि कोई भी कलाकृति और कोई भी कलाकार अपने युग परिवेश से अछूता नहीं रहता । यह प्रभाव चाहे प्रत्यक्ष रूप से चाहे परोक्ष रूप से मिलता ही है । इस सिद्धान्त सूत्र को ध्यान में रखते हुए पहले अध्याय में साठोत्तर भारतीय समाज को व्याख्यायित किया गया है । इस प्रयास को यहाँ वहाँ कुछ सिने गीतों के द्वारा प्रामाणिक बनाया गया है । आलोच्य युग से पूर्व परिवेश का इतना प्रभाव सिने-गीतों पर परिलक्षित नहीं होता । किस प्रकार भारतीय जनता का स्वप्न भंग हुआ और किस प्रकार आम आदमी को शोषण की नवीन

स्थितियों का सामना करना पड़ा । यह सब बेलाग रूप से इस अध्याय में देखा गया है । प्रयास यह किया गया है कि युग का यह सम्मूर्तन सिने गीतों से जुड़ जाये ।

दूसरे अध्याय में सिने गीत की प्रमुख विषय-वस्तु सौन्दर्य और प्रेम को विश्लेषित किया गया है । गीतकार के लिये यह एक केन्द्रीय वस्तु बन जाती है । नारी सौन्दर्य के जितने उभार और प्रभाव सम्भव हो सकते हैं उनको गीतकार पूर्णतः अलंकृत वाणी में गीतान्तरित करता है । साथ ही प्रेम के जितने क्रम और उपक्रम सम्भव हो सकते हैं उनको भी गीतकार ने वाणी और छवियाँ प्रदान की है । प्रेम के क्षेत्र में बदली हुई दृष्टि और क्रान्ति के तत्व गीतों में प्रायः नहीं उभरें है यदा किंचित् संस्पर्श ही इनमें आ पाये हैं । किन्तु इतना निश्चित है कि प्रेम के गम्भीर से गम्भीर प्रसंग और भाव भी गीत संरचना में आये हैं और हल्के फुल्के भी । सामाजिक दृष्टि से प्रेम और विवाह का द्वन्द भी कभी वर्गीय आधार पर और कभी जातीय आधार पर प्रस्तुत किया गया है । प्रभाव यह छोड़ा गया है कि प्रेम का पक्ष लेना ही उचित है । विवाहित पुरूष और स्त्री के प्रेमम और तत्सम्बन्धी संदेहों को भी गीत वस्तु में सम्मिलित किया गया है । प्रेम की मुख्य धारा के साथ-साथ अन्य प्रेम सम्बन्धों के संस्पर्श भी यदा कदा मिल जाते हैं । विशेष बात यह है कि प्रेम कभी मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रवाहमान रहता है और कभी दार्शनिक स्तर पर, शुद्ध लौकिक स्तर भी उपेक्षित नहीं है ।

तीसरे अध्याय में गीत-वस्तु के सामाजिक पक्ष को उजागर किया गया है । यद्यपि ये दोनों तत्व पटकथा के अंग मुख्य रूप से बने फिर भी गीतों ने इनका एक सीमा तक वहन किया है । इन

सामाजिक तत्वों में बदलते हुए मानवीय सम्बन्ध प्रमुख है किन्तु इनके सम्बन्ध में सिने गीत प्राय: मौन है । इनमें सम्बन्धों की परम्परागत भावुकता को ही वाणी मिली है । समाज की आर्थिक समस्याओं और राजनैतिक समस्याओं के संकेत भी गीतकार ने दिये हैं चाहे परिमाण की दृष्टि से इनका उल्लेखनीय स्थान न हो । अलगाव, आवारापन, बेरोजगारी जैसी मानसिक विकृतियों को भी गीतकार ने समेटने की चेष्टा की है । मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से इन समस्याओं पर कभी कभी जो प्रकाश डाला गया है वह भी महत्वपूर्ण है । आस्तिक और नास्तिक दर्शनों का द्वन्द भी प्रकट हुआ है । यह भी दर्शाया गया है कि आस्तिकता आज की जटिल परिस्थितियों में डांवाडोल हो चुकी है । इस प्रकार इस अध्याय में सिने गीत को समकालीन समाज और जीवन से जोड़कर देखने की चेष्टा की गई है ।

चौथे और पांचवे अध्याय क्रमश: गीत-शिल्प और भाषा-शिल्प को समर्पित है । गीत-शिल्प के अन्तर्गत गीत की सभी शैलियां आ जाती है । सिने गीत को नयी सज्जा और नयी प्रभावान्विति देने में लोक शैली और लोक तत्वों का प्रमुख हाथ है । प्रमुख लोक शैलियों का अध्ययन इस अध्याय में किया गया है । इसके अतिरिक्त ग़ज़ल-शैली और पाश्चात्य शैली के गीतों का समावेश भी हिन्दी सिने गीत-शिल्प में हुआ है । नवीन लय, ताल और आर्केस्ट्रा के प्रयोग से गीत शिल्प के नाद पक्ष को समृद्ध किया गया है । जहां शास्त्रीय संगीत को नवीन विधाओं द्वारा नवीन बनाया गया है वहां सुगम संगीत की भंगिमाओं को भी प्राणित और परिष्कृत किया गया है । तात्पर्य यह है कि गीत शिल्प के क्षेत्र में गीतकार पर्याप्त अन्वेषी और प्रयोगशील है ।

गीत का भाषा शिल्प भी उल्लेखनीय है । इसका विवेचन पाँचवे अध्याय में आयासित है । प्रमुख रूप से गीतकार की यह दृष्टि रही है कि गीत भाषा को सामान्य जन से जोड़ दिया जाये । सिने गीतों की लोकप्रियता ही इसका प्रमाण है । भाषा के विशिष्ट वर्गीय स्तरों से सम्बन्ध तोड़कर गीतकार जन-भाषा या बोलचाल की भाषा के करीब आया है । इस परिवर्तन में कुछ व्यापारिक दृष्टि भी देखी जा सकती है किन्तु जाने अनजाने इसके द्वारा भाषा शैली में एक क्रान्ति आई है । शैली के नये आदर्श स्थापित हुए हैं । "चलताऊ" भाषा का विशिष्ट प्रयोग इन गीतों में कभी-कभी दिखाई पड़ता है । दूसरी क्रान्ति यह है जो समन्वित भाषा प्रयोग में आई है । गीतकार को हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी तथा आंचलिक बोलियों के शब्दों के प्रयोग में भी कोई आपत्ति नहीं है । भाषा शैलो के इन सभी सूत्रों का यथा सम्भव विवेचन इस अध्याय में किया गया है । लोकोक्ति और मुहावरों से सिने गीत की भाषा जीवन्त बनी है । अलंकार शिल्प से भाषा का सौन्दर्य निखरा हुआ है । उक्तियों के चमत्कार से भी वस्तु उपकृत हुई है । छंद प्रयोग की सचेतन प्रक्रिया चाहे न मिले फिर भी लोकप्रिय एवं संगीताश्रित छंदों का प्रयोग गीतों में हुआ है । इन सब पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है ।

इस प्रबन्ध की अपनी कुछ सीमायें भी है । पहली सीमा यह है कि कुछ चुने हुए गीतों के आधार पर ही अध्ययन आधारित है । सभी गीतों को आधार बना कर चलना सम्भव नहीं था फिर भी यथा सम्भव प्रवृत्ति दर्शन को पूर्ण बनाने की चेष्टा की गई है । दूसरी सीमा यह है कि शिल्प और वस्तु के सभी पक्षों को प्रवृत्ति के सन्दर्भ में तो देखा गया है किन्तु विवरण में समग्रता का अभाव हो सकता है । कभी कभी यह भी अनुभव हो सकता है कि उदरणों की

भीड़ अधिक है किन्तु उदरण देना कभी कभी अत्यन्तावश्यक हो गया है, बिना इनके सिद्धान्त और व्यवहार के सम्बन्ध को स्पष्ट करना कठिन होता है। इतना विनम्र निवेदन अवश्य है कि सामग्री संकलन बहुत विस्तृत क्षेत्र से किया गया है। अनेक गीत विशेषज्ञों, रचनाकारों, शब्दकारों, और संगीतकारों से साक्षात्कार भी किया गया है। इस दृष्टि से यह प्रबन्ध पर्याप्त पूर्णता प्राप्त कर सका है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की प्रारम्भिक योजना से लेकर प्रस्तुतिकरण तक अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करना पड़ा। डा॰ राही मासुम रजा, महेश भट्ट, साहिर लुधियानवी, शहरयार, योगेश से साक्षात्कार हुआ। मजरूह सुल्तानपुरी, एस॰एच॰बिहारी, रामवतार त्यागी के अभिमत उनसे भेंट करके जानने का सौभाग्य मिला। श्रद्धेय शशिधर मुखर्जी (फिल्मालय) के चरणों में बैठकर 1973-1978 में सिने कला सीखी थी। समय-समय पर उनके विराट अनुभव और गीत संगीत की अद्भुत समझ ने मेरी बहुत सहायता की। मित्रवर योगेश ने अपने व्यस्त कार्यक्रमों में से समय निकाल कर बहुत सी बातें समझने में मेरा योगदान दिया। इसके अतिरिक्त और भी सम्बद्ध व्यक्तियों एवं संस्थाओं से सम्पर्क किया और उनके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ।

इस प्रबन्ध की प्रत्येक स्थिति में मेरे निर्देशक डा॰ चन्द्रभान रावत छाया की तरह मेरे साथ रहें। समझ में नहीं आता कि इनके प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापित करूं। मैं हृदय से उनका ऋणी हूँ और भी कई मित्रों और हेदराबाद विश्वविद्यालय के आदरणीय गुरुओं से भी प्रेरणा प्रोत्साहन और दिशा मिलती रही। मैं उनको भी धन्यवाद देता हूँ। मैं श्री गायकवाड़ बन्धुओं को भी इस शोध प्रबन्ध को सुन्दर ढंग से टंकण के लिये धन्यवाद देता हूँ।

इन शब्दों के साथ प्रबन्ध प्रस्तुत है।

खण्ड - एक : विषय-प्रवेश

अध्याय : 0१

विषय-प्रवेश

O. विषय-प्रवेश ....

सिने साहित्य को भी साहित्य की ही एक शाखा माना जा सकता है जिस प्रकार अच्छा या बुरा उपन्यास, अच्छी या बुरी कविता और अच्छा या बुरा नाटक लिखा जाता है उसी प्रकार अच्छे या बुरे सिने साहित्य का निर्माण किया जाता है । हमारे साहित्यकारों को सिने-साहित्य के बारे में कई काम्पलेक्सस् हैं । वह इसलिये कि सब सिने साहित्य का सर्जन तो करना चाहते हैं क्योंकि इससे काफी पैसा मिलता है और प्रसिद्धी भी । सभी का जी चाहता है इसे पाने के लिये और ये कोई बुरी बात नहीं है फिर क्यों सिनेमा को बुरा कहा जाता है ? हिन्दी उर्दू में बड़े-बड़े साहित्यकार - प्रेमचन्द, यशपाल, नीरज, भगवतीचरण, कमलेश्वर,

अमृतलाल नागर, कृष्ण चन्दर, डा॰ राही मासूम रजा, राजेन्द्र सिंह बेदी, शहादत हसन मेटो, इस्मत चुगताई आदि ने फिल्मों को अपनाया इनमें से कुछ तो सफल हुए और कुछ असफल हुए । जो असफल हुए, लौट गये और फिल्मों को बुरा भला कहने लगे ।

फिल्म एक बिलकुल अलग माध्यम है । इस माध्यम को समझने की हमारे ज्यादातर साहित्यकारों ने कोशिश नहीं की । फिल्म मूलत: कहानी, उपन्यास, नाटक, या महाकाव्य नहीं है । यह अपने में एक सम्पूर्ण कला है तो जिस तरह हर कला की एक विधा होती है उसी तरह सिनेमा की भी अपनी एक व्याकरण है ।

हमारा भारत वर्ष एक अनपढ़ देश है । यहाँ अधिक से अधिक 15 प्रतिशत लोग लिख पढ़ सकते होंगे और ये 15 प्रतिशत लोग, 14 लिपियों में बँटे हुए हैं । अर्थात् हिन्दी भाषी लोग जो लिख-पढ़ सकते हैं वे मुश्किल से चार या पाँच प्रतिशत निकलेंगे । अर्थात् जिस देश में पढ़े-लिखें लोगों का प्रतिशत इतना कम हो वहाँ जन सम्पर्क का माध्यम लिपी नहीं चल सकता । समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और पुस्तकों के साथ कितने लोगों के पास पहुँचा जा सकता है । हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है । हमारे जो प्रसिद्ध साहित्यकार है । उनकी किताें कितनी छपती है .. मुश्किल से हजार दो हजार या पाँच हजार अर्थात् जिस मुल्क की आबादी सत्तर करोड़ हो और किताब छपी एक या दो हजार तो कोई दोनों में अनुपात: ही नहीं बैठता । यही हाल अखबारों का है तो जन सम्पर्क के केवल दो माध्यम रह जाते हैं, रेडियो और फिल्म, टेलीविजन भी फिल्म का ही एक रूप है रेडियो चूँकि सिर्फ सुनने की चीज़ है इसलिए वह भाषा के बंधन में बंध गया जो उस भाषा का भाषी होगा वही उसका प्रोग्राम को समझ सकेगा । फिल्म चूँकि एक दृश्य-श्रव्य माध्यम है इसलिए अगर भाषा

पूरी तरह से समझ में नहीं आ रही है तो भी दृश्य साथ चल रहा है जो भाषा को समझने में मदद देगा । इसलिए आज फिल्म जन-सम्पर्क का सबसे शक्तिशाली माध्यम है । यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि फिल्म की तरफ हमारे बुद्धीजीवी वर्ग और सरकार का बहुत ही तिरस्कार पूर्ण दृष्टिकोण है ।

यह आक्षेप लगाया जाता है कि बहुत खराब फिल्में बनती है, बहुत बुरे गाने लिखे जाते हैं तो किताबे भी चाहे गद्य की हो या कविताओं की ज्यादातर खराब ही लिखी जाती है । ऐसा तो नहीं है कि साल में दो तीन सौ फिल्में बनती है सभी खराब है । इन दो तीन सौ में दस-पन्द्रह फिल्में निश्चय ही इतनी अच्छी होती है कि कोई उन पर अंगुली नहीं उठा सकता, अब किताबों की बात कीजिए एक साल में तीन से पांच हजार तक हिन्दी किताबे छपती है, इनमें कितनी किताबे ऐसी हैं जिन्हें हम कह सकते हैं कि अच्छी किताब है, मुश्किल से चालीस या पचास इसका अर्थ है कि अच्छी फिल्म का अनुपात: अच्छी किताबों से बहुत अधिक है ।

1960 के बाद सिने संगीत में क्रान्ति का जन्म हुआ । नये संगीतकारों ने उर्दू फारसी की बहरों और हिन्दी के छन्दों में लिखे गये ठोस गीतों को अपने संगीत की धुनों में ढालना कम कर दिया और अपनी स्वतन्त्र धुनें बनाकर उन पर गीतकारों से गीत लिखवाने लगे । इससे ये हुआ कि गीतकार को छन्द और बहर के पाश से निकलकर मुक्त छन्द जो संगीत आश्रित था उस पर लिखना पड़ा । साहित्य की जुबान में इसे तुकबन्दी कहा गया ।

इस नयी गीत रचना पद्धति में कुछ पुराने लोग "अडजस्ट" हो गये और कुछ निकल गये । साथ ही नये गीतकारों का सिने जगत में अवतरण हुआ, आनंद बक्षी इसके अगुवा थे । नये संगीतकारों में

कल्याण जी आनंद जी, आर.डी.बर्मन, लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल और भप्पी लहरी प्रमुख हैं ।

सातवे दशक में हमारे सिने संगीत पर पश्चिमी और अफ्रिका के संगीत का प्रभाव बढ़ने लगा, आर्केस्ट्रा में "तबले" का स्थान "बेंगो" ने ले लिया । यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था क्योंकि बेंगों की ध्वनि जहाँ शुरू होती है वहीं एकदम से खत्म हो जाती है और तबले का एक नाद दूसरे नाद को जाकर मिलता है । इसलिए तबले की ताल बेंगों की ताल से नहीं मिल सकती । हर क्षेत्र का अपना संगीत होता है और अपनी भाषा होती है और उस भाषा और उस संगीत का एक अन्तर-सम्बन्ध होता है । पहले हमारे सिने संगीत का आधार हिन्दुस्तानी संगीत और भारतीय लोक संगीत रहा किन्तु अब फिल्म संगीत का आधार पश्चिमी संगीत पर आश्रित हो गया है । इसलिए जो भारतीय छन्द रचना में गीत लिखे जा सकते थे वह सम्भव नहीं है । इसके लिए भारतीय भाषाओं को तोड़-मरोड़कर पश्चिमी धुनों में फिट करना पड़ता है । क्योंकि हमारे भाषायें और छन्द इन पश्चिमी धुनों के लिए नहीं बने हैं । और हमें ये लगता है कि हमारे गानों का नाता साहित्य से टूट रहा है । 1931 से 1960 तक जो गाने लिखे गये उनमें कुछ साहित्यकत्व अवश्य होता था, प्रदीप, शैलेन्द्र, शकील बदायूनी, आरज़ू लखनवी, आदि जो गीतकार थे वे मूलत: कवि या शायर थे और उनके गानों में कहीं ना कहीं से चुटकी-भर साहित्य का तत्व आना स्वभाविक था । अगर 60 के पहले और 60 के बाद के गानों को देखा जाये तो उनमें साहित्य की दृष्टि से स्तर में गिरावट आई है । शुरू शुरू में फिल्मों में 15-20 गाने हुआ करते थे फिर 8-10 अब 5-6 होने लगे अर्थात् गानों के कम होने का मतलब यह है कि फिल्म में कहानी बढ़ने लगी । पहले तो ये था गाने बना

लिये और उन गानों को जोड़कर एक फिल्म बना लो । फिल्मिस्तान की मशहूर फिल्में अनारकली और नागीन जो एस॰मुखर्जी ने बनाई थी उसमें यही फार्मूला अपनाया गया था । इसके बाद तो इस ढर्रे पर कई सफल एवं असफल फिल्में बनाई गई । आज भी ताराचन्द बड़जात्या {राजश्री प्रोडक्शन्स} इसी तरीके से फिल्में बना रहे हैं ।

मेरे विचार से गानों की जबर्दस्ती ठूंस-ठूंस कर फिल्म को बिगाड़ती है । गाना कथा के बहाव को रोक देता है । अगर संगीत प्रधान चित्र बनाया जाये और उनमें पचास {50} गाने भी डाल दिये जाये तो कोई हर्ज नहीं किन्तु यदि सामाजिक या ऐतिहासिक या मनोवैज्ञानिक फिल्म है और उसमें कोई महत्त्व पूर्ण दृश्य चल रहा है और पता चलता है कि अचानक एक गाना आ गया जितनी देर गाना चलता है कथा रूक जाती है और जो पटकथा लेखक दर्शकों के लिए एक तिलिस्म तैयार करता है वह टूट जाता है । बहुत कम निर्देशक ऐसे हैं जो गानों का सही प्रयोग करते हैं और चलचित्र की पटकथा में उसकी महत्वपूर्ण संयोजना करते हैं ।

सिने-गीत का प्रकार्य : ....

आधुनिक युग का क्रमिक विकास स्वच्छन्दतावादी प्रगीतात्मक मानसिकता से बुद्धिवादी मानसिकता की ओर हुआ है । एक प्रकार से नैतिकतावादी पुनर्जागरण और सुधारवादी इतिवृतात्मक मानसिकता की प्रतिक्रिया स्वच्छन्दतावादी प्रगीत में हुई और इस प्रगति के प्रति बुद्धिवादी और प्रगतिशील मानसिकता की प्रतिक्रिया उठ खड़ी हुई । यह प्रवृत्ति विकास साहित्य और कला में सर्वत्र परिलक्षित होती है । सिने साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है ।

जिस प्रकार हिन्दी नाटक आरम्भ में गीत-बहुल होते हैं, उसी प्रकार आरम्भिक चलचित्र भी गीतों के सहारे जन मानस की राह पकड़ते थे, जिस प्रकार आरम्भिक नाटकों के भोंडे गीतों का स्थान प्रसाद युग के नाटकों के साहित्यिक गीतों ने लिया उसी प्रकार चलचित्रों में भी गीतों का साहित्यिक संस्कार हुआ । आगे चलकर बुद्धिवादी थपेड़ों ने प्रगीत विधा को कुछ तिलमिला दिया । गीत कम-कम होने लगे और गद्य की विधायें सामाजिक यथार्थ से जुड़कर ही सशक्त होने लगी । उसी प्रकार समस्यामूलक और यथार्थस्पर्शी चलचित्रों में गीतों की कमी होने लगी अथवा गीतों का यथार्थवादी संस्कार होने लगा । यह प्रवृत्ति साठोत्तर युग में और भी मुखर हो गयी । फिर भी यह कहा जा सकता है कि साहित्य में गीत विधा का क्षय या उसका यथार्थ संस्कार जितनी तेजी से हुआ उतनी तेजी से चलचित्रों में नहीं हुआ । इसका कारण यह था कि चलचित्रों में प्रगीत का कार्य बहुविध रहा ।

प्रगीत के प्रकार्यों में सबसे पहला स्थान मानसिक उद्वेलन की अभिव्यक्ति का है । मानसिक उद्वेलन की अभिव्यक्ति जहाँ पुराने नाटकों और फिल्मों में भी स्वगत और एकालाप द्वारा होती थी वहाँ पीछे इनका स्थान गीत ने लिया फलतः स्वगत कथन की अस्वाभाविक और यान्त्रिकता से मुक्ति मिली । निम्नलिखित गीत में यह प्रकार्य स्पष्ट रूप से झलकता है :

कहीं दूर जब दिन ढल जाये
शाम की दुल्हन बदन चुराये
.. .. ..

---

* इस दृष्टि से पारसी रंगमंच पं. बेताब के नाटक, पं. राधेश्याम कथावाचक के नाटकों की ओर संकेत किया जा सकता है ।

चुपके से आये
मेरे ख्यालों के आंगन में कोई सपने के दीप जलाये ।

इसी प्रकार एक नायिका एक भावोत्कट संदर्भ से उत्पन्न मानसिकता की अभिव्यक्ति इस प्रकार करती है :

कौन आया कि निगाहों में चमक जाग उठी
दिल के सोये हुए तारों में खनक जाग उठी ।[2]

यह मानसिकता प्राय: उत्कट राग की देन होती है ।

प्रगीत का दूसरा प्रकार्य चरित्र की रेखाओं को उभारना है । जहां चरित्र को उभारने की अन्य प्रविधियां चलचित्र में प्रयुक्त होती हैं वहां गीत किसी व्यक्ति के चरित्र को सवाक बनाता है । उदाहरण के लिये बहिन के प्रति भाई का भावुक मन प्रगीत के पंख लगाकर आकाश की ऊंचाइयों से होड़ लेता है :

अपने पसीने को मैं मोती कर दूंगा
मोतियों से बहना की मांग भर दूंगा
आयेगी बारात देखेगी सारी दुनिया
होंगे लाखों में एक दूल्हे राजा
भैया राजा बजायेगा बाजा ।[3]

बहिन के सम्बन्ध में भाई का जो भावुक चरित्र उगता है उनका चित्रण इनसे देखा जा सकता है ।

---

*	आनंद	:	योगेश
2	वक्त	:	साहिर
3	सच्चा झूठा	:	इन्दीवर

तीसरा प्रकार्य वातावरण की सृष्टि करने से सम्बन्धित है । वातावरण के चल और अचल तत्व प्रगीत के संस्पर्श से बिम्ब परक अर्थ ग्रहण करते हैं । वातावरण में जीवन व्यवहार घटित होता है इसलिये वातावरण भी सृष्टि निर्माता का एक प्रमुख दायित्व हो जाता है । विवाहोत्तर वातावरण की सृष्टि निम्नलिखित गीत में द्रष्टव्य है :

सुहागरात है घूंघट उठा रहा हूँ मैं
सिमट रही है तू शरमा के मेरी बाहों में । *

एक प्राकृतिक स्थिति भावात्मक वातावरण में सहायक होकर एक गीत में उतरी है :

नील गगन के तले
धरती का प्यार पले
ऐसे ही जग में आती है सुबह
ऐसे ही शाम ढले ।[2]

कुछ पार्श्व गीतों में आगे आनेवाली घटनाओं अथवा नियति का पूर्वाभास भी मूर्तिमान हुआ है । निम्नलिखित गीत समय की शक्ति के सामने मनुष्य की विवशता को प्रकट करने वाली घटनाओं को एक पूर्व पीठिका प्रदान करता है :

वक्त से दिन और रात
वक्त से कल और आज
वक्त की हर शै गुलाम वक्त का है शै पर राज ।[3]

---

*	कभी कभी	:	साहिर
2	हमराज	:	साहिर
3	वक्त	:	साहिर

उपर्युक्त प्रकार्यों के कारण गीतों की लोकप्रियता ही नहीं उनकी आवश्यकता भी बढ़ी है जो वातावरण या गतिशीलता गीतों के द्वारा उत्पन्न होती है वह दर्शक वर्ग के मन को सिने साहित्य के मर्म के साथ एकाकार कर देती है । इन प्रमुख प्रकार्यों के साथ साथ अन्य प्रकार की उपयोगिताएँ भी है जिन पर इस प्रबन्ध में यत्र-तत्र विचार किया गया है ।

बहुत पहले एक फिल्म बनी थी । 1940 के आसपास जिसका नाम था "किस्मत" इसके निर्माता शशिधर मुखर्जी थे और हीरो [नायक] अशोक कुमार थे यह पहला हिन्दी फिल्म थी जिसका नायक एक अपराधी था इससे पहले जो फिल्में बनती थी, उनका नायक बहुत उदात्त हुआ करता था "किस्मत" ही पहली फिल्म थी जिसका नायक जेब कतरा था और ये फिल्म बहुत सफल हुई । कलकत्ता के एक ही छवि गृह में लगातार तीन साल तक चलती रही फिर भी हमारे फिल्म निर्माताओं ने अपराधी नायक को अपना नायक नहीं बनाया । बहुत बाद, 1962 के लगभग सुनील दत्त ने एक फिल्म बनाई "मुझे जीने दो" इसका नायक एक खूंखार डाकू होता है । यह फिल्म भी सफल हुई । डाकू समस्या को ही एक फिल्म गंगा-जमुना भी "सुपर हीट" हुई फिर भी सिनेमा में अपराधी चरित्र वाले नायक को स्वीकार नहीं किया गया । बहुत बाद में एक फिल्म आई जंजीर, जंजीर का जो नायक है उसे गौर से देखने पर पता चलता है कि नायक अच्छाई और बुराई के किनारे पर खड़ा है और फिल्म दीवार का नायक अपराधी बन जाता है । यह दीवार का नायक किस्मत "मुझे जीने दो" आदि की यात्रा करते करते कानून की दूसरी तरफ आ गया है । नायक का यह रूप भारत वर्ष में बहुत बड़े पैमाने पर स्वीकार किया गया । यहाँ से उदात्त नायक के स्थान पर अनुदात्त

नायक की यात्रा शुरू हुई तो उसमें संगीत का कम होना स्वाभाविक था । अगर प्रेम कहानी चल रही है तो संगीत आयेगा ही और अगर आप रावण पर फिल्म बना रहे हैं तो उसमें गाना नहीं आ सकता । दीवार के बाद ऐसा लगा कि फिल्म में संगीत की जगह नहीं रह गई है ।

कालान्तर में सम्भव है हिन्दी फिल्मों में गानों का चलन समाप्त हो जायें । यही हालीवुड में हुआ है । पहले हालीवुड की फिल्मों में गानों की भरमार हुआ करती थी धीरे-धीरे जैसे पटकथा एवं अभिनय प्रौढ़ होते गये गाने समाप्त होते गये । हिन्दी नव-सिनेमा ने भी गीतों का प्रयोग कम कर दिया और ऐसा प्रतीत होता है कि अगामी समय में यह उत्तरोत्तर बढ़ता जायेगा ।

लघु बजट की फिल्में बनानेवाला निर्माता गीतों से बचना चाहता है क्योंकि सिने गीत की रिकार्डिंग और उसके छायांकन में काफी खर्चा बैठता है । अलबत्ता संगीताश्रित चलचित्र में तो गीत रहेंगे ही ।

0.1 सिनेमा कला : संधारणा : ....

वैसे तो सभी युगों में मनोरंजन एक प्रमुख मानवीय आवश्यकता रही है । किन्तु आज के तनावपूर्ण जीवन की परिस्थिति में इसका स्थान और योगदान बहुत विशिष्ट है । युग-युग में इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए विविध कला रूपों में अपना विकास किया । उपन्यास, कहानी, नाटक,संगीत, चित्रकला, वस्तुकला आज जिस रूप में है इसके पीछे उसका हज़ारों वर्षों का इतिहास है । बीसवीं शताब्दी में भाव-संप्रेषण की एक नई विधा का उदय हुआ । सेलूलाईट की पट्टियों पर लोहे के छोटे-छोटे टुकड़ों, कांच {लेन्स} और तकनीकी सहयोग से एक ऐसी अद्भुत चीज़ बनाई गई जो लाखों व्यक्तियों पर बहुत गहरा प्रभाव छोड़ सकती थी । सिनेमा ने अपने सौ से भी कम वर्षों के काल-क्रम में सारी कलाओं को अपने दायरे में ग्रहण कर लिया है और अपने पूर्ण विकसित रूप में आज हमारे सामने

समकालीन मनोरंजन के साधन अपने आप में मानव का विविध आयामी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपर्याप्त दिखाई पड़ते हैं इसके लिए एक वृहत्तर इकाई में अन्य कला के ईकाईयों का समावेश किया जाता है और गीति-नाट्य जैसी संयुक्ततापूर्ण विधायें जन्म लेती हैं । इस कलात्मक संश्लेषण का चरम रूप फिल्म में देखा जा सकता है । साहित्य की दृष्टि से इसमें उपन्यास, नाटक काव्य प्रगीत आदि का समावेश रहता है । इनको व्यावहारिक परिणति देने के लिए क्राफ्ट सम्बन्धी अन्य कौशलों का योगदान भी इसमें रहता है । इस जटिल कला विधान को मानव मन की समकालीन जटिलता के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा जाना चाहिए ।

गतिशील ऊर्जा को "काइनेटिक एनर्जी" कहा जाता है । इसी काइनेटिक एनर्जी से "किनेमा" शब्द का जन्म हुआ और यही किनेमा कालान्तर में "सिनेमा" हो गया । "प्रारम्भिक प्रयासों में चल-चित्र छायांकन का मूलभूत आधार टालोमी के सिद्धान्त आँखों की दृश्य बिम्ब ग्रहण की शक्ति में निहित है । इस प्रकार चित्रपट द्वारा लोक-शिक्षण और लोक-रंजन का वैज्ञानिक आधार हमें टालोमी के आँखों की दृश्य ग्रहण शक्ति (परसिसटेंस आफ विज़न) में प्राप्त होता है । *

उपन्यास, नाटक, एवं सिनेमा में एक ही कथ्य हो सकता है किन्तु उपन्यास उसको दृश्य-रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकता । नाटक दृश्य रूप तो है किन्तु उसकी सीमा बहुत संकुचित है । सिनेमा की तरह उसमें अनेक स्थल, देश, पर्व, नदियाँ आदि जीवन्त रूप में दिखाना

---

* भारतीय चलचित्र : महेन्द्र मित्तल : पृ. 78

संभव नहीं है । "चल-चित्र का अविर्भाव नाटक के लिए अभूतपूर्व घटना थी । इसके आकर्षण और प्रभाव के कारण रंग-मंचीय नाटक एकदम उपेक्षणीय हो गये । भारत के रास मंडलियाँ, थियेटर कम्पनियाँ और नौटंकी एकदम प्रभाव-हीन हो गईं । सिनेमा ने थोड़े ही समय में आमोद-प्रमोद के सभी साधन एकसाथ उपस्थित करके नाटकों के समक्ष जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित कर दिया ।" *

एक फिल्म साधारणतया बारह हजार से सोलह हजार फीट तक लम्बी होती है । और उसमें एक मध्यान्तर होता है । इस तरह उसकी अवधि दो से तीन घण्टे तक की होती है । कहानी या उपन्यास के कलेवर में पिक्चर को फिट नहीं किया जा सकता अपितु फिल्म के कलेवर के अनुसार उपन्यास, कहानी या नाटक को फिल्म माध्यम के अनुसार बनाया जा सकता है ।

फिल्म के कथानक का फैलाव फिल्मकार के साथ-साथ दर्शक के साथ ही उतना ही जुड़ा है । उसे एक बार की बैठक में पूरी फिल्म देखनी है । इस स्थिति में कोई भी घटना दृश्य या गीत जो उबा देनेवाला हो या कहानी की मुख्य धारा से अलग चल रहा हो उसे दर्शक स्वीकार नहीं करता । उपन्यास या कहानी में जो चीज़ समझ में नहीं आई है पन्ने उलटकर पाठक उसे दुबारा पढ़ सकता है किन्तु फिल्म की शर्त यही है कि वह पहली बार में ही समझ में आ जानी चाहिए । एक रील चलने के बाद सिनेमा-गृह उसे पुनः नहीं चलायेगा जबतक कि फिल्म को दुबारा न देखा जाएगा ।

सिनेमा-गृह में दर्शकों का एक समूह होता है और जो कुछ पर्दे पर हो रहा है या सुनाई पड़ रहा है उसकी प्रतिक्रियाएँ सभी से

---

* गीति नाट्य : शिल्प और विवेचन : डा. शिवशंकर कटारे, पृ.42

होना अवश्यम्भावी है । फिल्म शिल्पी की सफलता वहीं पर है कि जो भाव वह दर्शक तक पहुँचाना चाह रहा है वह दर्शक तक कितना पहुँच रहा है । अगर बहुत दुखद वातावरण में दर्शक को हँसी आ रही है या आनंद के दृश्य में वह ऊब रहा है तो यह शिल्पी की असफलता है । सिनेमा-हाल से चल-चित्र देखकर बाहर निकलनेवालों की अनुभूतियाँ विभिन्न हो सकती है - संतुष्टि से असंतुष्टि तक । तनाव से विश्राम की भावना तक । हर्ष से विषाद की भावना तक । कभी-कभी दर्शकों को यह अनुभूति भी होती है कि उन्हें मूर्ख बनाया गया है तथा उन्होंने समय एवं धन का दुरुपयोग किया है ।

विश्व में सिने भाषा को स्वरूप देने का प्रथम श्रेय सर्ज. एम. आइन्सटीन को है । फिल्म माध्यम के विकास में उनका योगदान एक फिल्म निर्देशक और फिल्म प्रशिक्षक की हैसियत से हुआ है । "गति के आयाम पर कोई भी कला दर्शक की भावना और विचार में छवियों को क्रमवार सजोने की प्रक्रिया है । यही सिद्धान्त सारी सच्ची प्राणवान छबियों पर लागू होता है । ऊपर से जड़ और स्थिर दिखाई देनेवाली चित्रकला के माध्यम पर भी यही सिद्धान्त लागू होता है ।"

"रूप की पीपासा मनुष्य की जन्मजात वृत्ति है । और इस रूप की पीपासा का सर्वव्यापी साधन चित्रपट है । दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार कह सकते हैं - मनुष्य की तीन वृत्तियों - सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी से चित्रपट रजोगुणी वृत्तियों के परिशमन एवं परितृप्ति का सर्वाधिक तृप्ति चित्रपट पर ही होती है । जिसे शास्त्रीय भाषा में जनता का नेत्रोत्सव कहा जा सकता है ।"

श्रीराम. के. मित्तल, भूतपूर्व असिस्टेंट प्रोफेसर, फिल्म निर्देशन फिल्म एवं टेलिविजन संस्थान के अनुसार - "फिल्म जीवन के भावों को संवहन करने का एक माध्यम है। जिसमें आजतक की सारी कलाएं यंत्र, विज्ञान, उद्योग आदि कार्यरत हैं। फिल्म का उद्देश्य दर्शक को शिक्षित कर उसका भावनात्मक स्थिर पर मनोरंजन करना है। ध्वनि और दृश्यों के संयोजन को फिल्म पट्टी पर अंकित करके प्रदर्शित करने पर दर्शकों को मन में जो भावनात्मक आलोडन होता है वही फिल्म है अर्थात् फिल्म दर्शकों के मन का आलोडन है। बिना दर्शक के फिल्म का जीवन प्राण उत्पन्न नहीं होता। एक रचनाकार की बनाई हुई फिल्म को प्रदर्शित करने पर लाखों करोड़ों दर्शक अपने अपने जीवन-स्तरों के अनुसार एक नई फिल्म का अनुभव लेते हैं। इस प्रकार फिल्म पर "एकोऽहं बहुस्याम" वाली उक्ति सही होती है। दर्शक के मानस दर्पण पर बननेवाली छायाएं और उत्पन्न होनेवाले ध्वनि कम्पन से ही दर्शक के भावों में फिल्म प्राण-प्रतिष्ठा होती है। सत्य तो यह है कि फिल्म वह आब्स्ट्रेक्ट भावना समूह है जिसका निवास-स्थल दर्शक का मन मन्दिर होता है।"

प्रसिद्ध सिने-निर्देशक श्री सत्यजीतराय की निम्नलिखित सिनेमा की परिभाषा बहुत ही सटीक बैठती है। "सिनेमा साधन है। चरित्र

---

* ए वर्क आफ आर्ट अंडरस्टुड डाइनमिकली इज जस्ट दिस प्रासेस आफ आरेंजिंग इमेजेस इन दी फिलींग्स एंड माइण्ड आफ दी स्पेक्टेटर। दिस सेम प्रिंसपल लाइज एट द बेस आफ आल ट्रूली वाइटल इमेजस इवन इन सच एज़ एपेरेंटली इम्मोबाइल एण्ड स्टेटिक मीडियम एज फार इक्ज़ाम्पल पेन्टिंग।

- दी फिल्म सैंस - सर्जी आइन्सटीन : पृ. 24

2. श्रीराम के. मित्तल से व्यक्तिगत साक्षात्कार के आधार पर।

या स्थिति के विकास की सच्ची अभिव्यक्ति का । छायांकन की बारीकियों और गहराइयों में भावना की प्रखरता में साधनों की सीधे-साधे सशक्त प्रयोग में चलचित्र की समानता कोई कला नहीं कर सकती है ।" *

सही शब्दों में सिनेमा आज जन मनोरंजन का मुख्यतम साधन बन चुका है । नृत्य, संगीत, नाटक, क्रीड़ा आदि सारी संभावित मनोरंजन विधाओं को आत्मसात् करके सिनेमा सबसे बाजी मार ले गया है । इससे सस्ता और सुलभ मनोरंजन का साधन आज के भारतीय जन-जीवन को उपलब्ध नहीं है । तीन घण्टे तक वातानुकूलित छवि-गृह में स्पांज की गद्दियों पर आरूढ़ एक निश्चित विघ्नरहित कार्यक्रम निश्चय ही दूसरा इस मूल्य सीमा में असंभव है ।

---

* धर्मयुग : निर्देशक सत्यजीतराय : अंक मई 3, 1964 पृ. 39

१.२ हिन्दी सिने-गीत : यात्रा एवं परिचय : ....

कथा सूत्र के साथ साथ मनोरंजन की प्रतिशत वृद्धि के लिए गीतों का सिनेमा में आयोजन भी सवाक युग के प्रारम्भ से अनिवार्य अंग बन चुका है । गीत के माध्यम से बड़े-बड़े भव्य सेट्स नृत्य प्रदर्शन, संगीत, प्रकाश व्यवस्था के चमत्कार, अभिनय के नवीन कौतूहल उत्पन्न करके व्यवसायी फिल्म की मनोरंजक प्रवृत्ति को पूरा करने का प्रयत्न किया जाता है ।

प्रत्येक कला में अपने अपने कतिपय विशिष्ट गुण विद्यमान रहते हैं । सिने-गीतों के भी अपने कतिपय विशिष्ट गुण हैं जिनकी तुलना साहित्यिक गीतों के विशिष्ट गुणों से नहीं की जा सकती । सिने-गीतों में संगीत की प्रधानता होती है । गीत की रचना से पूर्व ही कथा-स्थिति {सिचुएशन} के अनुसार प्राय: संगीतकार उस

भाव [मुड] की एक धुन तैयार कर लेता है । जो किसी भी वाद्य संगीत पर आधारित होती है और सिने गीतकार उसी धुन के छंद या रिदम पर गीत रचना करता है । सृजन की इस प्रारम्भिक स्थिति में गीत अविकसित तथा अपरिष्कृत होता है । पर धीरे-धीरे संगीतकार, गीतकार, निर्देशक के सामुहिक प्रयत्न से उसे अन्तिम और परिष्कृत रूप देकर रिकार्ड कर लिया जाता है ।

भारतीय सिने उद्योग की पहली कथा फिल्म राजा हरिश्चन्द्र का सन् 1913 में प्रदर्शन किया गया था । इसके निर्माता निर्देशक भारतीय सिनेजगत के पितामह "स्व. दादा ढुंढिराज फालके" थे । उसके बाद लगातार पौराणिक एवं धार्मिक चित्रों का निर्माण किया गया जिनमें पारलौकिक चमत्कारों की बहुलता थी । सिने उद्योग के विकास क्रम में अनेक ऐतिहासिक, प्रणय, मारधाड़ और सामाजिक कथा वस्तुओं पर चलचित्रों का निर्माण हुआ । मूक युग के प्रमुख निर्माताओं में श्री बाबूराव पेंटर, डी.पी. गांगोली, आर.एस. चौधरी, चन्दूलाल शाह, एम. भवनानी और व्ही. शांताराम आदि का नाम आताह है । सन् 1931 में अर्देशर एम.इरानी ने भारत की प्रथम सवाक फिल्म "आलम आरा" का निर्माण किया । सिनेजगत में इस तरह फिर ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाओं पर सवाक चित्र बनाए जाने लगे ।

इसके साथ साथ सामाजिक अन्याय, शोषण, अस्पृश्यता और नारी समस्याओं को लेकर चित्र बने ।

कलकत्ता में पी.सी. बरुआ ने सामाजिक विषयों पर आधारित देवदास, मंजिल, जिन्दगी आदि फिल्मों का निर्माण किया । न्यू थियेटर के नितिन बोस एवं अन्य निर्देशकों ने भी साउद्देश्य फिल्मों का निर्माण किया । हिमांशुराय ने बम्बई में

बाम्बे टाकीज की स्थापना की । बाम्बे टाकी में सुशिक्षित नवयुवकों को प्राथमिकता दी गई और जर्मन विशेषज्ञों की सहायता से साफ-सुथरे एवं स्वस्थ मनोरंजक सामाजिक चित्रों का निर्माण किया गया ।

शशिधर मुकर्जी, ज्ञान मुकर्जी, अशोक कुमार आदि बाम्बे टाकीज की ही देन है ।

स्व. महबूब ने बहुत ही महत्वपूर्ण फिल्में हिन्दी सिने जगत् को दी - जिनमें वतन, औरत का नाम विशेष उल्लेखनीय है ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारतीय सिने-उद्योग की व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो गया । स्टुडियो का एकाधिकार समाप्त होने लगा और सिने-जगत " स्टार सिस्टम " की धुरी पर घूमने लगा । फिर भी प्रभात ने " रामशास्त्री, डा.कोटनीस की अमर कहानी, मिनर्वा टोन ने " पुकार " और सिकन्दर, बाम्बे टाकीज ने नया संसार और किस्मत का निर्माण इन्हीं दिनों किया ।

आजादी के बाद एक नया युग प्रारम्भ हुआ । दिलीपकुमार, प्रदीपकुमार, देवानन्द, मधुबाला, सुरैया, नरगिस, प्रेमनाथ, राजकपूर जैसे नए एवं सफल अभिनेताओं के द्वारा सिनेमा ने एक नई शैली और नए आयाम की तरफ कदम बढाए । राजकपूर की " बरसात " ने और शंकर जयकिशन के मधुर संगीत ने पूरे भारत में हलचल मचा दी -

हवा में उड़ता जाए मेरा लाल दुपट्टा
मल-मल का जी,
मोरा लाल दुपट्टा मलमल का, हो जी, हो जी। " *

---

* फिल्म बरसात

बरसात में
हमसे मिले तुम सजन
तुमसे मिले हम बरसात में *

.. ..

स्व॰ महबूब की अंदाज और "आन" ने नए कीर्तिमान स्थापित किये :

मान मेरा अहसान
अरे नादान, कि मैंने तुझसे किया है प्यार ।[2]

"आवारा" के संगीत ने भारतीय जनमानस को ही नहीं अपितु पूरे विश्व को तन्मय कर दिया । रूस में तो नगर नगर लोग आवारा के गीत गाते सुने गए :

आवारा हूँ -
या गर्दिश में हूँ
आसमान का तारा हूँ ।[3]

सन् 1953 में विदेशी सहायता के साथ सोहराब मोदी ने "झांसी की रानी" का निर्माण किया किन्तु यह फिल्म बाक्स आफिस पर असफल रही और इसने मिनर्वा मूवीटोन को नेस्तनाबूद कर दिया ।

भारत में यथार्थवादी सिनेमा का उदय विमलराय की

---

* फिल्म बरसात 2. फिल्म आन

3 फिल्म आवारा

"दो बीघा जमीन" से कहा जा सकता है । राजकपूर ने बूट पालिश और जागते रहो के माध्यम से कुछ नया कहने की कोशिश की । सत्यजीतराय की "पाथेर पांचोली" राजकपूर की जागते रहो और व्ही. शांताराम की "दो आंखे बारह हाथ" ने विदेशों से पुरस्कार प्राप्त किए ।

महबूब की "मदर इण्डिया" ने"बाक्स आफिस" पर पिछले सारे रिकार्ड तोड दिए । "मदर इण्डिया" के गीत बहुत लोक-प्रिय हुए :

दुनिया में जो आए हैं
तो जीना ही पड़ेगा
जीवन है अगर जहर
तो पीना ही पड़ेगा । *

होली आई रे कन्हाई
रंग बरसे
सुना दे जरा बांसुरी[2]

गुरुदत्त ने कलाकार के दर्द पर "प्यासा" का निर्माण किया । "प्यासा" ने हर चिंतनशील व्यक्ति की अंतरात्मा को झकझोर दिया । साहिर लुधियानवी ने अपनी ज्वलंत लेखनी से ऐसे गीतों की रचना की जिन्होंने देश और समाज के ठेकेदारों को चुनौती दी । यथा :

ये कूचे ये नीलाम घर दिलकशी के
ये लुटते हुए कारवां जिन्दगी के

---

* फिल्म:मदर इण्डिया 2 -वही-

जिन्हें नाज़ है हिंद पर
वो कहाँ है?
ज़रा मुल्क के रहबरों को बुलाओ
ये कूचे ये गलियाँ ये मंजर दिखाओ
जिन्हें नाज़ है हिंद पर उनको लाओ । *

.. .. ..

यहाँ एक खिलौना है इंसा की हस्ती
यह बस्ती है मुर्दा - परस्तों की बस्ती
यहाँ पर तो जीवन से है मौत सस्ती
ये दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है?[2]

इन्हीं दिनों बी.आर. चोपड़ा की "कानून" जो बिना गीत के बनी और इसने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की ।

आलमआरा से कानून तक आते आते व्यवसायिक सफलता की गारंटी सिने गीतों को मान लिया गया था और बिना सिने गीतों के हिन्दी फिल्म की कल्पना भी लगभग असंभव सी हो गई थी । कानून के अपवाद के बाद भी सिनेमा में गीतों का महत्व कम नहीं हुआ । मधुमति, सुजाता, नन्दिनी आदि कितनी ही गीतों भरी फिल्मों का निर्माण होता रहा ।

1960 में के. आसिफ का महान ऐतिहासिक रोमानी चित्र मुगल-ए-आजम का प्रदर्शन किया जिसके निर्माण में करोड़ों रुपयों का व्यय

---

* प्यासा : साहिर लुधियानवी
2 प्यासा : साहिर लुधियानवी

किया गया । इस चित्र ने सिने व्यवसाय की असाधारण क्षमताओं को सिद्ध कर दिया ।

मोहे पनघट पे नन्दलाल छेड़ गयो रे
मेरी नाज़ुक कलइयां मरोड़ गयो रे
कंकरी मोहे मारी गगरिया फोड डाली
मेरी सारी अनारी भिगोय गयो रे *

1960 के बाद अब तक सिने उद्योग में संघर्ष-रत तकनीशियनों कलाकारों संगीतकारों का भाग्योदय होना शुरू हुआ जैसे - सत्येन बोस, शक्ति सामंत, राजा नवाथे, विजय आनन्द, कल्याणजी आनंद जी, लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल, रवि, ओ.पी.नैयर, रोशन, ऊषा खन्ना, राहुलदेव बर्मन, जयदेव, सोनिक ओमी, गुलज़ार, मदन मोहन, आनंद बख्शी इंदीवर, नीरज, एच.एस. बिहारी, वर्मा मलिक, गुलशन बावरा, अन्जान योगेश, माया गोविन्द, रविन्द्र जैन, भप्पी लहरी, संतोषानन्द, इन्द्रजीत सिंह तुलसी आदि आदि ।

इस प्रकार नए खून ने नए जोश से सिने गीत, संगीत पर काम करना शुरू किया -

एक डाल पे तोता बोले
एक डाल पे मैना
दूर दूर बैठे हैं फिर भी
लेकिन प्यार तो फिर भी है ना ।*2

1960 और 1970 के बीच एक दौर मद्रास में निर्मित पारिवारिक हिन्दी चित्रों का चला जिसमें संयुक्त परिवार के विघटन,

---

* मुगल-ए-आज़म : शकील बदायूनी
2 चोर मचाए शोर: इन्द्रजीत तुलसी/रवीन्द्र जैन

दहेज प्रथा आदि समस्याओं को लेकर जेमिनी, ए.वी.एम. और वासु फिल्मस आदि निर्माण संस्थाओं के अनेक चित्र बनाए और इन्हीं समस्याओं पर कई उत्कृष्ठ गीत इन फिल्मों के लिए लिखे गए :

कल चमन था, आज ये सहरा हुआ
देखते ही देखते ये क्या हुआ । *

पति-पत्नी के सम्बन्धों को पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न किया गया ।

तुम्हीं मेरे मंदिर तुम्हीं मेरी पूजा
तुम्हीं देवता हो, तुम्हीं प्राण मेरे
तुम्हीं आत्मा हो -[2]

..   ..

मोरी छम छम बाजे पायलिया
आज मिले हैं मोरे सांवरिया [3]

सातवें दशक में हो बम्बई में रूस्तमें जमां दारासिंह की फिल्मों की बाढ़ सी आ गई जैसे - फौलाद, शेर दिल, सेम्सन, हरकुलीस, आदि । इन फिल्मों का विषय अधिकतर शारीरिक बल प्रदर्शन एवं बहादुरी के कारनामें रहा ।

मैं हूं शेर दिल
मैं हूं शेर दिल हा । हा । हा[4]

---

* खानदान/साहिर लुधियानवी/वासु फिल्मस

2 - वही -

3 घूंघट/शकील बदायूनी

4 शेर दिल

दहेज प्रथा आदि समस्याओं को लेकर जेमिनी, ए.वी.एम. और बासु फिल्मस आदि निर्माण संस्थाओं के अनेक चित्र बनाए और इन्हीं समस्याओं पर कई उत्कृष्ठ गीत इन फिल्मों के लिए लिखे गए :

कल चमन था, आज ये सहरा हुआ
देखते ही देखते ये क्या हुआ । *

पति-पत्नी के सम्बन्धों को पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न किया गया ।

तुम्हीं मेरे मंदिर तुम्हीं मेरी पूजा
तुम्हीं देवता हो, तुम्हीं प्राण मेरे
तुम्हीं आत्मा हो -[2]

.. ..

मोरी छम छम बाजे पायलिया
आज मिले हैं मोरे सावरिया [3]

सातवें दशक में हो बम्बई में रूस्तमें जमां दारासिंह को फिल्मों की बाढ़ सी आ गई जैसे - फौलाद, शेर दिल, सेम्सन, हरकुलीस, आदि । इन फिल्मों का विषय अधिकतर शारीरिक बल प्रदर्शन एवं बहादुरी के कारनामें रहा ।

मैं हूँ शेर दिल
मैं हूँ शेर दिल हा । हा । हा[4]

---

* खानदान/साहिर लुधियानवी/वासु फिल्मस
2 - वही -
3 घूंघट/शकील बदायूनी
4 शेर दिल

आठवें दशक के आते आते सिने निर्माण में फिर एक बार गंभीरता आई। राजश्री प्रोडक्शन्स, शक्ति सामन्त, विशाल इन्टरनेशनल प्रोडेक्शन्स, नवकेतन, चेतन आनंद, गुलजार, ऋषिकेश मुखर्जी, वासु भट्टाचार्य, बासु चटर्जी, बी.आर. चोपरा, जी.पी. सिप्पी, आदि ने बहुत ही सुलझी हुई फिल्मों का निर्माण किया।

जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभवों को चलचित्रों के माध्यम से कहने की कोशिश की गई। राजेश खन्ना एवं अभिताभ बच्चन की गगन-चुम्बी सफलताओं ने नए कीर्तिमान स्थापित किए। हालीवुड के ढर्रे पर अनेक सितारों के समूह को लेकर चलचित्र बनाने का शुद्ध व्यवसायी सिलसिला तो पुरानी "अंदाज" से ही शुरू हो चुका था। इसी का विकसित रूप बी.आर. चोपरा के "वक्त" में सामने आया। सशक्त गीतों से अनुप्राणित इस फिल्म ने व्यवसाय के नए आयामों को छुआ।

वक्त से दिन और रात
वक्त से कल और आज
वक्त को हर शे गुलाम
वक्त का हर शे पे राज। *

सितारों के समूह को लेकर बनाई गई फिल्मों की चरम सीमा 1973 में बनी जी.पी. सिप्पी की शोले में सामने आई। यह फिल्म बम्बई के मिनर्वा टाकीज में चार साल से भी अधिक अवधि तक चलती रही।

महबूबा महबूबा
गुलशन में गुल खिलते हैं

---

* वक्त/साहिर लुधियानवी

आठवें दशक के आते आते सिने निर्माण में फिर एक बार गंभीरता आई। राजश्री प्रोडक्शन्स, शक्ति सामन्त, विशाल इन्टरनेशनल प्रोडेक्शन्स, नवकेतन, चेतन आनंद, गुलजार, ऋषिकेश मुकर्जी, वासु भट्टाचार्य, बासु चटर्जी, बी.आर. चोपरा, जी.पी. सिप्पी, आदि ने बहुत ही सुलझी हुई फिल्मों का निर्माण किया।

जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभवों को चलचित्रों के माध्यम से कहने की कोशिश की गई। राजेश खन्ना एवं अभिताभ बच्चन की गगन-चुम्बी सफलताओं ने नए कीर्तिमान स्थापित किए। हालीवुड के टर्रे पर अनेक सितारों के समूह को लेकर चलचित्र बनाने का शुद्ध व्यवसायी सिलसिला तो पुरानी "अंदाज" से ही शुरू हो चुका था। इसी का विकसित रूप बी.आर. चोपरा के "वक्त" में सामने आया। रसाक्त गीतों से अनुप्राणित इस फिल्म ने व्यवसाय के नए आयामों को छुआ।

वक्त से दिन और रात
वक्त से कल और आज
वक्त की हर शै गुलाम
वक्त का हर शै पे राज। *

सितारों के समूह को लेकर बनाई गई फिल्मों की चरम सीमा 1973 में बनी जी.पी. सिप्पी की शोले में सामने आई। यह फिल्म बम्बई के मिनर्वा टाकीज में चार साल से भी अधिक अवधि तक चलती रही।

महबूबा महबूबा
गुलशन में गुल खिलते हैं

---

* वक्त/साहिर लुधियानवी

जब सहरा में मिलते हैं
में और तू *

शोले के बाद तो बहु-सितारा फिल्मों की होड़ सी चल पड़ी । काला पत्थर, अमर अकबर एन्थोनी, हेराफेरी, हम किसी से कम नहीं, नसीब, राजपूत, आन, शालीमार आदि इनमें से कुछ तो सफल रही कुछ बुरी तरह असफल । बहुसितारा फिल्मों की दौड़ से अलग ताराचंद बरजात्या {राजश्री प्रोडक्शन्स} साफ सुथरी, लघु बजट की फिल्में बनाते रहे । गीत गाता चल, सावन को आने दो, पायल की झंकार, आदि आदि । इन फिल्मों की गीत बहुत ही सटीक बन पड़े - बल्कि यह कहा जा सकता है कि अपने गीतों के बल पर ही राजश्री की फिल्में बहुत चली ।

कई बार यूं भी देखा है
ये जो मन की सीमा रेखा है
मन तोड़ने लगता है
अंजानी आस के पीछे
अंजानी प्यास के पीछे ।

इस तरह आलमआरा से आठवें दशक तक की सिने गीतों की धारा युगीन परिवेश के साथ बहती हुई आज भी विकासोन्मुख है तथा समसामयिक चित्रपटों के विषय एवं आधुनिकतम संगीत शैली को समाहित करती हुई अग्रसर है ।

---

* शोले : आर॰डी॰ बर्मन
2 रजनी गंधा : योगेश

परिचय : ....

सिनेगीत "लिरिक" का पर्याय है । लिरिक में संगीत-तत्व (एलीमेन्ट आफ म्यूजिक) के समावेश का आग्रह अत्याधिक होता है ।

"वाद्ययंत्रों के साथ कंठ से गाई जानेवाली कविता, जिसका सृजन कथानक के पात्रों की भावभूमि में होता है, लिरिक कहलाती है ।"*

सिने गीत अपने भाव अथवा भावमय विचारों का शब्दों में सहज स्फोट करता है जो शब्द और लय एवं संगीत के सुरों से बंधकर एक सहज भावात्मक एवं नादपूर्ण अनुभूति को श्रोता तक सम्प्रेषित करता है ।

साहित्यिक गीत लेखन और सिनेगीत लेखन में काफी अन्तर है :-

"फिल्म एक जन सम्पर्क माध्यम है । इसमें हमें यह ख्याल रखना पड़ता है कि फिल्म जो देखनेवाले हैं वह बात समझ सकेंगे या नहीं, या बात उन तक पहुँचेगी या नहीं, या यह बात कितनी देर तक उनकी दिलचस्पी का बाय रहेगी - कहीं बोर तो नहीं हो जाएंगे उनसे? लेकिन जब हम अपने लिए लिख रहे होते हैं तो वह हमारी अपनी अभिव्यक्ति होती है । यहाँ हम अन्य बातों का ध्यान नहीं रखते । हालांकि वहाँ भी हम सुननेवाले श्रोता जरूर ढूंढते हैं ।"[2]

भारत के जनमानस में संस्कृति के उदय से ही गीतों को

---

* हिन्दी गीति काव्य : डा॰ रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी पृ॰ 13

2 फिल्म पट कथा लेखक एवं गीतकार जावेद : माधुरी : अक्तूबर, 1982, पृ॰11

स्वस्थ परम्परा रही है । जैसे उषा के दर्शन से पंछी चहक उठते हैं उसी प्रकार आदि भाषा के उदय के साथ-साथ भावगीत, संगीत सभी चहक उठे होंगे । सामवेद का भावमय संगीत, श्रीमद्भागवतगीता में तो "गीत" शब्द निहित ही है । जयदेव के गीत गोविन्द और प्राकृत एवं अपभ्रंश के गीतिकाव्यों की श्रृंगार विषयक विशेषता से लेकर हिन्दी के साहित्यिक गीत और सिने गीत इस बात के साक्षी है कि भारत के जनमानस में गीत के प्रति अगाध प्रेम रहा है ।

हिन्दी के साहित्यिक गीत अपनी विषयवस्तु, असामान्य शिल्प बाहुल्य, संस्कृतिनिष्ठ और जटिल शब्दावली एवं क्लिष्ट शैली के कारण जनप्रिय न हो सके । जैसे -

"अये रूपसि अनजान
दिखलाती हो अरुणोदय में बिम्बाधर मुस्कान
सन्ध्या में जावक, रजनी में उच्छ्रित केश वितान
हिमकर में मैंने अवलोका तव मुख आभावान
किन्तु कहाँ उसमें बतलाओ - अधर प्रवाल समान ।" *

एक और उदाहरण देखिये -

"नासिका चिबुक के बीच स्फुरित होठों पर,
तन्दुल सी मौन गुलाबी ऐसी छाई
ज्यों हेम शिखर के नीचे आकर उषा
दूसरे श्रृंग पर पग धरती सकुचाई ।"[2]

---

*	युग की गंगा	:	केदारनाथ अग्रवाल	:	पृ॰ 18
2	पांचोली	:	रांगेय राघव	:	पृ॰ 26

इससे अलग सिने गीत जो सरसरी नज़र से बहुत साधारण से लगते हैं बड़ी गहरी अनुभूति को सहज भाषा एवं शिल्प द्वारा व्यक्त कर देते हैं । जैसे -

" चेहरे में घुल गया है हंसी चांदनी का नूर
आंखों में है चमन की जवां रात का सुरूर
सौ बार झिलमिलाए शमां आफताब की
अब क्या मिसाल दूं मैं तुम्हारे शबाब को" *

"फिल्म गीत कवि के भावों की अभिव्यक्ति के लिए नहीं पात्र की मनोदशा व्यक्त करने के लिए होता है । कई जगह गीत समय का बहाव दिखाने के लिए रखा जाता है ।"[2]

जब साहित्यकार के सम्मुख एक नई कला का जन्म होता है तो उसके अनुसार वह अपनी रचनाधर्मितामें नए प्रयोग करना प्रारंभ कर देता है । नई कला पुरानी शैली में व्यक्त होना स्वीकार नहीं करती ।

"भारतीय फिल्मों में संगीत को विशेष महत्त्व का स्थान प्राप्त है । संगीत में जितना महत्त्व धुन का है शब्दों की महत्ता उससे कम नहीं । ये गीत की धुन नहीं शब्द ही होते हैं जो जनता को भाव-विह्वल कर जाते हैं । जिस तरह फिल्म लेखन का हर क्षेत्र फिल्म तकनीक के साथ जुड़ा है गीत लेखन भी उसी जोड़नेवाली जंजीर की एक कड़ी है लेकिन इसकी मांगे दोहरी हैं । जहां, एक और भाषा तथा भावों का ध्यान होता है दूसरी ओर संगीत की सम्यक जानकारी भी जरूरी है ।"[3]

---

* फिल्म आरती : मजरूह सुलतानपुरी
2 फिल्मों में प्रवेश कैसे करें : विनोद तिवारी : पृ.24 आनंद
3 - वही - पृ.23 पेपर बेक्स : 1979

सिने गीत में कथ्य और अभिव्यक्ति दोनों का समान महत्त्व है । गीत का कथ्य कहानी और पटकथा के अनुरूप होता है और उसकी अभिव्यक्ति गीतकार एवं संगीतकार की संयुक्त देन होती है । सिने गीत में कथ्य सामान्यत: पुराना ही होता है किन्तु सिने गीतकार और संगीतकार अपने शिल्प के जादू से उसे इस तरह बांध देते हैं कि नया लगने लगता है । जैसे कबीर का यह दोहा लिया जा सकता है ।

"नैनन की कर कोठरी पुतरी पलंग बिछाय
पलकन की चिक डार के पी को लिया रिझाय ।" *

इसी आशय का सिने गीत है :

"हम तुम एक कमरे में बन्द हों
और चाभी खो जाए -
तेरे नैनों की भूलभुलैया में
बाबी खो जाए ....."[2]

सिनेमा में गीत का आयोजन पटकथा को आगे बढ़ाने, उसमें मनोरंजक तत्व को विकसित करने और कहानी को सुघड़ बनाने के लिए किया जाता है । इस व्यवस्था में जिस सिचुएशन पर गीत लिखा गया है उसकी विषय वस्तु का पूरा ध्यान रखना अति आवश्यक होता है ।

"फिल्मों में जो लोग गीत लिखते हैं उसके दो ढंग है । एक तो यह कि पटकथाकार व निर्देशक वह परिस्थितियाँ गीतकार के

---

* कबीर ग्रन्थावली

2 बाबी : आनंद बक्षी

सम्मुख स्पष्ट कर देते हैं जिनके अन्तर्गत कोई पात्र गीत गा रहा हो । परिस्थितियों के अनुसार यह सिर्फ प्रेम अभिव्यक्ति के लिए नायक अथवा नायिका के द्वारा गाया जा रहा प्रेमगीत हो सकता है जिसका कहानी के विकास से कोई सम्बन्ध नहीं । यह रहस्यमय ढंग का गीत भी हो सकता है जो किसी भावी घटना के संबंध में कोई इशारा करता है या फिर बच्चे को बहलाने या सुलाने के लिए मीठी लोरी भी हो सकती है अर्थात् जो भी परिस्थिति दी गई है गीतकार उसके अनुरूप ही गीत लिखकर तैयार करता है और फिर संगीतकार उसे किसी मोहक धुन में बांध देता है । दूसरा तरीका यह है कि पहले संगीतकार कोई धुन बनाता है जो स्थिति के अनुसार उदासी, मस्ती, ममता आदि भावों के अनुरूप होता है । फिर गीतकार उस धुन के उपयुक्त शब्द चयन करके ऐसा गीत लिखता है जो कि आवश्यक भाव भी व्यक्त करता हो और समझने में सरल हो । इस स्थिति से गीतकार को स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है । उसे शब्द, भाव व स्वर तीनों का मोहक मेल देना होता है ।* *

उदाहरण : गीत रचना पहले की गयी एवं संगीत रचना बाद में -

"पिया ऐसो जिया में समाय गयो रे
के मैं तन मन की सुध बुध गवां बैठी
हर आहट पे समझी वो आए गयो रे
झट घूंघट में मुखड़ा छुपा बैठी ।*2

पिया तू - अब तो आजा
शोला से मन में दहके
आके बुझा जा ... हा.... हा....

---

* फिल्मों में प्रवेश कैसे करें : विनोद तिवारी : पृ. 24-25
2 साहब बीबी गुलाम : शकील

सिनेगीत अपने भावात्मक रूप में स्वत: पूर्ण होता है उसमें अनेकानेक भावों अथवा परिस्थितियों के निरूपण का अवसर नहीं होता । एक भाव विशेष के गीत में सामान्यत: एक ही भाव का वर्णन किया जाता है । उसमें एक ही निवेदन, एक ही रस, एक ही अनुभूति का विस्तार होता है । यथा निम्न गीत देखा जा सकता है :

हे रोम रोम में बसने वाले राम
जगत के स्वामी
हे अन्तर्यामी,
मैं तुझसे क्या माँगू ।
तेरे चरणों की धूल जो पाए,
वो कंकर हीरा बन जाए,
माँगा जो मैंने पाया
इन चरणों में धाम । ... हे रोम रोम में

पिछले कुछ वर्षों से गीत का कलेवर कहीं कहीं बहुत ही बड़ा होकर सामने आया है । निर्माता निर्देशक मनोज कुमार ने फिल्म रोटी, कपड़ा और मकान के लिए एक बहुत लम्बा गीत रिकार्ड किया था ।

"महँगाई मार गई"
मनोजकुमार ने ही फिल्म क्रान्ति के लिए एक और लम्बा गीत रि ‍र्ड किया - "चना जोर गरम - ।

इस गीत का अन्तर्भाव एक होने पर भी इसमें अलग अल रसों की अभिव्यक्ति हुई है - यथा रौद्र रस :

---

* फिल्म नीलकमल : साहिर लुधियानवी

मेरा चना खा गया गोरा
खा के बन गया तगड़ा घोड़ा
मैंने पकड़ के उसे मरोड़ा
मार के टंगड़ी उसको तोड़ा - चना जोर गरम ।

श्रृंगार रस :

मेरे चने की आँख शराबी
इसके देखो गाल गुलाबी
इसका कोई नहीं जवाबी
जैसे कोई कुड़ी पंजाबी
नाचे छननछनन न
कोठे ऊपर मैंने पुकारा
सुन ले मोरे बलम - चना जोर गरम;

करुण रस :

मेरा चना खा गए गोरे
जो गिनती में थे थोड़े
फिर भी मारे हम को कोड़े
लाखों कोड़े टूटे फिर भी
टूटा ना दम खम - चना जोर गरम,

वीर रस :

मेरा चना है अपनी मरजी का
ये दुश्मन है खुदगर्जी का
सर कफन से बु बांध कर निकला है

अपनों से नाता जोड़ेगा
गैरों का सर यह फोड़ेगा
यह अपना वचन निभाएगा
माटी का कर्ज चुकाएगा । *

सिने गीत में कथ्य और अभिव्यक्ति दोनों का समान महत्त्व है । गीत का कथ्य फिल्म की कहानी एवं पटकथा के अनुरूप होता है और उसकी अभिव्यक्ति [शिल्प] गीतकार एवं संगीतकार की संयुक्त प्रस्तुति ।

गीतकार संगीतकार की बनाई हुई धुन के अनुरूप शब्द चयन, चित्र प्रधान कल्पना, आवरण विहीन भाव सौन्दर्य, वैयक्तिक राग-द्वेष, उल्लास, अश्रु, हर्ष, शोक आदि जीवन के विविध प्रसंगों के जीवंत लेखन से प्रभावशाली बना सकता है ।

आज के सिने गीत का मूल रूप संभवत: ग्रामों में प्रचलित लोकगीतों से माना जा सकता है । लावणी, नौटंकी, कव्वाली, कजरी बिरहा जैसी कई लोग गीतों की विधाएँ बहुत लोकप्रिय हैं जो पारसी रंगमंच और हिन्दी के प्रारंभिक नाटकों द्वारा अपनाई ली गईं थी । वहाँ से ये सीधी फिल्मों में प्रवेश पा गई ।

लावणी में प्रथम पंक्ति को बार-बार गाया जाता है । सिनेमा में इसी टेक पद्धति को प्रयोग में लाया जाता है । उर्दू के जनप्रिय छंद गज़ल में भी पहली पंक्ति दोहराई जाती है ।

---

* फिल्म क्रांति : संतोष आनंद

"कुछ लोग सिने गीतों का साहित्य में कोई भी ■ महत्व नहीं स्वीकारते ना ही इन्हें अध्ययन का विषय समझते हैं किन्तु इससे बड़ा सिने गीतों की लोकप्रियता का क्या प्रमाण हो सकता है कि ये गीत देशकाल की सीमाओं का बंधन तोड कर विश्व के अन्य देशों में लोकप्रियता की चरम सीमा पर पहुंच गए हैं । रूस ब्रिटेन, श्रीलंका, मारीशस, जर्मनी, पाकिस्तान, नेपाल, बर्मा, जापान, अमेरिका, इटली, फ्रांस आदि कितने ही देशों में भारतीय गीतों की मांग दिन पर दिन बढ़ती जा रही है । कुछेक देशों के आकाशवाणी संजाल तो नियमित रूप से हिन्दी गीतों का प्रसारण करते हैं ।" *

लेला ओ लेला
ऐसी मैं लेला
हर कोई चाहे मुझसे
मिलना अकेला ।[2]

सिने गीत कभी "स्वान्त सुखाय" नहीं रहा । उसकी अभिव्यक्ति और उसके निर्माण का प्रयोजन सदैव रहा है - "बहुजन हिताय" एवं "बहुजन सुखाय" -

सिनेगीत हिन्दी के प्रचार प्रसार में आपका महत्वपूर्ण योगदान निभा रहे हैं । सिने गीतों में बहुविधि भाषाओं, विचारधाराओं, विभिन्न जातियों, संस्कृतियों का समन्वय होता है । काश्मीर से कन्याकुमारी और आसाम से गुजरात तक की संस्कृति की झलक सिने गीतों के माध्यम से मिल रही है । हिन्दी सिने गीतों के

---

* हिन्दी अधिकारी, दक्षिण मध्य रेल्वे, सिकन्दराबाद श्री विजय कुमार मल्होत्रा से "विश्व भ्रमण" से लौटने के बाद साक्षात्कार ।

2 फिल्म कुर्बानी : इंदीवर

साथ अनेक प्रान्तीय भाषाओं और बोलियों का मिश्रण समय समय पर किया जाता है । विभिन्न प्रान्तों की लोक धुनें सिने गीतों में ढलके अखंड भारत की कल्पना को साकार कर रही है । जैसे -

अंग्रेजी में कहते हैं
आई लव यू
गुजराती में कहते हैं
तमे प्रेम करू छू
बंगाली में कहते हैं
आमो तुमा को भालो बाशी
और पंजाबी में कहते हैं
तेरे सौं.... के तेरे बिन मर जाना
के तेरे बिना नहीं जीना .. हो साथी रे । *

महाराष्ट्र प्रान्त की स्थानीय भाषा "मराठी" का प्रयोग करके गीत में बम्बई प्रान्त की मिली-जुली संस्कृति की झलक ।

अरे कहाँ चले काय झाला
जरा थांबा जरा थांबा
सोने जैसे प्यार को समय लिया तांबा[2]

दक्खनी हिन्दी जो हैदराबाद निकटवर्ती क्षेत्रों में हैदराबादी उर्दू के रूप में जानी जाती है -

खातुन की खिदमत में सलाम अपुन का
अजी पोट्टी पटाना है फकत काम अपुन का

---

* खुद्दार फिल्म

2 फिल्म लम्बे हाथ : अंजान

बातों नहीं करते हम हैदराबादी
हाथों में जो तेरे मेहंदी न लगा दो
तो नाम नहीं लेंगे हम अपने वतन का । *

पुरानी, बासी और मोनो टोनस लगनेवाली गीत वस्तु को संगीत को संगीतकारों ने पाश्चात्य संगीत उपकरणों और विविध संगीत सज्जा से नया रूप देने का सफल प्रयत्न किया है :

रात बाकी बात बाकी
होना है जो हो जाने दो ।[2]

सिने गीत माध्यम कितना ही मनोरंजक आधारित क्यों न हो उसमें राष्ट्रीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना तथा विचारधारा का समावेश किसी न किसी रूप में रहता है :

सांस्कृतिक :

देखो ओ दीवानों तुम ये काम न करो
राम का नाम बदनाम न करो ।[3]

राष्ट्रीय :

अपनी आजादी को हम
हरगिज मिटा सकते नहीं
सर कटा सकते हैं लेकिन
सर झुका सकते नहीं ।[4]

---

* खुद्दार फिल्म　　2 फिल्म नमक हलाल
3 हरे राम हरे कृष्ण　　4 फिल्म लीडर

सामाजिक :

तास के बावन पत्ते
पंजे छक्के सत्ते
सब के सब बड़े हरजाई
मैं लूट गया राम दुहाई *

सच कहा जाए तो भारत देश में हिन्दी भाषा के प्रचार प्रसार में उसे हिमालय से कन्याकुमारी और अटक से कटक तक गांव गांव नगर नगर के जनमानस में फैला देने का काम हिन्दी गीतों ने किया है ।

---

* फिल्म तमन्ना : आनंद बक्षी

खण्ड - दो : साठोत्तर परिवेश

अध्याय : 1.

युग परिवेश

युग-परिवेश : .. .. ..

० प्रास्ताविक :

पाँचवे दशक की समाप्ति के साथ साथ भारत की राजनैतिक उथल-पुथल में स्थिरता आ गई थी । जनमानस और बुद्धिजीवी वर्ग में स्वतन्त्रता के वास्तविक अर्थों की जिज्ञासा प्रारम्भ हो चुकी थी । बुद्धिजीवियों का वर्ग एक अजीब संत्रास का अनुभव कर रहा था क्योंकि उन्हें ऐसा लगने लगा था जैसे उनके सपनों का महल अचानक धराशायी हो गया हो । स्वतन्त्रता के बाद की जो कल्पना उनके दिमाग में थी वह राजनीतिक हथकंडों में जकड़ी जाने लगी । गांधीवादी विचार-धारा से स्पष्ट असहमति साहित्य में जहाँ एक तरफ लक्षित हो रही थी वहाँ दूसरी तरफ पूरा का पूरा राजनैतिक खेमा गांधीजी की खादी और उनकी विचारधारा को तलवार और ढाल की तरह इस्तेमाल कर

कर रहा था । बढते हुए भ्रष्टाचार एवं महंगाई ने भारतीय जीवन में विसंगति और त्रास भर दिया । मध्यवर्गीय शहरी जीवनकी परेशानियाँ और ग्रामों से शहर की ओर भागते हुए ग्रामीणों की यंत्रणामयी विवशता एवं अस्तित्व-संकट भय से चारों तरफ असुरक्षा का स्वर मुखरित हो उठा ।

" मूल्यों के ह्रास, विघटन तथा विलोप के वातावरण में जहाँ चारों ओर अविश्वास भरा है वहाँ मनुष्य का अकेला अनुभव करना तथा संदेह शंकाओं से घिर उठना स्वाभाविक है । चारों ओर परम्परा की पीड़ा है -- रूढियों का नागपाश है जिसमें वर्तमान मनुष्य को वैयक्तिक मुक्ति खोजती है । नैतिक और सामाजिक बंधनों की जकड़ और पकड़ भी कम नहीं है । कहाँ तक संघर्ष करे मनुष्य । कहाँ तक धीरज रखें । यहाँ तो सर्वत्र अंधेरे का ही राज्य है । " *

1960 के आसपासका परिवेश निरर्थक, एब्सर्ड, मूल्यहीन, संशय एवं भय से व्याप्त हो गया और जीवन में दुख और संताप बढने लगा जो बढ़ता ही गया ।

" आज समाज में हर जगह डबल स्टेण्डर्ड चल रहा है । लोग दोहरी जिन्दगी जी रहे हैं । समाज में भ्रष्टाचार बढा है । हर आदमी मानवता को तोड़ता नजर आ रहा है । " 2

---

* गीतकाव्य : रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी : पृ. 337 : सन् 1980

2 माधुरी : रघुनाथ लालानी : पृ. 12 : अक्टूबर 29-1982

पहचाना और स्त्री पुरुष के संबंधों जिनमें तनाव का अहसास पैदा हो रहा था उसे कुछ आदर्शवादिता का जामा पहनाने की कोशिश की :

" तुम्हीं मेरे मन्दिर तुम्हीं मेरी पूजा
तुम्हीं देवता हो
कोई मेरी आँखों से देखे तो
समझे कि तुम मेरे क्या हो ।" *

सामाजिक ढाँचे में पूरा फेर बदल हो गया । नयी पीढ़ी ने अपनी पुरानी पीढ़ी को पूर्णतया: अस्वीकार कर दिया । बेटे बहुएँ अपना अलग घर बसाने लगे । वृद्ध माता पिता के जीवन में असुरक्षा और अकेलापन आ गया । भौतिक साधनों की होड़ में पारिवारिक मतभेद बढ़कर भाई भाई अलग अलग होने लगे ।

परिवेश में निरर्थकता, मूल्यहीनता एवं संशयता व्याप्त हो गयी । जीवन में तनाव बढ़ने लगा । मध्यवर्गीय शहरी जीवन अस्तित्व संकट भय से गुजरने लगे ।

एक महल हो सपनों का
फूलों भरा आँगन हो
और साथ हो अपनों का । [2]

1960 के आसपास ही बिटनिक प्रवृत्ति का उदय हुआ । ये प्रवृत्तियाँ आधुनिक जीवन प्रवृत्तियों का परिणाम थी । इसमें समाज में

===

* फिल्म : खानदान : साहिर लुधियानवी

2 फिल्म : एक महल हो सपनों का : साहिर लुधियानवी

व्याप्त पाखंड, आडम्बर, वैज्ञानिक यान्त्रिक विकास, खोखले गलित अतीत और मिथ्या भरे वर्तमान के विरुद्ध विद्रोह और प्रतिशोध की भावना थी । यह आन्दोलन अमेरीका से चलकर पूरे विश्व में फैला बिटनिक आन्दोलन साहित्यिक चेतना ही नहीं, बल्कि संसार में व्याप्त पाखंड और आज की बुराइयों और दुखों से भरी यान्त्रिक सभ्यता को समाप्त कर मुक्त निश्चल सरलता, सादगी, प्राकृतिक नैकट्य और प्रेम से परिपूर्ण संसार का निर्माण चाहता था । बिट साहित्यकारों का विश्वास है कि अचेतन मन की उन्मुक्त नग्न अभिव्यक्ति ही जीवन सत्य है । और उसे उत्तेजित करने के लिए यह लोग भांग, चरस, अफीम एलएसडी, मेन्ड्रेक्स आदि नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं । इस नशे का उद्देश्य उनके अनुसार दृश्य जगत को छोड़कर अदृश्य जगत और जीवन के अचेतन स्वर की निरंतर खोज करना है ।

" दम मारो दम
मिट जाए ग़म, बोलो सुबह शाम
हरे कृष्ण, हरे राम । " *

1.1. उदय : ... .. .

परिवेश की दृष्टि से साठोत्तर फिल्म रचनाकारों की पीढ़ी विशिष्ट है । इन रचनाकारों में से अधिकांश का पालन-पोषण और विकास स्वतन्त्र भारत में हुआ । इसके पूर्व यह पीढ़ी स्वतन्त्रता के सही अर्थ या मूल्य को पहचान पाती उसे अपने चारों और भ्रष्टाचार भाई-भतीजावाद, जातिवाद, प्रान्तीय संकीर्णता, गुटबंदी, बेरोजगारी नौकरशाही के घृणित परिणाम, स्मगलिंग, पुलिस जुर्म आदि ही दिखे ।

---

* हरे राम हरे कृष्ण : आनंद बक्षी

इसी आधार पर साठोत्तर अपराध चित्रों की बाढ सी आ गई :

चल शु रु हो जा,
वन टू वन टू,
चला मुक्का,
जमा थप्पड़ लगा टक्कर,
गिरा नीचे । *

स्वतन्त्रता से 1965 तक नेहरु युग था । चीन और पाकिस्तान का आक्रमण, नेहरु और शास्त्री की मृत्यु, कुछ ऐसी घटनाएं हैं जो इतिहासकी विभाजक रेखाएं बनने की क्षमता रखती है किन्तु फिल्म व्यवसाय की नहीं । इन घटनाओं ने युग के उस चिंतन प्रवाह को हिला दिया जो स्वतन्त्रता से इन घटनाओं तक एक सम्मोहन-सा छाया हुआ था । भारतीय जनता इस सम्मोहन में इस कदर फंस गई थी कि उसे अपने पैरों तले के यथार्थ की पहचान ही नहीं हो रही थी ।

भारतीय अपराध चित्रों ने इस यथार्थ की तरफ जनता की दृष्टि खींची — ये फिल्में कोरी कल्पनाएं नहीं बल्कि यथार्थ की सम्मोहन से टकराहट रही, नेहरु कालोत्तर काल में भारतीय जनमानस में पहचाना कि वह कैसे भयानक जाल में फंसा हुआ है और कितना निहत्था, नंगा, बौद्धिक रूप से दिवालिया और कंगाल हो गया है - शायद ब्रिटिश काल से भी अधिक।कोरी स्वतन्त्रता की आड में पनपते पूंजीवाद ने अपराध के रास्ते रक्त चूसना शुरु कर दिया था । आस्था के वे सारे स्वप्न धराशायी हो गये जो कि कभी हमारे वर्तमान को समाजवादी भविष्य से मिलानेवाले प्रतीत होते थे । नेहरु की मृत्यु (1964)

---

* हमजोली : आनन्द बक्शी

से पहले ही, भुवनेश्वर में समाजवादी समाज की योजना के चिथड़े हो चुके थे ।

नेहरू कालोत्तर स्थिति में स्वप्नभंग होने पर व्यक्ति से विद्रोह तो उठा, पर ठंडा, आक्रोश भी हुआ पर अपने में सहमा हुआ । उसके सामने भूख, सेक्स, गरीबी, कुर्सी आदि की लड़ाई तो थी ही पर सबसे भयंकर लड़ाई स्वयं उसके भीतर थी, स्वप्न, आस्था, विश्वास जब बुलबुलों की तरह फूट गए तो उसे अपने भीतर की शून्यता, अकेलापन व्यर्थता, बोध एवं अपनी निरर्थकता जैसे भयंकर शत्रुओं से लड़ना पड़ा ।

कसमें वादे प्यार वफा
सब बातें हैं, बातों का क्या
कोई किसी का नहीं ये झूठे नाते हैं
नातों का क्या । *

स्वतन्त्रता के पहले इन आंतरिक यथार्थ समस्याओं को गांधीवादी आध्यात्मिक शक्तियों से नत्थी कर दिया जाता था और उसके पश्चात सम्मोहन के युग में राजनैतिक संस्थाओं और समाजवादी मनसूबों में समाधान खोजा जाता था । फिल्म रचनाकार इस संत्रास को बार-बार मनोरंजन की शर्करा में लपेटकर पेश कर रहा था ।

आज समस्याओं का नग्न रूप सामने हैं । समस्याओं की पूर्वकालीन कृत्रिम आकृतियां धुएं के बादल सी विलीन हो चुकी है । इन्हीं समस्याओं में से जीवन की वास्तविकता झांक उठती है ।

---

* उपकार : गुलशन बावरा

जिन्दगी है क्या बोलो जिन्दगी है क्या
जिन्दगी है लट्टू चहा जहा नचालो -
चाहे जिधर घुमा लो
भाडे का जैसे टट्टू । *

1.2. युग संदर्भ : ....

स्वातन्त्र्योत्तर भ्रष्टाचार और विसंगतियाँ साठोत्तर-परिवेश को और अधिक विषाक्त और जर्जर करती रहीं - इसके साथ ही बहुत कुछ नया घटित हुआ जिसने फिल्मकार की चेतना पर संवेदना के नए धब्बे छोड़े ।

पाक-चीन संघर्ष, चौथा आम चुनाव, राजनैतिक संकट और निरन्तर भयावह होती हुई आर्थिक परिस्थितियों ने एक ऐसा सामाजिक संदर्भ उपस्थित किया जिसमें पलायनवादी साठोत्तरी फिल्मों का निर्माण होता रहा । इन उप-शीर्षकों में सामाजिक संदर्भ की नीचे विवेचना की गई है ।

1.2.1 पाक-चीन संघर्ष : ... ...

साठोत्तरी महत्वपूर्ण घटनाएं - चीन का आक्रमण (1962), नेहरू का निधन (1964), पाकिस्तान का आक्रमण (1965), लालबहादुर शास्त्री का निधन (1966) हैं ।

इन घटनाओं ने भारतीय जनता के इस स्वप्निल विश्वास को

---

* सत्यकाम : कैफी आज़मी

भंग कर दिया कि भारत और किसी अन्य राष्ट्र के बीच शत्रुता नहीं होगी ।

चीनी आक्रमण की सरकारी घोषणा ने { 1962 } हमारी एक लम्बी और घातक नीति को तोड़ा । रेगिस्तान में मुंह छुपाए हुए शुतरमुर्ग की स्थिति से भारत जागा । पंचशील का वह नपुंसक सिद्धान्त सूत्र जो शुभ-काल में ही मात खा चुका था फिर चिथड़े-चिथड़े हो गया । नतीजा हुआ नेहरू की मृत्यु ।

ढाई तीन वर्ष के बाद ही पाकिस्तान ने आक्रमण कर दिया । इस युद्ध में भारतीय जवानों ने वीरता भी दिखाई किन्तु अंत में अन्तर्राष्ट्रीय दबाव से हमारे बढ़े हुए कदम बिना शर्त पीछे हट जाए । परिणाम हुआ हमारे लालबहादुर का स्वर्गारोहण ।

हिन्दुस्तान की कसम,
हिन्दुस्तान की कसम
न झुकेगा सर हमारा
हर जवान की कसम *

हमारी आर्थिक दशा दयनीय हो गई । भारतीय विदेश-नीति और प्रतिरक्षा नीति में परिवर्तन लाया गया । इसी समय हमारी योजनाओं की असफलताएं सामने आयी, । नवम्बर, 1963 में तीसरी पंचवर्षीय योजना का पुर्नमूल्यांकन किया गया तो जो वास्तविकता स्पष्ट हुई उन्होंने हमारे सम्मोहन को और तोड़ा ।

मोह-भंग के इन क्षणों ने हमारा समृद्धि का नारा छूटा और जीवन को अधिक वैज्ञानिक और यथार्थवादी दृष्टि से देखने समझने की

---

* हिन्दुस्तान की कसम

प्रेरणा मिली :

कफ़न से ढके बैठे हैं हम सपनों की लाशों को
हमें नफ़रत से मत देखो जरा हम पर रहम खाओ,
अरे ओ रोशनी वालो । *

चीन पाक आक्रमण के वातावरण में कम ही फिल्में बनी । अधिकतर फिल्में अपराध जगत के अन्दरूनी शत्रुओं के कारनामे दिखाते हुए ही बनी । इन अनदरूनी शत्रुओं की मार-बाहरी शत्रुओं से कई गुना ज्यादा थी जो पूरे भारत की अर्थ-व्यवस्था को खोखला और जीवन को मूल्यविहीन करे दें रही थी ।

1.2.2. युद्ध : ....

" जबतक हमलावर मौजूद है [चाहे वह बेरकों में हो] यदि ऐसे निजाम मौजूद है, तबतक ये हमले होते रहेंगे ।" [2]

इस कथन में युद्ध की अनिवार्यता के प्रति सजग एक कलाकार की पीड़ा बरबस बाहर निकल पड़ी है । संसार में हमलावरों की स्थिति भय और आतंक का वातावरण बनाए रखेगी । युद्ध में हमारी देह ही नहीं नष्ट होती - वे आदर्श और मूल्य भी नष्ट होते हैं जिनके लिए जिया जाता है । मानव के अन्तर में और बाहर सर्वत्र युद्ध चल रहा है । मन की इस युद्ध से मुक्ति ही अभीष्ट है :

---

* (संबंध) प्रदीप

2 छट्ठे सातवे दशक की हिन्दी कहानी : कमलेश्वर
नवल किशोर वातायन वर्ष 7, अंक 7-8

राकेट कोई चढ़ाता है
कोई एटम बम बनाता है
अमन के नाम पे देखो वो
दुनिया पर रौब जमाता है
बारूद अगर ये चल जाये
सारी दुनिया जल जाए
तो फिर उसके बाद ? तुन - तुन - तुन *

2.3 चौथा आम चुनाव : ... .. .

साठोत्तरी परिवेश में चौथे आम चुनाव का स्थान महत्त्वपूर्ण है । इस चुनाव तक कांग्रेस के तथा अन्य पार्टियों के भ्रष्टाचारी तत्व उभर आए थे । कांग्रेसी भ्रष्टाचारी तत्वों को कांग्रेस की पराजय के लिए अन्य पार्टियों ने भी अपनाया ।

दो किस्म के नेता होते हैं
एक देता है, एक पाता है ।
एक देश को लूटके खाता है,
एक देश पे जान लुटाता है । [2]

अमेरिका एवं उद्योगपतियों की पूंजी ने भारतीय जनतंत्र को धनतंत्र बना दिया था । एक ओर वे पूंजीपतियों से साठगांठ कर रहा था तो दूसरी ओर राजनैतिक पार्टियों से भी । पूंजीवाद और सामंतवाद के साथ [redacted] साम्प्रदायिकता और जातिवाद के भी तत्व सक्रिय थे । गो-वध, भाषावाद, हरिजन, प्रान्तीय अलगाव ये सारे अस्त्र के रूप में

---

* यादगार : इन्दीवर
2 यादगार : इंदीवर

सिर्फ चुनाव जीतने के लिए इस्तेमाल किए जा रहे हैं । कांग्रेस भी इन तत्वों का सहारा ले रही थी । वह भी अन्य और जनतंत्र विरोधी भावनाओं का पोषण करती रही किन्तु अन्य पार्टियां कांग्रेस से भी आगे बढ़ गई । कांग्रेस के द्वारा सुलगाई हुई चिंगारियों से भयानक विस्फोट हुआ जिससे कांग्रेस का गढ़ ही डगमगा गया । समाजवाद और प्रजातंत्रवाद केवल नारों में ही शेष रह गए । जनता दिशाहीन हो गई । सारा देश गतिहीन हो गया ।

इस चुनाव में कई स्थानों पर कांग्रेस की हार हुई । ये चुनाव केवल सिद्धान्तों की खोखली चर्चा पर लड़े गए थे, प्रतिक्रियावादी और अन्धी राजनीति की बलिवेदी पर सारे सिद्धान्त चढ़ा दिए गए ।

दल-बदल वाली भ्रष्ट और अनिश्चित राजनीति ना वर्तमान को ही सुनिश्चित बना सकी और ना भविष्य के संबंध में ही कोई निश्चित दिशा निर्देश कर सकी । संयुक्त सरकारों में मुख्यमंत्री का नेतृत्व बेमानी और असंभव हो गया । सांप्रदायिकता इतनी खुलकर कभी सामने नहीं आई थी ।

" आपस में प्रेम करो देश प्रेमियों । " [1]

इस चुनाव से एक प्रकार के राजनीतिक [illegible] अधोपतन का ही परिचय प्राप्त हुआ । चारों ओर कुर्सी बचाव अभियान चालू था ।

राम न करे मेरे देश को कभी ऐसा नेता मिले
वोट लिया और खिसक गया जब कुर्सी से
चिपक गया ।
कि फिर उसके बाद - तुन तुन तुन तुन [2]

फिल्म देशप्रेमी 2 यादगार : इंदीवर

कुर्सी हथियाने के लिए ऐसे ओछे स्वार्थों का प्रदर्शन हुआ कि सामान्य जन स्तब्ध रह गया ।

दौर नहीं ये दौर नहीं
ईमानों का दौर नहीं
फर्ज यहाँ पर फर्जी है
असली तो खुदगर्जी है *

" कुर्सी पाओ " राजनीति मंत्रीपद का आश्वासन चाहती थी और " कुर्सी बचाओ " राजनीति के लिए मंत्रीपद का विस्तार आवश्यक हो जाता था । इस घातक राजनैतिक वातावरण में शासन तंत्र अर्न्तविरोधी से त्रस्त था । प्रादेशिक मंत्री परिषद के सर पर हर क्षण केन्द्रीय तलवार लटकी हुई दिखाई देती थी । प्रशासन नीति और कार्यक्रमों के प्रति जनता की कोई आस्था शेष नहीं थी । केन्द्रीय सरकार बाहर से एक दिखाई पड़ने का नाटक कर रही थी पर अन्दर से पूर्ण विस्फोटक स्थिति में थी । भाषानीति, वाम और दक्षिण पंथी तत्व अन्तर पैदा कर रहे थे । जनता कांग्रेस से ऊब चुकी थी । प्रशासन में भ्रष्टाचार उग्रतर हो रहा था -- लाठी, गोली, पुलिस, कर्फ्यू, धारा 144 ने प्रजातंत्र को एकतंत्र बना डाला ।

और नहीं बस और नहीं
गम के प्याले और नहीं
सच्चाई का मोल नहीं
चुप हो जा कुछ बोल नहीं
प्यार प्रीत चिल्लाएगा

---

* फिल्म रोटी,कपड़ा और मकान : संतोष आनंद

तो अपना गला गवाएगा
पत्थर रख ले सीने पर
कसमें खा ले जीने पर *

राजनीति दिशाहीन हो गई । सत्ताधारी पार्टी कोई भी निश्चित कार्यक्रम नहीं बना पाई । निजी स्वार्थ और आन्तरिक विघटन कुछ भी नहीं करने दे रहे थे । प्रेस और प्रचार के साधनों पर सरकारी एवं पूंजीपति का अधिकार था । प्रचार का इतना दुरुपयोग सम्भवत: किसी काल में नहीं हुआ ।

योजनाएं बनती रहीं । केवल कागज़ों में जीवन स्तर ऊंचा उठता रहा लेकिन यथार्थ में जन-जीवन पिसता गया और भूख, गरीबी, मंहगाई जनसंख्या वृद्धि, बीमारी, आवास, बेरोजगारी, शिक्षा, भाषा आदि समस्याओं में फंस कर रह गया ।

दिल की बात दिल से जो छुपाई मार गई
दिल की बात दुनिया को बताई मार गई
बाकी कुछ बचा तो महंगाई मार गई । [2]

1.2.4 योजना : ... .. .

1963 में योजना आयोग की तीसरी योजना और सूझ-बूझ का पर्यवेक्षण किया गया । 1963 से 1967 तक योजना आयोग अमरीका और रूस की पूंजी, जनता के कर और बचतों को लेकर योजना चलाता रहा ।

---

* रोटी, कपड़ा और आनंद : संतोष आनंद
2 वही

गाडगिल महोदय ने 1967 में चौथी योजना का स्थगन कर दिया । परिणामस्वरूप सारे देश की आर्थिक योजना पंगु हो गई । योजना के लिए देशी और विदेशी साधन समाप्त प्राय: हो गए । 1968 में चौथी योजना के प्रति बड़ा ढिलमढिल रवैया अपनाया गया योजनाओं को इस प्रकार करते देखकर बुद्धिजीवी वर्ग एकदम क्षुब्ध और भयभीत हो गया ।

आर्थिक योजना को ठीक करने के उद्देश्य से देश की विस्फोटक रूप से बढ़ती हुई जनसंख्या को नियंत्रित करने का संत्रास भरा अभियान शुरू हुआ परिवार नियोजन :

क्या मिल गया सरकार
नसबन्दी कराके
नसबन्दी कराके हमारी पुंगी बजा के । *

वास्तव में इस योजना ने कुछ रूढ़ि-धर्मी जन-मानस को झकझोरा । भारतीय संस्कारी मन परिवार नियोजन के आर्थिक पक्ष को ठीक से आत्मसात नहीं कर पाया ।

1•3•अर्थ-संकट :

... .

1•3•1 अ का ल

1966 से 1967 में बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्य-प्रदेश और राजस्थान में अकाल का तांडव हुआ । इस अकाल की विभीषिका ने जन-जीवन को घोट दिया । अकाल में केवल गरीब मरे । धनवान और नेता सभी सलामत रहे और अपने धर्म और राहत कार्यों का ढिंढोरा पीटते रहे । गला फाड़ फाड़ कर अकाल से त्रस्त मानव को भाषण का

---

* नसबन्दी : हुल्लड मुरादाबादी

जहर पिलाते रहे :

ऐ किसानो ये धरती
तुम्हारी है माँ
जिन्दगी में कोई माँ से भार नहीं
मेरी आवाज सुन लो
मेरे साथियों
फिर न कहना के तुमको
पुकारा नहीं । *

ये अक्काल प्राकृतिक तो था ही, साथ ही मनुष्यकृत भी । गाँव के गाँव अकाल की चपेट में आ गए । ग्रामीण जन शहरों की ओर भागने लगे । भारतीय ग्रामीण भिखारी बन गए । किसान भीख माँगने पर मजबूर हो गया । अबलाएँ लुट गईं ।

इतना बड़ा सवार कहो खाए कहाँ से
जीने के ये सामान भला लाए कहाँ से [2]

1.3.2. <u>भ्रष्टाचार</u> : .. ..

यह वह स्थिति है जहाँ कथनी और करनी में आकाश पाताल का अंतर हो । स्वतंत्रता के बाद यदि कोई सबसे बड़ी उपलब्धि भारत में हुई है तो उसे " भ्रष्टाचार " कहा जा सकता है । आज का भारतीय जनमानस इस प्रवंचना से पीड़ित है ।

---

* गंवार : राजेन्द्रकृष्ण
2 गंवार : राजेन्द्रकृष्ण

इन मानवता, अहिंसा और सत्य में हर झूठ, हर भ्रष्टाचार, हर हिंसा और हर फरेब जायज है .... कोठियाँ और बैंक बैलेन्स बनानेवाले अपरिग्रह का उपदेश देते हैं, सादगी की महिमा बखान कर गरीबी को गौरान्वित करते हैं । बेशर्म चालबाजी को प्रश्रय देकर गद्दियों से चिपके जब नेता त्याग सदाचार और श्रम की महिमा बखानते हैं । हर कुत्ता और भेदभाव को ही व्यवहारिक राजनीति बना डालनेवाले बन्धुत्व और समता का उपदेश देते हैं । जाति और रिश्वत की चक्की के बीच प्रजातंत्र की साँसे टूट गयी है और जिन्दगी की छोटी से छोटी आवश्यकता के लिए कोई भी साफ-सुथरा रास्ता नहीं बचा है । असंख्य भूखे बेकार और दिग्भ्रान्त मानतव के आगे कोई वृक्षारोपण करता है तो कोई भूमिदान ... देश की आत्मा को प्रजातंत्र के इस राष्ट्रीय झूठ { प्रवञ्च * ने ही शायद सबसे अधिक तोड़ा है । *

ईश्वर, पुर्नजन्म, एवं धार्मिक व्यवस्थाओं में अब जीवन से जुड़ी हुई कोई सच्चाई नहीं दिखाई देती । धर्म के नाम पर शोषण करनेवाली कुछ पार्टियाँ अब भी इन्हें हौव्वों के रूप में जीवित रखने की चेष्टा में संलग्न है ।

ये दक्षिणा की रीत, ये पंडों के छलावे
दूकान में बिकते हुए
मंदिर के चढ़ावे
ऐसे ही अगर धर्म
का व्यापार चलेगा
भगवान का दुनिया में
कोई नाम न लेगा ।[2]

---

* एक दुनिया : समानान्तर : राजेन्द्र यादव : पृ. 33

2 यादगार : इंदीवर

वर्ण व्यवस्था चरमरा चुकी है । भ्रष्टाचार को वृत्तियों को नियन्त्रित करनेवाले नैतिक और धार्मिक मूल्य अपने दिन गिन रहे है । तथाकथित नेता और कर्मचारी खुले आम रिश्वत ले रहे हैं और जनता के लिए जो कुछ सरकार देना चाहती है उसे बीच ही में हड़प कर रहे हैं ।

चीन के आक्रमण के समय सारे देश की जनता ने एकजुट होकर देश के जवानों के लिए धन-स्वर्ण वस्तु का दान दिया इसका अधिकांश कुछ अधिकारी बीच ही में निगल गए ।

बड़ा किसान, क्षत्रिय, नेता और व्यापारी वर्ग भ्रष्टाचार में डूबा हुआ है । गांव के स्तर पर सरकारी कर्मचारियों में चौकीदार लेखपाल, गिरदावर, तहसीलदार, ओवरसियर, अमीन आदि भ्रष्टाचार के यंत्र बने हुए है ।

सरपंच, प्रधान, ग्रामसेवक अपने ढंग से भ्रष्टाचार की सेवा कर रहे हैं । गांधी-टोपी और खादी इन भ्रष्टाचारियों के कवच है । कोई भी भ्रष्टाचार के राक्षस से बचकर नहीं जी सकता ।

रामचन्द्र कह गए सिया से ऐसा
ऐसा कलजुग आएगा -
हंस चुगेगा दाना तिनका कौव्वा मोती खाएगा
राजा और प्रजा दोनों में होगी निसदिन खींचातानी
कदम कदम पर करेंगे दोनों अपनी अपनी मनमानी
जिसके हाथ में होगी लाठी भैंस वही ले जाएगा । *

---

* गोपी : राजेन्द्रकृष्ण

1.3.2 आर्थिक शोषण : ... .. .

साठोत्तरी परिवेश में उच्च वर्ग द्वारा जन सामान्य का आर्थिक शोषण स्पष्ट होकर दिखाई पड़ता है । उच्च वर्ग एवं पैसेवाला वर्ग पैसे के बल पर आदमी को केवल यंत्र में बदल चुका है । जनता का शोषण तो खुले आम हो ही रहा है ।

गंगा से भी है पावन मजदूर का पसीना
पानी का समझेंग अनमोल ये नगीना *

सरकार, दफ्तर, व्यापार, कानून, जीवन के हर स्तर पर आर्थिक शोषण अनवरत रूप से हो रहा है जिसका नतीजा अमीर और अमीर एवं गरीब और गरीब होता जा रहा है । बीच की खाईं निरंतर बढ़ती जा रही है । ऐसी स्थिति में एक न एक दिन तो विप्लव होगा ही ।

1.4. आधुनिक दृष्टि : .. .. ..

साठोत्तरी परिवेश में भारतीय जन-जीवन में आधुनिकता का तत्व बहुत अधिक दिखाई पड़ता है । इस आधुनिकता बोध ने साठोत्तरी फिल्म रचनाकारों को साठ से पहले की पीढ़ी से अलग कर दिया है । इसका कारण यह है कि साठोत्तरी काल में मोहभंग और स्वप्नभंग की स्थितियाँ बहुत ही विस्फोटक हो गईं; राजनीति और अर्थनीति के क्षेत्र में भ्रष्टाचार की कड़वाहट से जुड़ा हुआ जो गतिरोध उपस्थित हुआ वह असह्य हो गया ।

---

* यादगार : इन्दीवर

समस्त परिवेश द्वन्द्वों विसंगतियों और अन्तर्विरोधों से इस प्रकार भर गया कि मानव अस्तित्व अपनी समस्त म गहराइयों में हिल उठा । चाहे व्यवहारिक क्रांति के स्तर पर न हो संवेदन के स्तर पर यह अनुभव किया जाने लगा कि पुराने ढंग से जीवित रहना असंभव है और परम्पराओं को स्वीकारना एक सामूहिक आत्मघात का कारण बन सकता है । फलत: आधुनिकता की अनिवार्यता सार्थक होने लगी और सभी स्थापित मान्यताओं और मूल्यों को चुनौती दी जाने लगी । इस यथार्थ युग में आधुनिकता का नारा सबसे ऊँचा हुआ ।

1.4.1 <u>आधुनिकता</u> : ....

आधुनिकता को कई दृष्टिकोणों से परिभाषित किया गया है । पहली दृष्टि इतिहास और काल प्रवाह के संदर्भ में आधुनिकता को समझने की रही है जिसमें आधुनिकता के आरंभ और उसके विकास-क्रम की चर्चा की जाती है । अनेक विचारक आधुनिकता के अनेक इसके है तत्व को कालगत न मानकर प्रवृत्तिगत मानते हैं । इसमें यह प्रवृत्ति प्रत्येक काल में प्रकट होकर ऐसे मान-मूल्यों को चुनौती देती रहती है जिनको बौद्धिक समर्थन प्राप्त नहीं होता :

दुनिया ने हमको दिया क्या
दुनिया से हमने लिया क्या
हम इसकी परवाह करें क्यों
इसने हमारा किया क्या । *

---

* हरे रामा हरे कृष्णा : आनंद बख्शी

वर्तमान में उपस्थित प्रत्येक फिल्मकार आधुनिक हो हो ऐसा आवश्यक नहीं फिर भी अधिकांश प्रतिशत को आधुनिक दृष्टिकोण अपनाना ही पड़ता है क्योंकि परिवेशगत परिवर्तन जन हृदय को आधुनिक बना देता है ।

"असल में आधुनिक होना समयहीन [टाइमलेस] होना है और भी सीधे कहें तो कह सकते हैं आधुनिक होना शाश्वत होना है।"*

आधुनिकता का सीमित अर्थ जो कुछ भी आज है वही आधुनिकता है, एक भ्रांति है जिससे बचना श्रेयस्कर है । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि युग संदर्भ या युग बोध से आधुनिकता कटी होती है । समय से कटकर समय को काटनेवाली शाश्वत रचनाएँ संभव नहीं हो सकती । आज भी अत्यन्त आधुनिक कहलानेवाली फिल्में समय से कटी हुई नहीं है । जैसे " रोटी", " सारा आकाश", " अर्थ", आक्रोश "; चक्र" ' मासूम" आदि ।

आधुनिकता से पुरानी पीढ़ी कितनी ही चिढ़े, ईश्वर धर्म नैतिकता और स्थापित जीवन मूल्यों में कितनी ही खलबली आए, जीवन कितना ही संत्रस्त और आतंकित दिखलाई पड़े किन्तु आधुनिकता एक अनिवार्य स्थिति है जिसे मनुष्य को स्वीकार करना होगा ।

न मुँह छुपा के जियो न सर झुका के जियो
गमों का दौर भी आए तो मुस्कुरा के जियो ।[2]

1.4.2 आधुनिकता के लक्षण :

आधुनिकता एक सतत गति का ही नाम है । जहाँ झुकाव आने

---

* अपनी शताब्दी के नाम : दूधनाथ सिंह : पृ. 174
2 हसराज :

लगे और जहाँ जीवन के मूल्य और स्थितियाँ स्थिर और स्थापित होने लगे वहाँ समझना चाहिए कि आधुनिकता बधित हो रही है । गतिहीनता प्रतिक्रिया का लक्षण है और प्रतिक्रिया सन्निहित स्वार्थों के लिए प्रयुक्त होती है । यहाँ गतिशीलता को प्रगति के पारिभाषिक और साम्प्रदायिक अर्थ से भिन्न समझना चाहिए जो जीवन की गतिशीलता है उसको स्वीकार कर और पूर्व-पीढ़ियों के प्राप्त विश्वासों और बुद्धिहीन परम्पराओं को नकार कर ही जीवन और रचना की गति-शीलता को मुक्त किया जा सकता है ।

जीवन चलने का नाम
चलते रहो सुबह शाम
कि रस्ता कट जाएगा
कि बादल छँट जाएगा मितरा
कि दुख से मिलना ना मितरा
कि एक पल रुकना ना मितरा *

भारतीय जीवन में आधुनिकता की किरणें पाश्चात्य संस्पर्श से कटी थी । वहाँ के वैज्ञानिक चिंतन और आन्दोलनों का इसके विकास और विस्तार में पर्याप्त हाथ रहा है ।

"बुद्धिजीवी के वर्ग के लिए आधुनिकता मात्र एक सुरक्षा कवच रह गयी ।" 2

---

* शोर : चन्द्रजीतसिंह तुलसी

2 राजीव सक्सेना : आधुनिकता एक चुनौती की चुनौती
हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा
पृ. सं. 5

"इस प्रकार उसका [आधुनिकता का] अर्थ अब रह गया है जीवन के साक्षात्कार से मुँह चुराना और एक कृत्रिम आधुनिकता का संसार रचकर उसमें डान-क्विक्जोट की तरह आक्रोश की तलवार भांजना । यह आक्रोश कोई विद्रोही भावना जागृत नहीं करता । केवल एक असहायता और असमर्थता का नपुंसक बोध देता है" *

भारत में साठोत्तरी इस्केपिस्ट सिनेमा की भरमार इसी आधुनिकता के नाम पर हुई है जिनका नायक सही अर्थों में "डान-क्विक्जोट" है । इन फिल्मों को देखकर जवान पीढ़ी भी काफी हद तक "डान-क्विक्जोट" के दर्शन पर चल कर चोट खा रही है ।

इस रूप में आधुनिकता कोई मूल्य-बोध नहीं रह जाती वह एक मात्र मुद्रा बन कर रह जाती है ।

"बियर और विदेशी शराबों के नाम गिनाए बिना आधुनिकता पूरी नहीं हो सकती । नायक लगता है कोई नौकरी नहीं करता बस बोर हुआ करता है और पिछड़े हुए लोगों पर "मित्रों पर, माता-पिता पर पत्नी पर लानत भेजना है और हर बार नई लड़की के साथ सोकर फिर बोरियत में डूब जाता है। भला हो अस्तित्ववादियों का कि उन्होंने अजनबीपन, अकेलापन, ऊब विसंगति और व्यर्थबोध जैसे शब्द दे दिए हैं जिन्हें ओढ़कर सहज ही आधुनिक बना जा सकता है । " 2

अधिकांश बम्बइया फारमूला फिल्मों का नायक उपरोक्त

---

* राजीव सक्सेना : आधुनिकता की चुनौती : हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा : पृ. 53

~~2 वही~~

कसौटी पर एकदम आधुनिक उतरता है । लेकिन अब युग बदल रहा है । ये आधुनिकता की झूठी खाल उतर रही है । इस बहुरूपिये नायक को आधुनिक कदापि नहीं कहा जा सकता ।

मैं हूँ बाबू जेन्टिलमेन
आ मिला ले मुझसे नैन *

1० 4.3. आस्तिकता : ... ...

नास्तिक होना भी आधुनिक होने की एक शर्त है । जो आस्तिकता की बात करता है वह ना जाने क्यों पुराना लगता है और उसे पुराना घोषित किया जाता है ।

" जो भी नास्तिक नहीं है वह आधुनिकता से दूर है । इस अमान्य सिद्धान्त के मानने से मनुष्य और भी घबराहट में पड़ गया है । " 2

सभी पूर्व युगों में आस्तिकता किसी न किसी रूप में बनी रही थी पर आज का व्यक्ति ऐसे किसी भी आधार में विश्वास नहीं जमा पाता जिसका निर्णय बुद्धि और विज्ञानसम्मत न हो । मनुष्य में यह विश्वास दृढ़ किया गया है कि बुद्धि सब प्रश्नों का उत्तर दे सकती है । इसलिए सभ्यता के युग का " " नीत्शे " जैसा विचारक ईश्वर की मृत्यु की घोषणा कर देता है ।

किसका रस्ता देखे ऐ दिल ऐ सौदाई
मीलों है खामोशी बरसों है तन्हाई ।[3]

---

* गोपी : राजेन्द्र कृष्ण

2 दिनकर : शुद्ध कविता की खोज में : पृ. 252

3 जोशीला : साहिर लुधियानवी

आजका मनुष्य नास्तिक इसलिए नहीं है कि ईश्वर की उसे आवश्यक नहीं है बल्कि इसलिए कि बुद्धि से ईश्वर सिद्ध नहीं किया जा सकता ।"*

फिल्मी गीतकारोंने भी बुद्धि की पकड़ में ईश्वर को लाने की चेष्टा की है ।

कहाँ तेरा इंसाफ़ है ।
मेरे सामने आए तू
विश्वास दिलाए तू [2]

समाज में ईश्वर और धर्म का नाम तो आज भी लिया जाता है पर उससे जीवन के लिए कोई प्रेरणा नहीं मिलती ।

जब लोगों को अहसास होता है कि जीवन से परे वाले जीवन का कोई अर्थ नहीं है तब उनके भीतर से वह आशा विदा हो जाती है जिससे मनुष्य बड़े-बड़े काम करने का साहस पाता है ।[3]

.4.4 नवीन नैतिकता :

मनुष्य की संवेदना के दो स्तर होते हैं - शुद्ध एन्द्रिय स्तर अर्थात जैविक स्तर और मानवीय स्तर । प्रथम स्तर प्राकृतिक है और नैतिकता से परे है किन्तु मनुष्य के विकसित विवेकने निरी संवेदना के साथ एक अनिवार्य नैतिक बोध भी जोड़ा है ।

पहले मनुष्योत्तर या परामानवीय कारणों से नैतिकता निर्मित

---

* दिनकर : शुद्ध कविता की खोज में : पृ. 247
2 सरगम : आनन्द बख्शी
3 दिनकर : शुद्ध कविता की खोज में : पृ. 246

और परिचालित होती थी । यह परमानवीय अनुभव और अनुशासन ईश्वर और धर्म के नाम पर चलते थे । किन्तु वैज्ञानिक युग में यह दोनों ही आधार खिसकने की स्थिति में है ।

विज्ञान की उन्नति के साथ साथ मानव का मूल्य बढ़ता गया है और मानवेतर का मूल्य घटता गया है । विज्ञान ने नैतिकता को ईश्वर-परक न मानकर मानव सापेक्ष मान लिया है । संसार का मापदण्ड मनुष्य को मानते ही हमारी नैतिकता के आधार में बहुत से अवश्यम्भावी परिवर्तन होने लगते हैं । [1]

मनुष्य की उत्पत्ति और विकास पर विज्ञान ने नए सिरे से विचार करके मनुष्य को एक यंत्र बना दिया ! इस यांत्रिकता में नैतिक बोध को भी एक यंत्रशासित व्यवस्था घोषित कर दिया ।[2]

कहा जा सकता है कि पशु से मनुष्य को पृथक करनेवाला विज्ञान मनुष्य को पशु बनाने लगा । यंत्र से मनुष्य को अलग करनेवाला विज्ञान मनुष्य को यंत्र बनाने लगा और नैतिक बोध को विशिष्ट निरूपित करने वाला विज्ञान नैतिकता को संदिग्ध करता गया । [3]

मनुष्य जीवन की यह विडम्बना हो गयी है कि आज वह पूर्णतः नैतिक भी नहीं रहा और अनैतिक भी नहीं । नैतिकता के संस्कार मनुष्य के वैयक्तिक और सामूहिक मानस में कहीं बहुत गहरे चले गए हैं और विज्ञान की शक्तियों से अभिभूत सामाजिक परिवेश में

---

* अज्ञेय : हिन्दी साहित्य का आधुनिक परिदृश्य : पृ. 18
2 वही : पृ. 20
3 वही : पृ. 21

उस नैतिकता का प्रतिफलन सम्भव नहीं रह गया इस अर्न्त विरोध में आज का व्यक्ति छटपटा रहा है । *

इसी बात को दिनकर ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है :

" जो न तो जड़ता को स्वीकार करता है न ईश्वर के अस्तित्व को । साथ ही पूरे मन से न तो जड़ता का त्याग करता है न ईश्वर के अस्तित्व का । असली वेदना उसी संदेहवादी मनुष्य की वेदना है । पश्चिम का आधुनिक क्रोध इसी पीड़ा से ग्रस्त है । इस अभागे मनुष्य के हाथ में न तो लोक रह गया है न परलोक । "[2]

उड़ते पंछी का ठिकाना मेरा ना कोई जहाँ
न डगर है न खबर है जाना है मुझको कहाँ [3]

यौनाचार के संदर्भ में नैतिकता अधिक भयावह लगती है। नैतिक मूल्य वहीं कचोटते हैं जहाँ वे मनपसंद औरत के साथ सोने में बाधक बनते हैं । आक्रोश और विद्रोह का निशाना बनते हैं वे सामाजिक सम्बन्ध जो उसको बोहेमियन जीवन के मार्ग में रोड़े प्रतीत होते हैं । [4]

ओस में भीगे भीगी आकाश के तले
जाना हम जल जाना लगाकर चार के सीने से
हो चूर थकन से होके जब सांस चले
हमको जीवन मिल जाता है जहर के पीने से [5]

---

* हिन्दी साहित्य का आधुनिक परिदृश्य : अज्ञेय : पृ. 21

2 शुद्ध कविता की खोज : दिनकर : पृ. 25।

3 कोरा कागज : एम.जी.हशमत

4 राजीव सक्सेना : हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा : पृ.52

5 दो चोर : मजरूह

1.5 मूल्य संक्रमण : ... ...

साठ ोत्तरी परिवेश में मूल्यों का बहुत तीव्रता से विघटन हुआ है और हमारा आचरण आज के मशीन तंत्र से बंध गया है। वैज्ञानिक विकास का जीवन के विघटन से जो मोह भंग हुआ उसकी पीड़ा सिने-कला और कलाकारों में भर गई।

बेका हो गई दुनिया
बीमार हो गई दुनिया
बिकने लगे सनम अब तो *

सभी पूर्व युगों में मनुष्य किसी न किसी मूल्य और मानवता में विश्वास करता था, किन्तु आज यह आधार टूटता जा रहा है। जिस मूल्य व्यवस्था का आधार विज्ञान सिद्ध नहीं है उसको मानने का साहस मनुष्य में नहीं हो सकता। दार्शनिक और विचारक भी इसी व वस्तु-स्थिति से प्रभावित हो रहे हैं।

विज्ञान और यांत्रिकी ने सामाजिक जीवन की पूर्व संरचना को इस प्रकार परिवर्तित किया है कि व्यक्ति अधिकाधिक आत्म-केन्द्रित होता जा रहा है।

हर कोई चाहता है एक मुट्ठी आस्मान
जो सीने से लगा ले हो ऐसा एक जहान। 2

आत्म-केन्द्रित व्यक्ति सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों में एक प्रकार से अजनबी बन रहा है। इन सम्बन्धों में जो परिवर्तन

---

* रोटी, कपड़ा और मकान : संतोष आनन्द
2 एक मुट्ठी आस्मान : इंदीवर

आया है उससे एक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई है ।

इस भरी दुनिया में कोई भी हमारा ना हुआ
गैर तो गैर थे अपनों का सहारा ना हुआ । *

साठोत्तर युग में परिवार की धुरी के रूप में पुरुष का एक शासन नहीं रह गया है । नारी की आर्थिक स्थिति और उसकी स्वतन्त्रता से पुरुष की परम्परागत स्थिति हिल गयी है ।

नारी कुछ ऐसा आगे निकल रही है
मर्दन के पांव तले धरती फिसल रही है
वो दिन गए के घरके चूल्हे या सरह पाया
एक पैर अब जमी पर एक चांद पर जमाया
बदली है जबसे औरत
दुनिया बदल रही है ।[2]

स्त्री पुरुष सम्बन्धगत मूल्यों को लेकर कितनी ही फिल्में इस युग में बनी :

फिल्में : दिल अपना और प्रीत पराई, हमराह, स्वयंवर
दो राहा, पति पत्नी और वो आदि ।

इस क्षेत्र में परिवर्तन बहुत तीव्र और चौंका देनेवाले हुए हैं । इस संबंध के दो बिन्दु है - वैवाहिक संबंध तथा प्रेम संबंध । विवाह संबंधों में सबसे अधिक परिवर्तन हुए हैं :

---

* भरोसा : राजेन्द्रकृष्ण
2 स्वयंवर : गुलजार

पराई हूँ पराई मेरी आरजू न कर
न मिल सकूँगी तुझको मेरी जुस्त जू न कर
जो मेरा फर्ज था मैंने उसे निभाया है
खुशी समाज की रखी ये दिल मिटाया है । *

विवाह की धार्मिक और सामाजिक प्रकृति समाप्त हो रही है । वह मात्र स्त्री पुरुष की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति का साधक है । पति अब पत्नी का देवता नहीं । सम्पूर्ण समर्पण का युग चला गया ।

कलके अन्धरों से निकलने
देखा है आँख मलते मलते
फूल हो फूल जिन्दगी में
बहार के [2]

विडम्बना तो ये है कि आज का पुरुष चाहे कितना आधुनिक क्यों न हो गया हो किन्तु पत्नी के रूप में उसकी म नारी कल्पना किसी न किसी अंश में उस परम्परागत मूल्य से अवश्य जुड़ी होती है जिसमें पत्नी पति की पूर्ण अनुमता बनकर आती है । वैचारिक धरातल पर वह चाहे इसका विरोध करता हो किन्तु व्यवहार रूप में वह इस मूल्य का आकांक्षी अवश्य है । [3]

1.5.1 प्रेम सम्बन्ध : ... .

प्रेम सम्बन्धों में भी अभूतपूर्व परिवर्तन आया है । ना

---

* कन्यादान : हसरत जयपुरी 2 गाईड : शैलेन्द्र
3 सविता जैन : समकालीन हिन्दी कहानी और मूल्य संघर्ष की दिशा
हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा : पृ. 125

पुराने एकनिष्ठ प्रेम आदर्श ही अवशिष्ट रहे और न प्रेम ही अब रोमांटिक भावों से अविष्ठ है ।

तुम अगर मुझको न चाहो तो कोई बात नहीं
तुम किसी और को चाहोगी तो मुश्किल होगी ।

इस सत्य को नकारते हुए भारतीय सिनेमा अधिकांशत: अभी भी प्रेम की दुहाई दे रहा है किन्तु ये प्रेम लव-स्टोरी जैसी फिल्मों में बालकों के स्तर पर उतर आया है ।

देखो मैंने देखा एक सपना
फूलों के शहर में है
घर अपना
क्या समा है
तू कहा है
मैं आई आई - आजा [2]

या " एक दूजे के लिए " के किशोर प्रेमियों के स्तर पर

हम बने तुम बने
एक दूजे के लिए
इसको कसम लगे
जो बिछुड़कर एक
पल भी जिए [3]

जैविक सामान्य यौन धरातल सामान्य भावों से संयुक्त हो गया है । न उसका

---

* दिल दिल ही तो है : जी.एल.रावल
2 लव स्टोरी : आनंद बख्शी
3 एक दूजे के लिये : आनंद बख्शी

नैतिक मूल्यों से ही संबंध रहा और न हर प्रेम की सामाजिक परिणति ही आवश्यक रही ।

आज के औद्योगिक युग में मानसिक जटिलता जितनी ही बढ़ती गई है, प्रेम संबंध भी उतना ही जटिल और अनिश्चित होता गया है । एकाधिकार की भावना ‖ चाहे पति पत्नी संबंध हो चाहे प्रेम संबंध ‖ अस्वीकृत होती जा रही है ।

फिल्मे : पति,पत्नी और वो , निकाह ।

पहले जहाँ छोटे छोटे संदेहों से एकाधिकार तिलमिला उठता था और घर में बवण्डर मच जाता था वहाँ आजका व्यक्ति संशय और संदेहों की स्थिति में भी जीने का अभ्यासी होता जा रहा है ।

आज यह समझा जाने लगा है कि किसी को बन्धनों में बाँध कर रखना कठिन है । इसलिए पारिवारिक और मानसिक शान्ति बनाए रखने के लिए संशय की स्थितियों से समझौता करना ही पड़ता है । प्रेम संबंधों की चर्चा विवाहित पत्नी के साथ भी की जाती है । जब पति आर्थिक दृष्टि से पत्नी की अपेक्षा गौण और दुर्बल हो जाता है तो पत्नी प्रेम सम्बन्धों के लिए अपने को स्वतंत्र अनुभव करती है । ऐसी स्थिति में पति केवल समाज को धोखा देनेवाली एक आड़ के रूप में रह जाता है जिसे लेकर वह अपने स्तर के किसी भी व्यक्ति से संबंध रख सकती है ।

इस प्रकार धर्म ईश्वर और नैतिकता सम्बन्धी मूल्यों का विघटन होने के कारण पुरानी सम्बन्ध भावना पुरानी शब्दावली में विकृत और नयी शब्दावली में " परिवर्तित"होती जा रही है ।

जब अन्तर्राष्ट्रीय काम-मेलाओं की योजना होने लगे, सम्मिलित दाम्पत्य का प्रयोग चल पड़े और हिप्पी समाज की प्रयोगशालाएं अधिक आकर्षक लगने लगे तो प्रेम और यौनाचार संबंधी पुराने मूल्यों से चिपके रहना, आज तो कठिन हो गया है कल असंभव हो जाएगा ।

समाज के कुछ स्तरों पर पुरुष को नारी मित्रों और नारियों के पुरुष मित्रों को सहज स्वाभाविक रूप में स्वीकृत किया जाने लगा है । पुराना पापबोध लुप्त हो गया है ।

यह भी स्थिति आ चुकी है कि नारी का अन्य पुरुष को शरीर समर्पण करना एक सामान्य घटना मात्र है । इससे उच्च वर्गीय पति की ऊंची मान्यता प्रभावित नहीं होती ।

सम्बन्धों का आधार इतना छिछला इतना कमजोर है कि हल्के से झटकेको भी संभाल नहीं सकता ।

आर्थिक उपलब्धि आज इतनी मुख्य हो गई है कि पति अपनी पत्नी को स्वयं अभिसार करने के लिए प्रेरित करता है । महानगरी में तो ये विषाक्त स्थिति सामान्य रूप से ग्रहण कर ली गई है ।

फिल्म : दो राहा का गीत : तुम्हीं रहनुमा हो मेरी
जिन्दगी के
बिगाड़ो मुझे या संवारो मुझे शर्म कैसी ।

आर्थिक परिस्थितियों में परम्परागत मूल्यों के ढ टहने का एक और कारण है - वह है विदेशी प्रेरणा । विदेशों में यौन संबंध की जो स्वतन्त्रता स्वीकृत हो चुकी है वही हमारे समाज के युवक युवतियों को

भी प्रेरणा देती है ।अमेरिका में मित्रता का अर्थ ही स्त्री-पुरुष की मित्रता हो गया है - किन्तु भारत में अभी यह अर्थ समाज को स्वीकृत नहीं है ।

मूल्यों के संघर्ष को गांव और शहर के जीवन की तुलना से भी देखा जा सकता है -

गांवों में पुराने मूल्य पूर्णतः समाप्त नहीं हो गए । गांवों में उलझन और व्यस्तता नगर के मुकाबले कम है इसलिए वहाँ भाई-चारा, हमदर्दी आदि को निभाया जा सकता है । किन्तु नगर में साथ-साथ रहकर भी एक दूसरे को, पहचानने का अवकाश नहीं निकल पाता । भारत में ग्रामीण संस्कार अभी पूर्णतः मरे नहीं है नगर में आकर भी गांव का युवक गांव को नहीं भूल पाता और एक संघर्ष का सा अनुभव करता रहता है ।

गीत : मैं हूँ गंवार, मुझे सबसे है प्यार ... *

वैयक्तिक संबंधों की मूल्य परक भूमि बहुत उबड़ खबड़ हो गयी है और सार संबंध बहुत विकृत या बदल से गए हैं । इन संबंधों में दबे हुए व्यक्ति का स्वतन्त्र अस्तित्व अब प्रकट होना चाहता है । आरोपित संबंध और मूल्य इसको दबा नहीं पा रहे हैं ।

नारी का स्वतन्त्र अस्तित्व पति की मृत्यु के पश्चात् एक प्रकार से समाप्त ही हो जाता था और उसे नारी सुलभ अस्तित्व के साथ जीने का अधिकार नहीं रहता था चाहे माँ के रूप में जी सके ।

फिल्म : कटी पतंग, फिर भी, --

---

* फिल्म : गंवार : राजेन्द्रकृष्ण

विधवा की परम्परागत शारीरिक पवित्रता और नैतिकता का मूल्य टूट गया है ।

मूल्यों की व्यवस्था से अब केवल असंतोष ही नहीं है वरन् उसके प्रति विद्रोह के स्वर भी उभरने लगे हैं । समाज परम्परागत विवाह के स्थान पर प्रेम विवाह को स्थापित करना नहीं चाहता किन्तु प्रेम विवाह को अब एक क्रांति के रूप में स्वीकृति मिलती है ।

इस परंपरा को तोड़ने में भारतीय सिनेमा का बहुत हाथ रहा है - अब तो हर फिल्म में प्रेम-विवाह को ही मान्यता दी जा रही हैं ।

गीत : हम तुम दोनों जब मिल जाएंगे - एक नया इतिहास बनाएंगे

दुनिया में कितने लोगों ने प्रेम किया -
दुनिया ने कितने प्रेमों का खून पिया
प्यासी तल्वार नहीं रुकती - क्यों इसकी प्यास नहीं बुझती । *

1.6. <u>अस्तित्व संकट</u> : ....

1.6.1 <u>मृत्युबोध</u> :

यान्त्रिकी जब यंत्राश्रित जीवन की आधारभूमि को नैतिक मूल्यों से काट कर रख देती है तब मनुष्य का अस्तित्व अपने को संकटग्रस्त

---

* एक दूजे के लिए : आनन्द बख्शी

अनुभव करने लगता है । आधुनिक सभ्यता मनुष्य को शहर की उफनती हुई भीड़ में लाकर छोड़ देती है । महानगरों में वातावरण से संत्रस्त और अकेला अस्तित्व मृत्यु भय से आतंकित होने लगता है जिसे भी देखिए वो अपने आप में गुम है । जुबां मिली है मगर हम जुबां नहीं मिलता । ये ऐसी आग है जिसमें धुआं नहीं मिलता । आहिस्ता आहिस्ता नक्सलाबलपुरी महानगरों में अनेक लोग दुर्घटनाग्रस्त होते हुए सुने जाते हैं । बाहर से लगता है कि इस मृत्यु क्रम के प्रति मनुष्य असंपृक्त है पर अनजान रूप से उसकी चेतना को मृत्यु भय घेरता जाता है । महानगर में सहानुभूति शून्य मनुष्य के संदर्भ में मृत्यु और भी भयावह रूप ग्रहण कर लेती है ।

पल दो पल का साथ हमारा पल दो पल के याराने हैं -
इस मंजिल पे मिलने वाले उस मंजिल पे खो जाने हैं - *

मृत्यु-बोध के साथ कुछ विचित्र संवेदनाएं भी मिलती है । विचित्र और भयावह स्थितियों को मृत्यु के साथ अंकित करके भय और आतंक की अचेतन मन पर गहरी छाप पड़ती है । महानगरों में ऐसी घटनाएं भी देखने को मिली है कि किसी लावारिश लाश को खरीद लिया जाता है उसे अपना निजी सम्बन्धी बताकर उसके कफन दफन के लिए छाती पीट-पीट कर पैसे वसूले जाते हैं ।

मृत्यु और सेक्स का अजीब रिश्ता है - फिल्मों में अक्सर ऐसे दृश्य मिलते है जब वासनापूर्ति के लिए लाई गई लड़की की मृत्यु हो जाती है तो खलनायक मृत लड़की की लाश दफनाने के लिए तरह तरह की कोशिश करता है ।

---

* बर्निंग ट्रेन : साहिर

मृत्यु और सेक्स-कुंठा महानगरीय जीवन में साथ-साथ देखने को मिल जाती है । कदाचित मृत्यु बोध के अहसास से मुक्ति पाने का एक मात्र रास्ता सेक्स है इस विचार धारा की पुष्टि आज का मनोविज्ञान कर रहा है ।

गीत : घायल हो जा, हो जायगी हर मुश्किल आसान
दिलवालों होके आई हूं मैं आंखियों के बल
कोई है जो रख दे निशाने पे जान *

आत्महत्या भी मृत्युबोध को एक शाश्वत अनुभव के रूप में लाती है । आज का सबसे बड़ा संत्रास मृत्यु का होता है जो अस्तित्व के लिए क्रूर चुनौती बनकर सामने खड़ा रहता है किन्तु मृत्यु और उसका संत्रास एक नहीं है । दोनों में मूलभूत अंतर है । " पल पल मौत के समक्ष खड़ा व्यक्ति भी मौत से टकराता है " जिन्दगी जीने की एक उत्कट और उद्दाम लालसा उसके अन्दर करवटे लेने लगती है वह उसकी निरर्थक का शिकार नही बनता - उससे प्रतिपल मोर्चा लेता है, जूझता है और मृत्यु को अपनी नियति स्वीकार कर लेने के बावजूद भी उससे हार नहीं मानता । [2]

जिन्दगी को बहुत प्यार हमने दिया
मौत से भी मोहब्बत निभाएंगे हम
रोते रोते जमाने में आए मगर
हँसते हंसते जमाने से जाएंगे हम
जाएंगे पर किधर है किसे ये खबर ।
कोई समझा नहीं, कोई जाना नहीं ।[3]

---

* ये जिन्दगी कितनी हसीन है : राजेन्द्रकृष्ण
2 हिन्दी कहानी : आलोक अग्रवाल : हिन्दी कहानी:दो दशक की यात्रा : पृ. 138
3 फिल्म सफर : इंदीवर

दार्शनिक दृष्टि से मृत्यु बोध की खोज मनुष्य को सदा ही रही है। मृत्यु की समस्या मानव अस्तित्व और मानव खोज की सबसे प्रमुख समस्या है मानव अस्तित्व की सीमा रेखा इसीने स्थापित की है -- क्योंकि मृत्यु एक भयंकर अर्थहीनता को जन्म देती है, सम्पूर्ण मानव चिन्तन और मानव अस्तित्व की निरर्थकता को संकेतित करती है । मृत्यु हमारी सम्पूर्ण उपलब्धियों कोव निरर्थक और क्षणिक सिद्ध कर देती है।"*

मनुष्य ने अपनी चिंतन यात्रा में मृत्यु के परे झांकने का प्रयास भी किया है और मृत्यु के संत्रास से जूझने के लिए मृत्यु से परे के मूल्य और मान्यताओं के संस्थापन की चेष्टा भी की है ।

जाने चले जाते हैं कहाँ दुनिया से जानेवाले
जाने चले जाते हैं कहाँ
कैसे ढूंढे कोई उनको नहीं कदमों के भी निशां
जाते हैं वह कौन नगरिया - आए जाए खत
न खबरिया
आए जब जब उनकी यादें - आए होठों पे
फरियादें
जाके फिर न आनेवाले [2]

सौन्दर्य और ईश्वर की परिकल्पना को मृत्यु नष्ट नहीं कर पाती क्योंकि दोनों के अस्तित्व की स्थिति ज्ञान की सीमा से पृथक एक अन्जान पैंटसी में है ।

सांचा नाम तेरा
तू श्याम मेरा
सारा जगत है झूठा साथी

---

* दूधनाथ सिंह : अपनी शताब्दी के नाम : पृ. 182-83

2 पुष्पांजली : आनंद बख्शी

टूटे दीपक बुझ जाए बाती
चाहे सांझ हो चाहे सबेरा *

सौन्दर्य और प्रभु की कल्पना मानव जीवन की स्थूल वृत्ति से परे हैं अतः उसके नष्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता । रस और अर्थ के प्रतीक रूप सौन्दर्य और प्रभु की स्थापना पर सर्वप्रथम शंका व्यक्त की गई उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में । जब विज्ञा और यांत्रिकी के थपेड़ों को जीवन के ये सूक्ष्म मूल्य न सह सके तो मनुष्य के सामने एक रिक्तता उट्ठहास करने लगी । इस रिक्तता को मनुष्य ने किसो नवीन प्रतीक से भरना चाहा । वर्तमान युग में मृत्यु को मनुष्य ने नियति के रूप में स्वीकार किया है और सौन्दर्य और ईश्वर के तत्वों को छोड़ दिया है ।

जीना यहाँ मरना यहाँ इसके सिवा जाना कहाँ
जी चाहे जब हमको आवाज दो हम है वहीं, हम थे जहाँ [2]

6.2 <u>व्यर्थताबोध</u> : ... ...

आज मानव के जितने भी रूप प्रकट हुए है वे सभी व्यर्थता से परिवेष्ठित हैं । ऐसा प्रतीत होता है जैसे मनुष्य अपने जीवन की व्यर्थता से ऊबकर व्यर्थता की आवृत्तियों में घुट रहा है । द्वितीय विश्व-युद्ध (सन् 1939 से 1945 तक) के पश्चात मानव को जीवन का व्यर्थता बोध स्पष्ट हुआ ।

---

* जुली : आनंद बक्शी

2 मेरा नाम जोकर : शैली शैलेन्द्र

साठोत्तर फिल्मों में व्यर्थता बोध अपनी समस्त विस्मृतियों के साथ आया है । सभी संबंध व्यर्थ हुए जा रहे हैं । अपनी विवशता से घिरे नारी मन को व्यर्थता और भी कटु लगने लगती है कुछ न कर सकने की स्थिति को वह झेलने में असमर्थ हो उठती है ।

एक रुत एक रुत जाए
मौसम बदले न बदले नसीब
कौन जतन करुं कौन उपाय
प्यासी बंजर धरती
किसका पेट भरे
भूखे प्यासे बच्चे
खेती कौन करे
माँ की ममता नीर बहाए *

स्वातंत्र्योत्तर भारत में व्यर्थता को नया राजनैतिक संदर्भ मिलता है । आज का बुद्धिजीवी राजनीति के सामने परास्त है वह अपने को व्यर्थ पाता है । उसकी सृजन संबंधी आस्था हिल जाती है - सिनेमा का बुद्धिजीवी सृजक भी इस घेरे से बाहर नहीं रह सका । तमाम मामूली स्तर की फिल्म रचनाए इसी का परिणाम है । अपनी फिल्म सृष्टि उसे व्यर्थ लगने लगती है । आज का निर्माता ये समझने लगा है कि विश्व के पुनर्निर्माण में उसका कोई सहयोग माना जाने वाला नहीं है ।

अस्तित्व की सार्थकता के बोध से वंचित व्यक्ति इतिहास

---

* गौतम गोविन्दा : आनंद बक्शी

निर्माण की प्रक्रिया में कोई योग कैसे दे सकता है । यह व्यर्थता बोध नई पीढ़ी के निर्माताओं और निर्देशकों को भी झकझोर रहा है । आज का युवा निर्देशक व्यर्थता की व्याकुलता से बहुत ही पीड़ित है । व्यर्थता को चीरकर जीवन की सार्थकता की ओर सारगर्भित संकेत करना अत्यंत कठिन है ।

कोई होता जिसको अपना हम कह लेते यारों
पास नहीं तो दूर ही होता लेकिन कोई होता
मेरा अपना । *

व्यर्थता

व्यर्थता बोध के लिए साठोत्तरी परिवेश बहुत कुछ उत्तरदायी है । भ्रष्टाचार बेरोजगारी, हड़तालें, बड़े पैमाने पर मशीनीकरण, इनसे उत्पन्न विद्रोह और असंतोष इनके दमन के लिए प्रयुक्त अश्रुगैस, गोली वर्षा, नृशंस सामूहिक हत्याएं, आत्म-हत्याएं, खोखली अर्थ-व्यवस्था आदि इस परिवेश की वे कड़ियाँ हैं जो मनुष्य के व्यर्थता बोध को और भी कटु बना रही है ।

सौदा है रिश्तेदारी
यारी एक दिखावा है
अपना क्या है दुनियां में
मन का एक भुलावा है
कहां मिलेगा तुझको यार
जहर भरी दुनियां में प्यार[2]

---

* मेरे अपने : गुलजार

2 एक मुट्ठी आसमान : इंदीवर

1.7. <u>साठोत्तरी सिने आन्दोलन :</u> ....

भारतीय साठोत्तरी फिल्मों में दो आन्दोलन स्पष्ट हैं :

1. नई धारा की फिल्में ॥ न्यून वेव ॥
2. लघु बजट की फिल्में

ये आन्दोलन नवोदित पीढ़ी को पूर्व पीढ़ी से अलगाते हैं और उसको स्थापित भी करते हैं ।

न्यू वेव : ॥प्लाट विहीन॥ चक्र, सारा आकाश, अर्थ, आक्रोश रजनी गंधा, घरौंदा, मायादर्पण आदि ।

इन फिल्मों के गीत भी यथार्थ को छूते हैं न कि रोमांस और फैन्टसी को ।

"रजनी गंधा फूल तुम्हारे
महके यूँही जीवन में"
यूँही महके प्रीत प्रिया की
मेरे अनुरागी मन में । *

भारत में जब क्रांति और सुधार के नारे बेकार सिद्ध होने लगे और पुरानी परम्पराएं चरमराकर टूटने लगीं तब अस्वीकार का स्वर और दर्शन दृढ़ होने लगा ।

इन आन्दोलनों को नकारा गया है । यह कह कर कि ये विदेशों से आए हैं । किसी भी आन्दोलन को इसलिए नकारना बौद्धिक अस्वास्थ्य का ही द्योतक है कि वह विदेशों से आगत है । आगत विचार वस्तु को ठीक परिप्रेक्ष्य में ग्रहण करना और उसको

---

* रजनी गंधा : योगेश

पचाकर अपनी परिस्थितियों में ढाल लेना निश्चित रूप से दृष्टि-विकास का एक माध्यम है । यदि कुछ विकृतियाँ होती हैं तो अपूर्ण ग्रहण और अन्धानुकरण से होती है जो नई दृष्टि वैज्ञानिक दृष्टि और विकासशील देशों से वहाँ की नवोदित मन:स्थितियों को साथ लेकर आई है वह वर्तमान क्रांति और भावी प्रगति की संभावनाएँ लिए है ।

10.8. परम्परा - टूटना - तोड़ना : ....

आज जनमानस का सबसे अधिक आक्रोश परम्परावाद पर है । परम्परावाद निश्चित रूप से टूट रहा है । मनुष्य जब स्वयं टूटने की स्थिति में होता है तो परम्परा की रक्षा करना उसके लिए कठिन हो जाता है । स्थापित और परम्पराजीवी वर्ग इस कार्य की चेष्टा समाज के जन प्रवाह से अलग पड़ जाते हैं । अपने टूटने का अनुभव जिन वर्गों को होता है, वे परम्परा को तोड़ने की अपेक्षा उसे अस्वीकार करने की क्रिया को सरल मानते हैं । परम्परावादी वर्गों के साथ उसका समझौता नहीं होता । परम्परा के नाम पर व्यक्ति को तोड़नेवाली व्यवस्था को बनाए रखनेवाले वर्ग ही परम्परावादी हैं ।

सुनके तेरी पुकार
संग चलने को तेरे कोई हो न हो तैयार
हिम्मत न हार चल चला चल
अकेला चल चला चल
फकीरा चल चला चल । *

---

* फकीरा : रवीन्द्र जैन

१०१. ॥ रचना प्रक्रिया ॥ - सिने गीत : अनुभव बनाम अनुभूति :

वास्तव में केवल अनुभव, अनुभव का होना या होते जाना कहीं से महत्त्वपूर्ण नहीं है - अनुभव को अनुभूति के लिए कच्चा माल मानना चाहिए । जब तक कच्चा माल अनुभूति में परिणत नहीं होता तब तक रचना अपनी समग्र परिणति में असमर्थ ही रहेगी । जहाँ अनुभव को रचना की कसौटी मान लिया जाता है वहाँ विकृतियाँ जैसे चमत्कृति, दुरूहता आदि जन्म लेती है । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अनुभव के महत्त्व को अस्वीकृत किया जा रहा है । "अनुभव यथार्थ के साक्षात्कार से प्राप्त ऐन्द्रिय इकाइयाँ है -" अनुभूति का संस्पर्श पाकर ये सार्थक सृजन के रूप में परिणत होते हैं ।

अनुभव वैयक्तिक, एकस्तरीय और ऐन्द्रिय होने के कारण आवेश और आक्रोश लिए रहते हैं उसके साथ रचनाकार की तटस्थता और निर्व्यक्तिकता नहीं उभरती । परिणाम ये होता है कि अनुभव उच्छृंखल प्रवाह का रूप धारण कर लेते हैं - नए सिनेमा-गीतकारों में आवेश और आक्रोश तो है, हर स्थापित मूल्य के प्रति अस्वीकार और नकार की मुद्रा अपनाता भी वह मालूम होता है लेकिन अनुभव को बनाकर अनुभूति से संस्थापित करने का संयम और धैर्य उसमें नहीं हैं ।

मिट्टी के प्याले जैसा
सभी मुझे तोड़ गए
खाली बोतल की तरह
रस्ते पे छोड़ गए

झूठे तो पूजे जाएं
सज़ा ये सच्चे पाए
जुल्म निर्दोष रहा
न्याय खामोश रहा *

1.9.1 सिने गीतों में मानवीय संदर्भ : ... .

सृजन और संवेदना का केन्द्र मनुष्य है । मनुष्य के रूप और उसके संबंध देशकाल सापेक्ष होते हैं । इसका यह तात्पर्य नहीं है कि देश और काल की परिस्थितियों में मनुष्य यंत्रवत स्वचालित है । देश और काल से उसका अविच्छिन्न संबंध अवश्य है । इन्हीं के बीच उसके रूप और संबंध पुरानी आकृति को छोड़ते और नई आकृति को ग्रहण करते हैं । आज का सिनेगीतकार देशकाल और मनुष्य को एक इकाई मानकर चलता है ।

देश और काल के अनुसार गढ़े हुए संदर्भ न देकर वह देश और काल को जीते हुए मनुष्य के रूप को सहज रूप से उभार कर रख देता है -

'प्यार बांटते चलो
क्या हिंदू क्या मुसलमां हम सब है भाई भाई,
राम ये है तो हनुमान तुम हो
यह है करतार तो जान तुम हो
नाम कुछ हो मगर ये न भूलो
सबसे पहले तो इंसान तुम हो [2]

---

* अमानुष : इंदीवर
2 हम सब उस्ताद हैं : असद भोपाली

देशकाल मनुष्य के संबंध और मनुष्य के रूपों को निम्न शीर्षकों में परखा जा सकता है ।

1.10 <u>देश संदर्भ</u> :

देश संदर्भ में तीन भाग किए जा सकते हैं - गांव, नगर और मनुष्य के रहने कमाने तथा मनोरंजन के सामान्य स्थान -

<u>ग्रामांचल</u> :

स्वातंत्र्योत्तर परिवर्तनों का प्रभाव ग्रामीण अंचल पर भी पड़ा है । वहां भी राजनीतिका विष पुराने निश्छल संबंधों को डसे ले रहा है । ग्रामीण जनता को अपना कुछ बोध हुआ है । नए शोषक वर्ग के रूप में राजकर्मचारी गांव की जनता को चूस तो लेना चाहते हैं पर जनता भी अब निरी गाय, भेड़ नहीं रही है । अनजान में उसका शोषण कोई नहीं कर सकता ।

गांव समाज का व्यक्ति चौकन्ना और संशकित है । किसी भी व्यक्ति या संस्था पर वह एक बार में विश्वास नहीं करता ।

गांव में अविश्वास और संदेह का वातावरण बन गया है । चुनाव की राजनीति ने गांव को खण्डित भी कर दिया है । चुनावों के समय गांव शत्रुओं के अखाड़े में बदल जाता है । इन सब बातों ने ग्रामीण जन को भी बेईमान और चतुर बना दिया है । ग्रामीण युवक शहर की ओर आकर्षित है । वहां उसके ऊपर आधुनिकता का प्रलोभन लग जाता है और जब गांव लौटता है तो ग्राम के पुराने वातावरण में अपने को उखड़ा हुआ सा पाता है । नगर की तुलना में पिछड़े हुए

गांव बहुत भोंडे लगते हैं ।

ग्रामीण युवक शहरी आधुनिकता के दबाव से डांवाडोल और टूटा हुआ जब गांव में जीवन से कुछ जुड़े हुए लोगों को देखता है तो उसमें ईर्ष्या जाग उठती है ।

नगर की अपेक्षा गांव की समस्याएं अधिक पेचीदा और उलझी हुई है । गांव जीवन के यथार्थ की भयंकरता भयावह है । अभी भी हजारों गांवों में शिक्षा, पेय-पानी, बिजली, रेल, संचार की कोई व्यवस्था नहीं है । स्वतन्त्रता के पश्चात् गांव और नगर के बीच की खाई कम नहीं हुई । बढ़ी ही है । स्थापित नागरिक पार्टी या तो पिकनिक के लिए या सेवा पार्टियों के सदस्य के रूप में गांव जाते हैं । इन स्थापित नागरिकों को जैसे गांव में कुछ नहीं मिलता - " खाने-पीने का इतना इंतजाम न करके चले होते तो भूखों मर जाते । " शहर में तो सुधार की बात समझ में आती है लेकिन यहां बियाबान में क्या खाक सुधार होगा । एक समस्या हो तो सुलझाने की कोशिश करें मगर यहां न बिजली, न पानी, न रहने लायक मकान, न पहनने लायक कपड़े, न कालेज, न अस्पताल , न होटल न जलपान गृह । वहां अपना ही रहना दूभर, दूसरों को रास्ता क्या दिखावें । " *

इस प्रकार मनचले नागरिक युवकों की पार्टियां गांव में अपने को रमा नहीं पातीं । ऐसा लगता है कि आधुनिकता के रंग से रंगे नगर के लोग जब गांव जाते हैं तो अपनी निजी कठिनाइयों और समस्याओं के घेरे से बाहर निकालकर गांव की कठिनाइयां और समस्याएं है नहीं देख पाते। व्यवस्था करनेवाले, योजना बनानेवाले, नगर के लोग है जो खास किस्म के

---

* शांति मेहरोत्रा : दृष्टव्य : कथा एक सेवा यात्रा की : धर्मयुग - 7 अप्रैल, 1968

रोमांटिक मूड में ग्राम प्रवेश करते हैं - इनके सारे कार्यक्रम एक व्यंग्य बनकर रह जाते हैं । गांव की गरीबी और उनके पिछड़ेपन का विज्ञापन तो पर्याप्त होता है, पर गांव कुछ सरक नहीं पाते । ग्रामीण आंचल अभी बौद्धिक आधुनिकता को न संजो पा रहे हैं और न उस आधुनिकता का बोध ही यहां के निवासियों को हो रहा है । देहात का जीवन नगर के लोगों के लिए ना पसंदगी का ही जीवन है यह तो सच है कि अब देहात का रूप विशेषकर नगरों के समीपस्त देहातों का, कुछ बदलने लगा है । छोटे-छोटे कल कारखानें और विकास की योजनाएं देहातों को आरंभिक संस्पर्श देने लगे हैं । टी॰वी॰, रेडियो और ट्रांजिस्टर ग्रामीण जीवन में भी कुछ जीवन को मुखरित कर रहा है । बिजली ग्रामीण वातावरण में बोध उत्पन्न करने लगी है । मन्दिरों से अधिक भीड़ अब सिनेमा घरों की ओर चलने लगी है । फिर भी ग्रामीण अंचल का मन पूर्ण रूप से बदला नहीं है । बुद्धिवाद ने अभी पूरे शिकंजे में ग्रामीण मानस को कसकर उसे जड़ नहीं बना दिया । ईश्वर की छाया को बुद्धिवाद अभी वहां से पूर्णतः मिटा नहीं पाया है, नारी अब भी रक्षणीया है और संतति विरोध की शिक्षा से उत्पन्न नारी बोध के प्रति आंचलिक मानस अभी पूर्णतया आस्वस्त नहीं है इसलिए आधुनिकता को भ्रमवश ही सही, एक जीवन मूल्य समझने वाले लोगों का मन गांवों में नहीं लगता ।

भारत समस्त प्रगति और आधुनिकता के बावजूद क्या अब भी वस्तुतः एक कस्बाई देश ही नहीं है । चार छः या दस बीस महा नगरों से परे भी भारत है जो कस्बों में ही पसरा पड़ा है और कस्बाई स्तर पर ही जीवित है भारत का आम आदमी कस्बे का आदमी है ।

गाँवों का चित्र अब बहुत बदल गया है । " अहा । ग्राम्य जीवन भी क्या है " का बिंब कहीं बहुत गहरे डूब गया है । क्या गाँव जाकर किसी को अच्छा भी लग सकता है । वहाँ हत्या, मारपीट, भुखमरी, फौजदारी के अलावा और भी कुछ है, मैं नहीं जानता । जिन गाँवों के बारे में हम किताबों में पढते है, या पढ़ते आए है वे हिन्दुस्तान में कहीं नहीं है । "*

गाँव का युवक महानगर के महासमुद्र में एक भटकी हुई बूंद की तरह आता है और गर्जन भरे संदर्भ में अपनी आइडेंटिटी खो देता है । पढे-लिखे बेकार का गाँव में रहना असंभव हो गया है । वहाँ गाँव के युवक नगरों में नौकरी या काम-काज के लिए चक्कर मारते हैं वहाँ कुछ लोग दूध भी बेचते है कुछ मिलों में पिसते है यदि कोई भूली-भटकी याद या इच्छा गाँव जाने की होती है तो गाँव की एक ऐसी ऊब भरी अनुभूति सामने आ जाती है कि इच्छा समाप्त हो जाती है ।

सत्य तो यह है कि हिन्दुस्तान में ऐसे गाँव नहीं है जैसे बंबइया सिनेमा में दिखाए जाते हैं । वास्तव में सिनेमा में दिखाए जानेवाले गाँवों को देखने से ऐसा लगता है कि वहाँ स्वच्छन्द प्रेम की अनंत सुविधाएँ है ।

सावन का महीना
पवन करे सोर
जियरा रे झूमे ऐसे
जैसे बन मा नाचे मोर ।[2]

---

* सहारा : रामनारायण शुक्ल : सहारा संग्रह : पृ. 76

2 मिलन : आनंद बक्शी

10.1 नगर संदर्भ - नगर : ....

आज की सभ्यता मुख्यतः नगर की सभ्यता है । कहा जाता है कि भारत में सभ्यता के केन्द्र गांव थे । स्वतन्त्रता पूर्व भारत में ग्राम्य जीवन से उभरे हुए यथार्थ देश के अहिंसावादी विचारों और संवेदना को उभारते थे - किन्तु आजादी के बाद भारत की चेतना गांव से नगर की ओर उन्मुख हो रही है । औद्योगीकरण पर आधारित नवीन अर्थ-व्यवस्था नगर केन्द्रित ही होती है । इसलिए नगरों का आकार और नागरिक जीवन के बदलते हुए यथार्थ स्पष्ट होते जा रहे हैं । जो मनुष्य वर्ग आज नगरों में विविध अन्तर्विरोध में फंसा हुआ रह रहा है वही हमारे आज के जीवन का माप है । संक्रांति की स्थिति उसकी नियति का निर्माण शहरों में ही कर रही है ।

कृषि कार्य से उभरा हुआ और ऊबा हुआ, ग्रामीण युवक शहर की ओर चलता है वह या तो मिल का मजदूर बन जाता है या थोड़ा बहुत पढ़कर दफ्तर बाबू । इस प्रकार ग्रामीण जन नगर के जीवन की समस्याओं से जूझने लगा है । शहरों में मजदूरों की म गंदी बस्तियां है जहां मजदूर मूक और घिनौने पशुओं की तरह जीवन बिता रहे हैं - नगर की कुत्सित सभ्यता मनुष्य को मशीन की तरह स्वचलित और एक रस बनाए दे रही है ।

साठोत्तरी परिवेश में मजदूर, रिक्शेवाले, तांगेवाले और अन्य आर्थिक संघर्ष में पिसते हुए मजदूर पहले से अधिक सर उठाने लगे हैं । वास्तव में शहर की सभ्यता में आधुनिक बनने की

भूख और परिवर्तन की झलक गाँवों की अपेक्षा कहीं अधिक मिलती है । आधुनिकीकरण जैसे भारत के बुद्धिजीवियों का लक्ष्य बन गया है । आधुनिकीकरण का मतलब समझा जा रहा है - एक सतही रूप का पश्चिमीकरण ।

पहले तो था चोला बुरका, फिर कट कट के हुआ कुरता,
चोले की अब चोली है बनी - चोली से आगे क्या होगा ।*

अर्थ और राजनीति में भी आधुनिकीकरण की झाँकी मिलती है । भारत सरकार - सोवियत - रूस और अमेरिका के स्त्रोतों से आधुनिकीकरण के लिए सामग्री जुटाती है चाहे सोवियत-मार्क्सवाद और अतलांतिक उदारवाद की बेमेल खिचड़ी ही बन जाए । मिली-जुली अर्थ व्यवस्था को अपनाकर आधुनिक बनने की प्रवृत्ति भी है । शहरों में मिलनेवाली आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति और गतिविधि किसी क्रांति का रूप नहीं ले रही है । यह एक कृत्रिम और हास्यास्पद अनुकरण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हो पा रही है । परंपरा के दबाव और कृत्रिम आधुनिकीकरण के झलक के बीच पड़ा हुआ शहरी मानस एक अजीब छटपटाहट का अनुभव करता है । यह एक कशमकश है, जो शहरी जीवन का यथार्थ बन रही है -

सीने में जलन आँखों में तूफान सा क्यूँ है ।
इस शहर में हर शख्स परेशान सा क्यूँ है ।[2]

---

* याादगार : इंदीवर

2 गमन : शहरयार

पिछले सौ वर्षों से संसार में जो भी परिवर्तन हुए हैं उनकी मूर्ति महानगरों में ही बनी है। परिवर्तन की गति जितनी ही तीव्र और विस्तृत होती गयी उसी अनुपात में नगरों की संख्या और उनका महत्त्व तथा आकार में भी विकास हुआ है - अमेरिका में अब ग्राम जैसी चीज रह ही नहीं गयी है। सारा महाद्वीप ही एक नगर बन गया है यही स्थिति, अन्य प्रगतिशील देशों की है न नगर और ग्रामों का अस्तित्व पुराने समय से ही रहा है किन्तु उस समय ग्राम और नगर की नैतिकता और संस्कृति में अधिक भेद नहीं था। नगर संस्कृति केवल संस्कारतः तो परिष्कृत थी - मूलगत समानता विच्छिन्न नहीं हुई थी। किन्तु आजके नवोदित और नवविकसित देशों में नगरों और ग्रामों की सभ्यता के बीच बहुत बड़ी खाई बन गई है। आधुनिक बोध इन महानगरों में ही विकसित हो रहा है।

विज्ञान और यान्त्रिकी की चकाचौंध ब नगरों के आधुनिक बोध को तीव्रतर करती जा रही है। उद्योगों और व्यवसायों के केन्द्र, विश्वविद्यालय, संसद, पत्रिकाएं अच्छे प्रकाशक, बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएं आदि सब कुछ महानगरों में दिखलाई पड़ते हैं। इसलिए दुनिया की आधुनिक सभ्यता कुछ इने-गिने महानगरों में ही केन्द्रित हो गई। देहात से महानगर का केवल इतना संबंध रह गया है कि वहाँ से खाने के लिए अन्न, लड़ाइयों के लिए जवान और पिकनिक के लिए स्थान मिलते हैं।

महानगरों की नवीन मानसिकता भी बदली हुई है। महानगरों में जो मानसिक सभ्यता विस्तार पा रही है वह हृदयहीन है -

चाहा था बनूं प्यार की राहों का देवता -
मुझको बना दिया है गुनाहों का देवता । *

काफी हाउस, मिलन, क्लब, सिनेमाघर, पार्क आदि में पारस्परिक मिलन के अवसर तो अधिक मिलते हैं, पर इस मिलन से छिछलापन और औपचारिकता का आधिक्य और भीतरी घनत्व का अभाव है । दफ्तरों, ट्रामों, बसों, कारखानों आदि में मनुष्य स्वयं को भीड़ से घिरा हुआ तो पाता है, पर इस भीड़ में वह अकेला और सशंक है ।

धक्के पे धक्का, रेले पे रेला,
है भीड़ इतनी पर दिल अकेला ।[2]

यह सारी भीड़ उच्छृंखल और परस्पर अजनबी है । नगर में ही बुद्धिजीवी वर्ग बुद्धिवादी नास्तिकता और क्रांति के बीज बोता है । वाणिज्य और उद्योग इस बुद्धिजीवी वर्ग के टकराव में आ जाते हैं । सत्ता और संस्कृति सिमट कर धनियों के हाथों में पहुँचती है । जीवन की बागडोर महानगरों में रहती है । आत्मा नाम की चीज मर जाती है । यहाँ रहकर मनुष्य बुद्धिमान, चालक संदेहवादी और शंकालु हो जाता है । उसका व्यवहार अधार्मिक होता है । नगर, जीवन की वास्तविक उर्जा की दृष्टि से बांझ और अनुर्वस्थ हो जाते हैं । शक्ति और प्रतिमा की दुकाने तो नगरों में मिलती है पर उन्हें पैदा करने की सुविधा वहाँ मिलती ।

---

* गुनाहों का देवता : शैलेन्द्र

2 मेरा नाम जोकर : शैलेन्द्र

ऐतिहासिक दृष्टि से यूरोपीय संस्कृति 1800 ईसवी के आसपास अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त होकर सभ्यता के आयामों में संक्रमित होने लगी । इस काल रेखा के पश्चात महानगरों का, मूल्य-विच्छिन्न और कृत्रिम जीवन आरंभ होता है जिसकी पृष्ठभूमि में औद्योगिक क्रांति है । इस समय भावनाओं की उपेक्षा और बुद्धि की एकांत स्वीकृति होने लगती है । धर्म के स्थान पर विज्ञान, कला और दर्शन के स्थान पर यांत्रिकी की स्थापना हो जाती है ।

यूरोप की अपेक्षा भारत में महानगरीय सभ्यता की स्थिति देर से आई ।

1.10.2 स्नायविक तनाव और शहर : ....

नगरों में जो सभ्यता विकसित हो रही है उसका स्नायविक तनाव से गहरा संबंध है । अभिजात्य और कुलीनता नवोदित नागरिक सभ्यता में अपना अर्थ खो चुके हैं । विसंगति और अविसंगति के अनेकों मद्दे रूप नगरों में प्रकट हो रहे हैं ।

अतृप्त कुंठाएं और जीने की संभावनाएं शहर में ही अधिक विभीषिका पूर्ण बन रही है ।

कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन
बीते हुए दिन वो मेरे प्यारे पल छिन *

क्रुद्ध बिटिल्स और भूखे हिप्पियों की दिशाहीन टोलियां नागरिक सभ्यता के कंकाल को और नंगा बना रही है ।

---

* दूर गगन की छांव में : शैलेन्द्र

किसी भी महानगर का बाह्य रूप आकर्षक हो सकता है किन्तु उसके भीतरी जीवन में जो गन्दगी, बीमारी, एकरसता और यान्त्रिकता होती है उसमें मन में एकदम ऊब हो जाती है । इस ऊब का प्रमुख कारण यह है कि यहाँ पैसे का मूल्य मनुष्य से बढ़ गया है ।

कभी टूट गया, कभी तोड़ा गया,
सौ बार मुझे फिर जोड़ा गया
मैं करता रहा औरों की कही
मेरी बात मेरे मन ही में रही - *

पैसे का जाल मनुष्य को यहाँ यंत्र क या पत्थर जैसे बना देता हैं । यहाँ पैसे क होने से सब कुछ मिल सकता है, शायद मौत और जिन्दगी भी ।

पैसा-पैसा-पैसा
कोई नहीं तेरे जैसा - 2

पैसे की अन्धी दौड़ में आदमी स्वयं को भूला जा रहा है । शहर में कई साल रहने के बाद लगता है कि जीवन बेकार हो गया । व्यर्थता बोध नौकरी और पैसे की खोज में भटकता टूटता व और पल पल निराश होता हुआ प्रत्येक शिक्षित मध्यवित्तीय युवक यही निष्कर्ष निकालता है ।

महानगरों के वातावरण की सबसे बड़ी विशेषता है भीड़ और शोर जो अनियंत्रित रूप से सिनेमा, स्टेशन के प्लेटफार्म, बस स्टेशन

---

* चोर मचाये शोर : रविन्द्र जैन

2 कर्ज : आनंद बक्शी

टी स्टाल, जैसे स्थानों पर उमड़ी पड़ती है । अब व्यक्ति को चलने की जरूरत नहीं रही अपने आपको भीड़ में छोड़ भर देते से भीड़ स्वयं ठेलती रहती है । मनुष्य समूह नगरों की ओर बढ़ रहा है और बस भी गया है । नगर इस जन समूह को ठीक प्रकार से समा नहीं पा रहा है - युवकों की भीड़ अकारण ही कुछ विशेष स्थानों पर मंडराती रहती है ।

1.10.3 घर :

नगर-महानगर मे घर आकुंचित हो गया है जहाँ घर की स्थूल सीमाओं की परिभाषा कोठरी, कमरे, फ्लैट और महल के क्रम में घटित होती हुई मिलती है वहाँ उसकी आंतरिक संरचना सिकुड़कर सभी संबंधों से विच्छिन्न अकेले आदमी में समा गयी है । नगर या महानगर में मध्यवित्तीय युवक अधिकांशत कोठरी और कमरे में रहता है । प्राय: उसके सम्बन्धी उसके साथ नहीं होते उनके अभाव में उसकी कोठरी और कमरा घर कम और समय काटने का स्थान अधिक हो जाता है । उसके जीवन के दो बिन्दु हैं - रहने का कमरा और कार्यालय ।

इन भूल भुलैया गलियों में अपना भी कोई इक घर होगा,
अम्बर में खुली खिड़की होगी - खिड़की में खुला अम्बर होगा- *

साठोत्तरी काल में घर का संदर्भ डावांडोल हो उठा है । पारिवारिक संस्था के प्रतीक के रूप में घर भीतर और बाहर से जर्जर हो गया है । घर से व्यक्ति का संबंध मात्र औपचारिक रह गया है । एक यंत्र की भांति वह घर में उगने, पनपने वाले सम्बन्धों का निर्वाह करता है घर में उगते-पनपते संबंध टूटने लगे हैं और इन टूटते हुए सम्बन्धों के बीच मनुष्य का अकेलापन

---

* घरौंदा : गुलजार

और अधिक भयावह होता जा रहा है ।

1.10.4 सड़क : .. ..

७ नगर की सड़क दिशाहीन और निरर्थक गति का ही सही मनुष्य के लिए एक आवाहन बन जाती है आज की दिशाहारा पीढ़ी सड़क पर ही प्रतीक का रूप ग्रहण करती है ।

यदि मनुष्य ऊबता है तो सड़क पर आ जाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं दिखलाई पड़ता । शिक्षित बेकार युवक, कक्षाओं से ऊबा विद्यार्थी सड़क पर ही भटकता है । बैठे रहने से भटकता उसे अधिक भाता है । थक जाने पर भी घूमते रहना चाहता है ।

चौराहा निरूद्देश्य भटकाव के लिए एक चुनौती बनकर खड़ा हो जाता है - पार्क की बेंच एक द्वीप की भांति आ जाती है - परन्तु पार्क में मात्र बैठ लेने से मन शान्त नहीं होता - समस्याओं का हल खोजते हुए फिर सड़क पर आ जाता है - भटकन ही भटकन ।

शहरों की गलियों में जब अंधेरा होता है -
आधी रात के बाद - एक चोर निकलता है,
सड़क पर ये आवाज आती है - चोर - चोर,*

1.10.5 बस : रेलगाड़ी और स्टेशन : ....

बस : बस स्टेण्ड पर भीड़ या पंक्ति दिखाई देना आम बात है । बस की, प्रतीक्षा आज जीवन का अंग बन चुकी है ।

---

* राजारानी : आनंद बक्शी

कभी कभी गिरी हुई मन स्थिति में निरुद्देश्य भी बस स्टेण्ड पर खड़े हुए लोग मिल जाते हैं क्योंकि सड़क पर खड़े होना संभव नहीं है ।

प्रतीक्षाजन्य ऊब बस स्टेण्ड पर जैसे मूर्तिमान हो उठती है । ऊब से खीझ और झल्लाहट पैदा हो जाती है । मनस्थिति की दृष्टि से बस स्टेण्ड एक भीड़ भरे सूनेपन का भी प्रतीक बन जाता है ।

1.10.6 <u>रेलगाड़ी</u> :

चलती ट्रेन जिन्दगी के गुजरते दिनों को प्रतिकामित करती है । जब गाड़ी की यात्रा में गुफाएं आती हैं तब जीवन की घुटन जैसे प्रतिकायित होने लगती है - अंधेरी गुफाओं से उसका सूनापन और अकेलापन उभर आता है ।

1.10.7 <u>प्लेट फार्म</u> :

जब गाड़ी रूकती है तो अतिरिक्त हलचल, भागदौड़ बेचनेवालों की आवाजें एक व्यस्त वातावरण प्रस्तुत करती है । ऊब और अकेलेपन के कितने संदर्भ प्लेटफार्म पर घटित होते रहते है - विदाई, मिलन के अजीबोगरीब क्षण जीवंत होते रहते हैं ।

1.10.8 <u>पार्क</u> :

नगर के व्यस्त और घुटते हुए जीवन में पार्क का महत्वपूर्ण स्थान है । घर से बाहर निकल कर सड़क पर भटकता हुआ जीवन के जैसे कुछ स्वाच्छन्द क्षण भोगने के लिए धीरे से पार्क में खिसक जाता है । हताशमन को पार्क शरण देता है । प्रेमिका से मिलने और खुलकर बातचीत करने का एक स्थान पार्क है ।

ऊपर अम्बर नीचे जमीं है - इतना बड़ा घर कोई नहीं है ।
फूल पवन बादल पंछी सब है अपने हमजोली - *

1.10.9 होटल :

महानगरीय सभ्यता के अन्धाधुन्ध प्रवाह में होटल छोटे बड़े आकर्षक द्वीपों जैसे लगते हैं जहाँ कुछ देर विश्राम करने के लिए भीड़ उमड़ पड़ती है । बड़े होटलों में हरेक का जाना संभव नहीं । इनमें सैनिक अधिकारी या उच्चवर्गीय लोग या तस्कर ही जा सकते हैं । स्वर्ग के तथा-कथित सारे सुख विलास इन होटलों में उपलब्ध रहते हैं ।

होठ झुका, जाम उठा आग लगा, आग बुझा,
मेरी अदा तेरा ह नशा दोनों मिले तब है मजा ।[2]

नगरों में चाय और काफी के असंख्य छोटे-छोटे स्थल आज के युग के कुकुरमुते सरीखें है । समाज के प्रत्येक वर्ग के साथ होटल परिवार का कोई न कोई रिश्ता कायम है - भिखारी हो या लखपति - होटल, चाय की दुकान उसके दैनिक जीवन का अंग बन चुका है । कम पैसे में भोजन देने वाले ढाबो में भी भीड़ टूटती रहती है ।

ऊपरी दिखावे में विश्वास रखनेवाला और ऊँचे वर्ग में सम्मिलित होने के लिए छटपटाता हुआ मध्यवित्तीय व्यक्ति भी विवश होकर ढाबे में भोजन के लिए घुस जाता है । होटल की इतनी

---

* सरगम : आनंद बख्शी
2 जंगल में मंगल : हसरत जयपुरी

व्याप्ति औद्योगिक सभ्यता से उत्पन्न ऊब के कारण हुई है - यह ऊब मनुष्य की अधिकांश विकृतियों का कारण है जिनसे प्रत्येक वर्ग का मानस ग्रस्त है ।

होटल, रेस्तरां आदि आधुनिक महानगरीय सभ्यता के प्रतीक है । ये वे स्थान है जहां सभी वर्ग अपनी अपनी ऊब को मिटाने और समय काटने जाते हैं ।

1·10·10 मदिरालय : ....

होटल रेस्त्रां और मदिरालय, यह सभी स्थान ऊबे हुए और अकेले मानव को कुछ देर के लिए शरण देते हैं । जब ऊब और अकेलेपन का अनुभव चेतना के कण कण को पीड़ित करने लगता है और तब अचेतन क्षेत्रों में उतरने की इच्छा होने लगती है उतरने की सीढ़ी शराब है और शराब मदिरालय में मिलती है । शराब में अपना अस्तित्व डुबाने की कोशिश तो न जाने कब से कर रहा है ।

शराबी शराबी मेरा नाम हो गया
मेरा नाम काहे को बदनाम हो गया
आप रोज मेरी नजरों से पीते रहे
इस नशे के सहारे जीते रहे,
मैंने पी तो मुझपे ये इल्जाम हो गया ।

मानव अकेलेपन की कटुता का सबसे अधिक अनुभव अधेड़ व्यक्ति करता है जिसके भीतरे भागते हुए यौवन की पगध्वनियां रहती हैं और आती हुई वृद्धावस्था की छायाएं ।

---

* चंदन का पलना : आनंद बख्शी

जब यह संसार निर्दयी और अपरिचित हो गया है तो शराबखानों की संख्या में वृद्धि होना स्वाभाविक है जो कुछ क्षणों के लिए ही सही अकेलेपन से मुक्ति दिला सके ।

न पूछो कोई हमें जहर क्यूं पी लिया -
जहर ये पी लिया तो थोड़ा सा जी लिया । *

1·10·11 अस्पताल : ....

अस्पताल और उसके वातावरण में वह सब कुछ है जो आज के जीवन में है ।

त्रास, रोग, मृत्यु जीवन, उदासी मायूसी, अकेलापन ऊब इनकी विविध आवृत्तियां अस्पताल के वातावरण में उगती पनपती है । एबार्शन, पोस्टमार्टम, आपरेशन, एक्सरे, आज के जीवन की सामान्य क्रियाएं हैं ।

स्थूल उपकरण, चिकित्सा क्रियाएं, अस्पताल के कर्मचारी रोगी स्पेशल कमरे सब मिलकर एक नई दुनिया का माहौल पैदा करते हैं ।

अस्पताल में गन्ध का विशेष स्थान है ना चाहने के बावजूद मन और मस्तिष्क में अस्पताल की गन्ध बस जाती है । अस्पताल की भीड़ रूग्ण मानसिकता ■ लिए रहती है । डाक्टरों, नर्सों और रोगियों के नाते बनते बिगड़ते रहते हैं ।

अस्पताल के मृत्यु और संत्रास भरे वातावरण मे यौन प्रेमी की क्षणिक परिणतियां एक अनुभव में संक्रमित होती रहती हैं -

---

* अमानुष : इंदीवर

यहाँ ऐसे रोगी भी होते हैं जिनको घर से अलग रहने के कारण ही अस्पताल अच्छा लगता है रोगी होना उसके लिए एक ऐसा वरदान बन जाता है जो उसके घायल संबंधों की चिकित्सा कर रहा है । अस्पताल में हुई मृत्यु का एक व्यापक प्रभाव रोगियों पर पड़ता है अब भय दुराशा त्रास और मृत्यु के क्षण बीमारों के सामने डूबते उतराते रहते हैं -

1·10·12 कार्यालय :

परिस्थितियों के द्वारा मध्यवित्तीय शिक्षित युवक दफ्तरों में ठूंस दिया जाता है । जिस युवक को बेकारी और निराशा घेरे हुई थी वह अपने को फाइलों के ढेर से घिरा हुआ पाता है उसे या तो काम पर लगे रहना है या फिर निरर्थक बातों में या कैंटीन में चाय की चुस्कियों से समय काटना है और पहली की प्रतीक्षा करनी है । एक लंबे समय तक बेकारी की कटुता को झेलकर जो युवक दफ्तर में प्रवेश पा सका है वह यहाँ के वातावरण में पाता है कि जिस स्थान को वह अपना लक्ष्य समझ रहा था वह बंद गली का ही एक मकान है जहाँ पहुँच कर गति, दृष्टि और दिशा खो जाती है । कार्यालय का वातावरण एक बंदीगृह सा हो गया है - हर बंदी दूसरे पर निगाह रखता है । कार्यालय कह इस मन स्थिति और वातावरण से छुटकारा पाना एक निश्चित क्षण में ही होता है जब कार्यालय बंद होता है क्षण क्षण को मुक्ति का क्षण मान, जब कर्मचारी घर की ओर चलता है तो अत्यंत श्लथ और शांत होता है । घर को भी पत्नी से वह दफ्तर की राजनीति की बातें करता रहता है ।

ये दिन क्या आए लगे फूल हंसने
देखो बसंती बसंती होने लगे मेरे सपने ।*

इनके अतिरिक्त सप्ताह के शनिवार, इतवार, अधिक संवेदनापूर्ण हुए ।

बागों में बहार है
आज सोमवार है
मुझे तुमसे प्यार है ।[2]

संध्या और रातें विशेषकर रूप से मनोस्थिति के लिए पृष्ठ भूमि की भांति प्रयुक्त की गई है ।

दूर कहीं जब दिन ढल जाए
शाम की दुल्हन बदन चुराए ।[3]

...

होने लगी है रात जवां
जागते रहो –[4]

.1.1.1 <u>सप्ताहान्त</u> :

नगरीय परिवेश में सप्ताह के दिन व्यस्तता, घुटन और ऊब के दिन होते हैं । जो अहं इन दिनों में भरता पिसता रहता है वह शनिवार के किनारे पहुंच कर जीवन के क्षणों से संबद्ध होकर हरा भरा बनता है । शनिवार से लेकर के इतवार की संध्या

---

*	छोटी-सी बात	: योगेश
2	आराधना	: आनंद बख्शी
3	आनंद	: योगेश
4	नैना	: कैफी आजमी

तक का अवकाश खंड में भाग्य की विडम्बना बहुत कटु और निर्मम हो जाती है जब इस अवकाश खण्ड पर कुछ शहरी काली छायाएँ मंडराने लगती है । पार्क, सिनेमा घरों और अन्य रमणीय देश खण्डों के आमंत्रण जब इन छायाओं के कारण निर्जीव और निरर्थक हो उठते है तब अवकाश के आस्वादन की भीनी आशा पर जीता हुआ अहं चीत्कार कर उठता है ।

जो शनिवार ज्योतिष्य और लोकवार्ता में मनुष्य के लिए इतना अशुभ असुन्दर और मनहूस होता है वही औद्योगिक सभ्यता में वरदान की शीतल छाया बन गया है किन्तु औद्योगिक सभ्यता में और समाज की व्यवस्था में शनिवार फिर से मनहूस बन जाता है ।

सप्ताह के दिनों में गला घोटनेवाली प्रतियोगिता तोड देनेवाली निरर्थक सी व्यस्तता, दफ्तरों का अमानवीय और जड़ वातावरण आज के व्यक्ति के लिए एक मधुमय अभिशाप के अलावा कुछ नहीं है ।

तपन में शीतल मंद बयार, जैसा इतवार जब पारिवारिक ज्वालाओं से तप्त हो उठता है तो जैसे अस्तित्व पर ज्वलनशील संकट घिर आता है ।

मध्य वित्तीय युवक का उदास मन सप्ताहांत कालखण्ड को भी किसी भूमि के रूप में नहीं एक फैन समूह के रूप में पाकर और उदास हो जाता है । ऊब और उदासी का नैरंतर्य जैसे कभी खण्डित नहीं होगा । जीवन एक ऐसा वाक्य बनकर रह जाता है जिसमें कोमा या फुलस्टाप नहीं है ।

अपना सब कुछ खो बैठे हम पागल मन के पागलपनमे
दिल के अफसाने मैं जानूं, तू जाने और ये जाने
कोई न । *

1.11.2 <u>दिवस छोड</u> : ... .

दिन के आठ पहरों में से संध्या के चार बजे से रात के बारह बजे तक का समय अधिक सकल प्रतीत होता है । दिन में तो व्यक्ति बाह्य संदर्भों से घिरा हुआ रहता है वह इस समय अन्य सन्दर्भों में प्रविष्ठ होता है । यह उसके निजी संदर्भ कहे जा सकते है जो उस पर अध्यारोपित नहीं किए गए बल्कि परिवेश ने उसके भीतर उगाए है ।

संध्याकाल आधुनिक औद्योगिक सभ्यता में बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है । औद्योगिक दृष्टि से गतिशील ओर उन्नत देशों की संध्याएं, रातें, मदिरा, नृत्य शरीर स्तरीय भोग, नग्न भोग की विधि और क्लबों की स्वच्छन्द गतिविधियों में डूब जाता है । प्रतियोगिता व्यस्तता और तनाव से बोझिल एवं परिश्रान्त मन इन क्रिया-कलापों में पूर्ण विश्रांति पाता है । किन्तु भारत जैसे औद्योगिक दृष्टि से पिछडे हुए देश के मध्य-वित्तीय मानस को संध्या और रात की संस्कृति की यह सुविधाएं उपलब्ध नहीं है स्वच्छन्दता की ललक तो उसमें प्रविष्ठ हो गई है किन्तु आर्थिक मजबूरी और संस्कार रुद्ध वातावरण स्वच्छन्दता को उचित अवसर प्राप्त नहीं होने देता । फलत: मध्यवित्तीय मानस आत्मोन्मुख होकर अपने मन की गहन गुफाओं में प्रविष्ट होकर रिक्तता अकेलेपन, ऊब, उदासी जैसी मन-स्थितियों की कटुता को झेलने के लिए अभिशप्त हो जाता है ।

---

* मुकद्दर का सिकंदर : अन्जान

हम कमकशो गम से गुजर क्यों नहीं जाते ।
मरना तो हर हल है मर क्यों नहीं जाते । *

1.12.1 मानवीय संबंध :

जब समाज की व्यवस्थाएं बदलती है, नयी नैतिकता और नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना होती है तब मानवीय सम्बन्धों की रूढ़ रेखाएं पिघलकर नए रूपों में घटित होने लगती हैं ।

साठोत्तरी फिल्मों में तनावपूर्ण सम्बन्धों का बोध सम्मिलित है ।

फिल्में : दिल अपना और प्रीत पराई, फिर भी, पति पत्नी और वो, निकाह, मासूम, बाजार, अर्थ

यान्त्रिकी के विकास के कारण व्यावहारिक जीवन के धरातल पर जीवन मूल्यों में हलचल मचती है । बस्तियों का नगरीकरण, आर्थिक प्रतियोगिता, सत्ता का संकेन्द्रण, मानवीकरण, तीव्रगामी परिवहन व्यवस्थाएं, मनोरंजन के यान्त्रिक साधन - नए विध्वंसक यान्त्रिकी के कुछ ऐसे तत्त्व है जो जीवन के स्थापित रूप को अस्त व्यस्त कर देते हैं । मनुष्य अपने को अवकाशहीन, निरर्थक, अजनबी, संत्रस्त, कुण्ठित और विकृत पाता है इस स्थिति में मानवीय सम्बन्धों में से अधिकांश पूर्णतः बदल ही जाते हैं क्योंकि उनका निर्वाह करना सकना सम्भव नहीं रह जाता ।

यान्त्रिकी और औद्योगिकरण की इन स्वातन्त्र्योत्तर स्थितियों

---

* पुरी लव : असद भोपाली

में भारत में मानवीय संबंध एक सीमा तक विघटित और संक्रमित हुए है। यांत्रिकी और औद्योगीकरण का सबसे अधिक प्रभाव मानवीय संबंधों पर ही पड रहा है ये संबंध एक भयंकर तनाव के बीच गुजर रहे हैं।

दोस्त दोस्त न रहा - प्यार प्यार न रहा
जिन्दगी हमें तेरा एतबार न रहा। *

"आज पुराने रिश्ते गायब हो गए है। उनकी जगह रिश्तों का एक्सट्रैक्शन रह गया है।"[2]

"सारे संबंध प्रश्न बन गए हैं।"[3]

संबंध वस्तुत: हमारी सामाजिकता के प्रतीक है। सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव सम्बन्धों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जब किसी युग में मानवीय संवेदना बहुत परिवर्तित होती है तो उससे संबंध सर्वाधिक रूप से प्रभावित होते हैं।

1.13 पारिवारिक संबंध :

1.13.1 पारिवारिक विघटन :

परिवार मानव के रक्त संबधों का समुच्चय है। रक्त संबंधों की टकराहट आर्थिक युग की नवोदित मन-स्थितियों से हुई और परिवार का पुराना ढांचा चरमरा उठा। परिवार का केन्द्र दांपत्य है। अन्य संबंध परिधिगत है। परिवार का केन्द्र गतिशील है अर्थात वयस्क पुत्र और पुत्र-वधु केन्द्र पर स्थापित होते चलते हैं और वृद्ध

---

* संगम : शैलेन्द्र 2 बच्चन सिंह : समकालीन कहानी - दिशा और दृष्टि : पृ.12

3 श्रीराम त्विारी : 70 की कहानी के जरूरी नोट्स : राष्ट्रवाणी अप्रैल-मई'70

माता-पिता का दाम्पत्य परिधिगत होता जाता है ।

केन्द्र और परिधि के संबंध सूत्र भी समय के साथ परिवर्तित हुए हैं । इस परिवर्तन का मुख्य कारण अर्थ और नवीन मन-स्थितियाँ ही हैं । केन्द्र के चतुर्दिक यदि दो परिधियाँ कल्पित की जायें तो प्रथम परिधि में आर्थिक और भावात्मक रूप से पुत्र पर आश्रित माता - पिता आते हैं और दूसरी परिधि में भाई और बहन की स्थिति है जो स्वयं एक अन्य परिवार के केन्द्र बनतेहैं हैं या बन सकते हैं । कुछ दूर के संबंध अर्थात संबंध दर संबंध भी तृतीय और अंतिम परिधि में आते हैं । यह सभी संबंध साठोत्तर काल में बदलने की प्रक्रिया है ।

ना बीबी ना बच्चा
ना बाप बड़ा न भैया,
द होल थिंग इज दैट कि भैया,
सबसे बड़ा रुपैया । *

नौकरी और सुखद जीवन की तलाश में गाँव का व्यक्ति जब गाँव से नगर जाने लगा तो परिवार टूटने लगे । परिवार के सदस्य पति पत्नी और बच्चे रह गए । गाँव के घर से घर के अन्य सदस्यों और मुखिया आदि के आधिपत्य का कोई प्रश्न नए परिवार में नहीं रह गया । नगर की सभ्यता का प्रभाव व्यक्ति के मन पर पड़ा और ग्रामीण संस्कृति में पनपते, हुए संबंध बदले । व्यस्त और तंग जीवन ने उसकी संबंध भावना को प्रभावित किया और पारिवारिक सम्बन्धों की भावुकता समाप्त होने लगी । शहर के व्यस्त जीवन ने उसे इतना

---

* सबसे बड़ा रुपैया : मजरूह

विवश कर दिया कि चाहते हुए भी वह घर से बूढ़ी और बीमार माँ, गर्भवती पत्नी की दुख दर्द का साथी नहीं रह सकता । संबंध निर्वाह आज केवल औपचारिकता मात्र बनकर रह गया है ।

13.2 पारिवारिक संबंधों की बदलती हुई संरचना :

दाम्पत्य संबंध :

दाम्पत्य की रूढ़ संरचना इस प्रकार की थी कि पत्नी पर समर्पण, कर्तव्य, पतिव्रत्य के आदर्श और पति की दासता का भार लदा हुआ था । पति पारिवारिक अर्थ का व्यवस्थापक और विशेष अधिकारयुक्त बना हुआ था । मान्यता में यौन स्वच्छन्दता पूर्णता असह्य वर्जित और पाप शब्द के द्वारा परिभाषित थी ।

स्त्री की परतन्त्रता द्विविध थी - आर्थिक और यौन ।

आर्थिक क्रिया से शून्य पति और पत्नी :

पहले प्राय: सभी और अभी भी अधिकांश परिवारों में पत्नी का आर्थिक दृष्टि से प्रभुत्व पूर्ण अस्तित्व नहीं बन पाया है । अर्थ केन्द्र पुरुष अपनी स्थिति का लाभ उठाते हुए पहले समय में भी अतिचार करता रहा था । पुरुष या तो पर स्त्री रत होकर पत्नी के त्रास का कारण बनता है अथवा किसी अन्य अस्वाभाविकता के कारण दाम्पत्य संबंध को तनावपूर्ण बना देता है । नारी शांत भी रहती है और विकृत भी होती है ।

अर्थ-केन्द्रीय पति जब पर-स्त्री के आकर्षण में फंस जाता था तो आर्थिक क्रियाहीन पत्नी या तो विवशता सहती थी या

विद्रोह करने पर परित्यक्त कर दी जाती थी और आत्महत्या तक पहुंच जाती थी ।

13.3 पति की अस्वाभाविक स्थिति : दाम्पत्य विकृति :

1. पति का पर स्त्री से प्रेम – लुका-छिपाकर करने से पत्नी उपेक्षिता महसूस करके अपने को विवश, अकेली, असहाय समझती है ।

2. पति नपुंसक हो तो – पति आत्म हत्या कर सकता है – पत्नी निराशा के सागर में डूबकर किसी और से प्रेम कर सकती है ।

3. बड़ी उम्र का पति हो तो स्वयं को विचलित किन्तु सहज और सहिष्णु प्रकट करता है – छोटी उम्र की पत्नी कहीं और अपने समवयस्क से प्रेम कर बैठती है ।

" मैं का करुं राम मुझे बुढ्ढा मिल गया ।"*

अभाव में पति पत्नी संबंध की मधुरता समाप्त हो ही जाती है । पत्नी उदासीन एवं नीरस या विरत हो जाती है और संबंध संकटग्रस्त हो जाता है ।

" पति पत्नी और वो " के संबंध का त्रिकोण आजके समाज में बड़ी भीषणता से घर करता जा रहा है । इस विकृति का आधार धन न होकर वासना होती है और पुरुष और स्त्री की जन्मगत भ्रमर प्रवृत्ति होती है जो सामाजिक बंधनों को नकार देती है । इस त्रिकोण

---

* पिक्चर संगम :

की परिणति पति या प्रेमी की हत्या तक में हो सकती है ।

1.13.4 पत्नी के आर्थिक व्यक्तित्व का उदय : और दाम्पत्य :

पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति आज के अर्थ संकोच, महंगाई और मुद्रास्फीति के युग में परिवार के एक सदस्य की कमाई से संभव नहीं हो पाती । इस परिस्थिति में पत्नी से नौकरी न करानेवाली-सी रूढ़ि समाप्त हो जाती है । अभावपूर्ति के अतिरिक्त दूसरा कारण पारिवारिक जीवन स्तर को उच्चतर बनाने की भावना भी आती है । कालान्तर में यह भी अनिवार्यता में परिणित हो जाती है ।

आर्थिक क्रियाओं में संलग्न पत्नी का एक सामान्य रूप पारिवारिक भार को वहन करने में शुद्ध सहयोगिनी का है । इस स्थिति का यथार्थ यह है कि सफलतापूर्वक आर्थिक क्रियाओं में संलग्न पत्नी जिस आर्थिक स्वतन्त्र स्थिति का अनुभव करने लगती है वह अपने पति के प्रति व्यवहार में भी बदल जाती है और यौन स्वच्छन्दता, की ओर बढ़ने लगती है । परिणामतः दाम्पत्य संबंध टूटा-टूटा सा या औपचारिक होता जाता है ।

रुके रुके से कदम रुक के बार बार चले
करार लेके तेरे दर से बेकरार चले - *

अर्थ पर आधारित पति का परम्परागत अधिकार टूटता हुआ मिलता है । पत्नी नए अधिकार की आभा से दीप्त हो रही है । यौन स्वच्छन्दता एक मूल प्रवृत्ति की सामाजिक व्यवस्थापक विजय मात्र है । दाम्पत्य संदर्भ में नारी का व्यक्तित्व बदल रहा है ।

---

* फिल्म मौसम : गुलजार

कानूनी दृष्टि से भी पत्नी आज अधिक स्वतन्त्र है और सुरक्षित एवं अधिकार प्राप्त भी ।

उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व बनता जा रहा है । परिस्थिति की विडम्बना यह है कि पति-पत्नी के नवोदित व्यक्तित्व को स्वीकार नहीं पा रहा है । वह स्वयं तो काम की स्वच्छन्द चेष्टाओं का पूर्व-कालीन अधिकार चाहता है किन्तु पत्नी से पवित्रता का वही पुराना आश्वासन चाहता है ।

मैं राम नहीं हूँ फिर क्यूं, उम्मीदें करू सीताकी,
कोई इन्सानों में ढूंढे क्यों पावनता गंगा की,
दुनिया में फ़रिश्ता कोई नहीं, इन्सान ही बन के रहना

किन्तु परिस्थितियाँ ऐसी बनती जा रही है कि पत्नी की यौन स्वच्छन्दता के प्रति पति को मन से या बे-मन से सहिष्णु होना पड रहा है ।

यदि पुरुष पत्नी को एक सहयोगिनी के रूप में चाहता है तो उसके प्रत्येक क्षण की लेखा-जोखा न ले तो पत्नी भी अपने कुछ क्षण स्वच्छन्द भोग के लिए पति से चुरा लेना चाहती है । इन बदली हुई परिस्थितियों में पुरुष आशंकित रूप से अपने को विस्थापित अनुभव करता है और धीरे धीरे समायोजित हो रहा है । यदि पति पत्नी से ऊबता है तो पत्नी भी पति के इस अधिकार से वंचित होना चाहती है ।

• अनजान राहें : इंदीवर

सात सहेलियाँ खड़ी खड़ी ।
फरियाद सुनावे घड़ी घड़ी ।
. . . .
. . . . बीबी न बनियो कभी - *

1.13.5 विधवा / परित्यक्ता / अर्थ क्रिया :

आर्थिक स्वावलंबन विधवा, परित्यक्ता की भी एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है । वर्जना और उपेक्षा की कटुता में कटती हुई विधवा अपने अस्तित्व का नया बोध पाने लगी है । पहले उसे यह अनुभव होता रहता था कि उसका मृत पति अदृश्य रूप से उसके व्यक्तित्व को घेरे हुए है और उसके समस्त भोग और प्रसाधन व्यापार को वर्जित करता रहता है । किन्तु आज यह दिवंगत पति-प्रेम विदा ले चुका है ।

भंवरे ने खिलाया फूल फूल को ले गया राजकुँवर ....
- काहे सोवत निंदिया जगाए । [2]

साठोत्तर काल ने विधवा के गिरते व्यक्तित्व को आर्थिक आधार और उसके गिरते अस्तित्व को यौन अधिकार की संभावनाएँ दी है ।

{ फिल्म : कटी पतंग, प्रेम-रोग आदि । }

यदि एक विधवा बर्तन मलकर छोटा मोटा आधार प्राप्त करती है तो पढ़ी लिखी विधवा बड़ा आर्थिक आधार प्राप्त करती है । जब

---

* विधाता : अन्जान
2 प्रेम-रोग : संतोष आनंद

आर्थिक आधार प्राप्त हो जाता है तो विधवा भी अपनी यौनाकांक्षाओं की भूख को पहचानने लगती है, विधवा विवाह भी अब कोई अजूबा नहीं रहे । आर्थिक आधार प्राप्त करवा और पुनर्विवाह की स्थिति खोज लेना तो पूर्वकालीन सुधारवादी आदर्श की गन्ध से युक्त है किन्तु स्वच्छन्द यौनाचार की ललक से भरी मनःस्थिति और प्राकृतिक धरातल पर उसकी स्वीकृति समकालीन परिस्थितियों से उगा हुआ यथार्थ है ।

10.13.6 परित्यक्ता : .. ..

लगभग यही स्थिति परित्यक्ता की होती है । परित्यक्ता अपने बाप के परिवार पर आश्रित रहने की अपेक्षा आर्थिक रूप से स्वतंत्र जीवन का वरण करना चाहती है ।

जब पति के साथ रहकर भी पत्नी अकेलेपन का अनुभव चाहे किसी कारण से हो करती है तो भी वह परित्यक्ता के जीवन का वरण कर लेती है ऐसी स्थिति में वह पूर्वकालिक अनुभवों से मुक्त नहीं हो पाती ।

मेरा जीवन कोरा कागज कोरा ही रह गया,
जो लिखा था आँसुओं के साथ बह गया *

संबंधों के अभाव में परित्यक्ता जो घर बनाती है वह कभी घर जैसा नहीं लगता । परित्यक्ता नारी के सामने तीन विकल्प हैं -- प्र. पर-पुरुष से आकर्षण, किसी दूसरे से विवाह, अथवा वापस पति के पास आ जाना।

---

* कोरा कागज : हसमत

|-13.7 विवाह / योनाचार :

विवाह की स्थिति यौन-स्वच्छन्दता को रोक नहीं पाती । पतियों की हत्या जैसी भीषण घटनाएं यौन-स्वच्छन्दता और विवाह की रूढ़ एकनिष्ठता के द्वन्द्व का ही प्रमाण है । *

पतिव्रता-धर्म, वफा, त्याग, सेवा, करुणा आज केवल आदर्श रह गए है ।

एक नयी नैतिकता बनती जा रही है । आज पुरुष पत्नी के साथ बंधा नहीं है और न पत्नी क हो पति से बंधी है । वैवाहिक संबंध अधिक से अधिक तनावपूर्ण होता जा रहा है ।

"शादी का मतलब यह क्यों होता है कि सांस लेने वाले दो प्राणी उम्र भर साथ-साथ रहें ।"[2]

वास्तव में यह टूटन अन्तर्बाह्य सामाजिक संक्रमण की एक स्वभाविक परिणति है ।

विचारक बर्ट्रेंड रसेल का विचार था कि पुरुषों की तरह स्त्री को भी यौन स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए ।

1.13.8 मां और संतति : ....

पति पत्नी और प्रेम योनाचार संबंध तो कुछ ऐसे जटिल होते हैं कि प्रश्न बनने की स्थिति में पहले भी आते रहे हैं किन्तु मां बेटे का संबंध इतना सरल और प्रगाढ़ रहा है कि इस संबंध के प्रश्न

---

* कर्ज :

2 डरी हुई औरत : रवीन्द्र कालिया

में परिणत हो जाने की आशंका नहीं होती थी ।

मां के दो रूप हैं - प्राकृतिक और पारिवारिक । प्राकृतिक रूप से तात्पर्य है - शिशु के प्रति मातृवृत्ति से परिचालित मां और पारिवारिक से तात्पर्य है परिवार की एक त्यागमयी और रुद्र रक्षिका मां ।

फिल्मों में इन दोनों रूपों की मां स्थापित है ।

1 .1 <u>प्राकृतिक मां</u> : ....

प्राकृतिक रूप से मां जननी है । असहाय शिशु का पोषण और रक्षण जननी मां की प्राकृतिक क्रियाएं हैं । इन क्रियाओं का सौंदर्य मूल मातृवृत्ति से प्रेरित त्याग और बलिदान मे है । मां का उज्ज्वल-तम रूप भी यही है ।

"उसको नही देखा हमने कभी - पर इसकी जरूरत क्या होगी -
ए मां तेरी सूरत से अलग - भगवान की सूरत क्या होगी । *

आगे चलकर "पुत्र के वयस्क होने पर मां अपने पूर्वकालीन त्याग और बलिदान के आधार पर प्रकट प्रच्छन्न शासन वृत्ति से परिचालित होने लगती है । यह शासन वृत्ति मां बेटे के निश्छल संबंध पर एक बोझ बन जाता है और संबंध तनावपूर्ण होने लगता है ।

मां के जीवन में पति के बाद पर पुरुष का प्रवेश होने पर भी मां बेटे की संबंध में तनाव आ जाता है ।

---

* दादी मां

1.13.10 **मां का पारिवारिक रूप :** ... ...

पुत्र/पुत्री - प्रतिक्रिया :

भावुकता : मां के प्रति भावुकता का संबंध तीन आधारों पर स्थापित है ।

1. मां के प्रति अतिरिक्त भावुकता ।
2. मां के त्याग और आदर्श का रूप ।
3. उपेक्षिता मां ।

रूढ़ मां - पुत्र/पुत्री : पुत्र वधु : ....

परम्परागत मां अपने बेटे बहू के रात्रि मिलन को नियन्त्रित करती थी पर आज की संतति पूर्ण स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता चाहती है । मां का रूढ़ रूप उसकी स्वच्छन्दता में यदि बाधक होता है तो मां का अपमान या पारिवारिक विघटन आज के औद्योगिक और यांत्रिक प्रभाव के वशीभूत सामान्य-सी घटना बन चुकी है । नई नैतिकता की ओर अग्रसर यह पुत्र/पुत्री अपने लिए तो स्वच्छन्दता की ~~भी~~ अपेक्षा करते ही हैं मां को भी रूढ़ि के स्थान पर नवीनता की ओर स्वागत करने को प्रेरित करते हैं ।

1.13.11 **मां के प्रति ऊब और टूटन :** ....

आर्थिक परिस्थितियों का तनाव मां के प्रति लगाव और भावुकता का भंजन कर देता है । परिस्थिति और संवेदना का परिवर्तन मां से अलगाव का कारण बनता जाता है ।

1.13.12 पिता : पुत्र/पुत्री :

पिता पुत्र के संबंध का पुराना आधार पारलौकिक भी था और इहलौकिक भी किन्तु आज यह संबंध पूर्ण रूप से इहलौकिक हो गया है । ऐहिक रूप से पुत्र पिता का उत्तराधिकारी और उसके बुढ़ापे का सहारा था एवं पारलौकिक रूप से उसका नाम लेवा पानी देवा ।

किन्तु साठोत्तरी परिवेश में पुत्र और पुत्री जिस रूप में तीव्रता से परिवर्तित होते जा रहे हैं उस रूप का पिता के साथ समझौता नहीं हो पाता । पीढ़ी का अलगाव और परिवर्तन जन्य शून्यता से पिता संबंध अक्सर टूटने की स्थिति में आ जाता है । प्यार दुलार और सम्मान का स्थान भय, आक्रोश, क्रांति एवं उपेक्षा जैसी मनःस्थितियाँ लेने लगती है । पीढ़ियों की जिन द्वन्द्वपूर्ण दूरियों की पीड़ा जनक अनुभूति आज के युवक को होती है वह पिता के संदर्भ में कटुतर हो जाती है । पिता अपने अस्तित्व को प्रस्तरीभूत पाता है और पुत्र पिता के प्रति अधिक से अधिक संवेदन शून्य होता जा रहा है ।

संक्षेप में पिता और पुत्र का संघर्ष प्रतिक्रिया और प्रगति का ही संघर्ष है ।

मुझको पैदा किया संसार में दो लाशों ने
और बरबाद किया कौम के ऐयाशों ने
तेरे दामन से बता मौत से ज्यादा क्या है
जिन्दगी और बता तेरा इरादा क्या है । *

---

* जिन्दगी और तूफान : रामवतार त्यागी

1.13.13 पुत्र/पुत्री प्रतिक्रिया : ....

काम और विवाह के संदर्भ में आज के युवा पुत्र और पुत्रो के मन में तीन पिताओं की स्थिति से एक त्रिकोणे सा बनता है ।

अपना पिता

पत्नी अथवा पती का पिता प्रेमी अथवा प्रेमिका का पिता

इन पिताओं का संघर्ष भी कभी कभी भयंकर व रूप धारण कर लेता है ।

सामाजिक दृष्टि से यह त्रिकोण विवाह के सहवर्ती प्रेम और परित्यागोत्तर प्रेम एवं टूटती हुई विवाह संस्था की परिस्थिति से उगा है ।

1.14. प्रेम-योन संबंध : ....

साठोत्तरी परिवेश में नैतिकता संबंधी पुराने मूल्य और आदर्श असंगत और चुके हुए से लगते हैं । शरीर-स्तरीय नग्न योनाचार, ईश्वर धर्म, जैसे योन संबंधों को नियंत्रित करनेवाले मूल्यों के विघटन के युग में स्वाभाविक हो जाता है ।

साठोत्तरी फिल्मों में सेक्स का बढ़ना महज एक संयोग नहीं है । देहवाद भी अन्य वादों की तरह पूर्ण रूप से उभर कर आया है । मांसल बुनावट पर हर फिल्म का आधार रखा जाता है ।

नारी के प्रति फिल्मों में प्रेम केवल नायिका की रक्षा करना या उसका मन जीतने तक ही सीमित हो गया है। प्रेम रुधिर का एक अंधा वेग है मन का विकार है, दोस्ती का एक तरीका है। प्रेम इन्द्रिय तर्पण का एक माध्यम है जिसे भ्रमवश आध्यात्म का जामा पहनाया गया था। प्रेम को भावुक लोगों की बीमारी से अधिक कुछ भी नहीं समझा जाता।

मैं हूँ प्रेम रोगी मेरी दवा तो कराओ
जाओ जाओ जाओ कोई वेध को बुलाओ *

साठोत्तरी फिल्मों में और गीतों में यौन संबंधों का खुलकर और स्पष्ट वर्णन हुआ है। चुंबन, आलिंगन परिरम्भण - कामशास्त्र के सारे सोपान धड़ल्ले से तय किए गए हैं। अश्लीलता, नग्नता, कुरुचिपूर्ण भावुकता और रोमांटिक वृति यौन-बोध-यौन सम्बन्धी अन्वेषण खुलकर बढ़े है - फिल्मों में समाज के दर्पण के नाते यह सारी स्थितियाँ दिखाई पड़ती है।

निश्चित ही साठोत्तरी फिल्मकार और फिल्म गीतकार इस अभिव्यक्ति में पहले से अधिक निर्भय और तटस्थ है। फिल्मों में प्रेम सूत्रों की झिलमिलाती छायाओं से लेकर यौन क्रिया की परिणति तक की क्रियाएं अभिव्यंजित है। आधुनिक वस्त्र-विन्यास स्वमेव कामोत्तेक बन गया है। बलात्कार के दृश्य तो आम घटना बन चुके हैं।

1.14.1 प्रेम संबंधी मानसिकता : ... .

साठोत्तरी फिल्मों में मानस का अन्वेषण करने पर कहीं एक संस्कार मानस पर चिपका हुआ मिलता है कि प्रेम बिना मनुष्य

---

* प्रेम रोग : संतोष आनंद

अधूरा है - संस्कार का अकेलापन खालीपन और उब से भरा हुआ है - प्रेम नाम की वस्तु इसे भरने की कोशिश एक हास्यास्पद प्रयत्न है । वर्तमान शून्यता में कहाँ का प्रेम । आंतरिक खालीपन को भरने की यह प्रेम सामग्री कुछ इतनी उभरी और शारीरिक है कि इस प्रयत्न का अंत उब और उदासीनता में बदी होता है । साठोत्तरी फिल्मों के प्रेमी यथार्थ को छूते हुए चलते हैं ।

इस विसंगति मनस्थिति में युवा मानस प्रेम-संबंधी प्रयोग करने के लिए उत्सुक है ।

युवा मन को गर्म और सक्रिय प्रेम चाहिए किन्तु परिस्थितियाँ ऐसी बन गई है कि प्रेम गुप्त रहा तो ठीक अन्यथा सारी भीड़ [समाज] पीछे पड़ जाती है ।

लोग प्यार का मखौल उड़ाते हैं । संस्कार नवोदित मानसिकता और परिस्थितियों में पड़कर सब कुछ विसंगति पूर्ण हो गया है ।

10.14.2 <u>प्रेम-निष्कर्ष :</u> ....

1. नर मादा सम्बन्धों में बड़ा उल्लास होता है ।
2. प्रेम को चरित्रवादी कोटी का दिनों दिन खात्मा होता जा रहा है ।
3. प्रेम की तथाकथित पवित्रता ढोंग है ।

प्रेम संबंधी मानसिकता इन निष्कर्षों से भर उठती है और जिसे गम्भीर प्रेम कहा जाता था । आज वह एक अत्यंत हल्की फुल्की क्रिया में बदल चुका है । पहले प्रेम के पीछे एकोन्मुखता थी और कुर्बानी भी बहुत होती थी पर अब ऐसा नहीं के बराबर है क्योंकि एक प्रेम चला जाता है और दूसरा तुरंत उपस्थित हो जाता है ।

युगानुसार जब युवक और युवतियाँ दोनों ही प्रयोगशील हो तो स्वामित्व भी बदलता रहे यह स्वाभाविक है ।

उपरोक्त मानसिक और बाह्य परिस्थितियों में प्रेम की सारी पुरानी रूढ़ियाँ समाप्त हो गई है - आज दो प्रकार का प्रेम मिलता है । शुद्ध अर्थात् विवाहेच्छा और मांसल मिलन से निरपेक्ष तथा मिश्रित अर्थात विवाहेच्छा या मिलन से संयुक्त प्रेम ।

दोनों ही प्रकार के प्रेम-संदर्भ अंतिम परिणति प्राप्त नहीं करते या तो एक मन बहलाव बनकर रह जाते हैं अथवा कटु परिस्थितियों से प्रेम तंतु झटके के साथ रुकने या टूटने के लिए बाध्य हो जाता है । परिणामतः आरंभ में जिस ऊब और अकेलेपन को भरने की सामग्री के रूप में प्रेम प्रकट हुआ था वह उसी रूप में लीन हो जाता है ।

हुस्न और इश्क की राहों में, बाहों में निगाहों में
दिल डूबा - महबूबा ओ महबूबा । *

1.14.3 संबंध टूटने के कारण :

आज प्रेम सामान्य धरातल पर परिणति पाने लगा है । एकान्मुखता के स्थान अनेकोन्मुखता आने लगी है । प्रेम संबंध को संकट में डालनेवाला एक परम्परागत तत्त्व है संदेह । यह संदेह का विष फैलता ही जा रहा है । कभी कभी अन्य कारणों से वैयक्तिक तनाव प्रस्तुत हो जाते हैं ।

तू कहाँ गई थी तेरा मर जाए साँवरिया,
तू कहाँ गया था तेरी मर जाए साजनियाँ ।

---

* शोले : आनंद बक्शी

पारिवारिक मर्यादा और भय प्रेम की अंतिम परिणति में बाधक अवश्य बनता है । परिवार यद्यपि अत्यंत दुर्बल होता जा रहा है फिर भी प्रेम संबंधी वर्जन पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है । पारिवारिक अंकुश के प्रति क्रांति तो हो रही है परन्तु प्रबल में नहीं ऐसा प्रतित होता है कि क्रांति की अपेक्षा पारिवारिक अंकुश की उपेक्षा ही भविष्य में अधिक उभरेगी ।

जब प्रेम का आरंभ विवाहेच्छा होता है तो भी भविष्य को लेकर कुछ व्यवसायिकता ही सामने आती है । यदि प्रेमिका को पता चल जाए की उसके भावी पति ने नौकरी छोड दी है तो अपने आर्थिक भविष्य के प्रति सचेत होकर प्रेम तंतु को झटक कर तोड सकती है कभी कभी प्रेमिका या प्रेमी के घरवालों का स्थानांतर होने से ही प्रेम ने व्यवधान आ जाता है । प्रेम संबंध की समाप्ति के दो सामाजिक कारण है - प्रेमिका का किसी अन्य से विवाह हो जाना अथवा सामाजिक वर्जन का भय ।

1.15 <u>मनुष्य के रूप :</u> .. ..

मनुष्य शीर्षक के अंतर्गत मनुष्यों के रूपों को उभारनेवाले सामाजिक तत्वों, उसकी आर्थिक विकृतियों और उसकी मनस्थितियों को परखा जाता है सारी मनस्थितियों पर अन्तत: जिजीविषा की जय होती है ।

1.15.1 <u>सामाजिक स्थिति :</u>

<u>नई पीढ़ी का प्रतिनिधि :</u>

नई पीढ़ी का उदय पुरानी पीढ़ी को नकार कर हुआ है नई पीढ़ी शुद्ध वर्तमान में जी रही है - नौ जवानों के पास कोई

अतीत नहीं है । भविष्य उनसे छीन लिया गया है ।

नई पीढ़ी का वर्तमान नास्तिकता, संदेहवाद, अस्तित्व संकट और मृत्युबोध जैसे अनुभूतियों में जकड़ा हुआ है इसलिए यह पीढ़ी अपने को व्यर्थ मानती चली जा रही है ।

वर्तमान पीढ़ी संक्रांतिकालीन विसंगतियों में जीने के लिए अभिशप्त है । विसंगतियों के दो कारण हैं : -

1. अर्धाश्रित सामाजिक वर्गों की दूरियों का बढ़ना और

2. पुराने संस्कारों और मान मूल्यों को नई पीढ़ी से टकराहट, बाहरी विसंगतियां आंतरिक अंतर्विरोधों को जन्म देती है ।

1.15.2 वर्गीय स्थिति : ....

मध्य वर्गीय, श्रमिक वर्ग और पूंजीवादी शोषक वर्गों में लगातार टकराहट साठोत्तरी परिवेश में बढ़ती हुई मिलती है । पूंजीपति के जाल में बुद्धिजीवी भी फंस गया है ।

नवोदित नेतावर्ग जिनके वायदों में केवल झूठी प्रवंचना है, जिसका धन विदेशी बैंकों में सुरक्षित है और जो पुलिस और डाकुओं से साठ-गांठ रखता है - साठोत्तर काल का नया वर्ग है । वस्तुत: आजका नेता शक्ति संपन्न भस्मासुर ही है । *

1.15.3 मध्य वित्तीय वर्ग का युवक : . ..

इस वर्ग का युवक शिक्षित होता है और या तो नौकरी करता है या धक्के खा रहा होता है । इस वर्ग को संक्रान्तिकालीन

---

* दिनकर : शुद्ध कविता की खोज : पृ. 22

विघटित और आधुनिकता के झटके सबसे अधिक झेलने पड़ते हैं । टूटती हुई व्यवस्थाएँ इसी वर्ग पर रुष्ट है और इनकी चुनौतियाँ उसे जर्जर किए दे रही है । यदि समकालीन इतिहास का अविकल प्रतिबिम्ब कहीं देखा जा सकता है तो आज के मध्यवित्तीय युवक में ही देखना संभव है ।

ये आजकल के लड़के, पढ़तें न लिखतें,
फैशन फिर भी देखो बेपर के उड़तें हैं,
बाल इनके देखो कि गाल इनके देखो कि चाल
इनकी देखो,
कबूतर - कबूतर *

.... 15.5 आर्थिक विकृतियाँ

1.15.4 नौकरी पेशा मध्य वित्तीय युवक :

इस युवक की नियति मुख्यतः क्लर्क बन जाने की है । इस रूप में वह अधीक्षक की झिड़कियाँ, फाइलों की दैनिक उबाहट और आर्थिक भार ढोने के लिए अभिशप्त है । यदि बहुत हुआ तो मध्य वित्तीय युवक शिक्षक बन जाता है । ये लोग भीतर से सहमे हुए होते हैं किन्तु बाहर से आधुनिकता का मुखौटा चढ़ाए रहते हैं । कुछ ऐसे अध्यापक भी हैं जो किसी ट्यूटोरियल इन्स्टिट्यूट में शिक्षण कार्य करते हैं और भाग्य एवं परिस्थिति के व्यंग्य को झेलते रहते हैं ।

सौभाग्यवश कुछ ऐसे युवक, डाक्टर बनकर सरकारी अस्पतालों

---

* दिल्लगी : मजरूह

के नोकर बन जाते हैं और जीवन मृत्यु के बीच नसों की कलाइयां पकड़ते रहते हैं। इसी प्रकार वन विभाग के आफिसर, स्टेशन मास्टर जैसे कुछ युवक भी है । इन नौकरी पेशा युवकों के चेहरे प्राकृतिक रूप से भिन्न हो सकते हैं पर इनकी अभिव्यक्तियां प्राय: समान है । ये सभी अपने आप से, समाज से कटे कटे से सभी मायूस, सभी कुछ झेलने के लिए विवश, सभी पीसती हुई व्यवस्था के बदलने में असमर्थ सभी अकेले, खाली खोखले, प्राय: बीमार और एक हल्की जिजीविषा में जीते हुए हैं ।

जिनको नौकरी नहीं मिलती उनमें से कुछ लेखक बन गए हैं । एक लेखक है जो " आह कीजिए और दाम लीजिए " की स्थिति में है । दूसरा लेखक है जो लेखन व्यवसाय की खोज में है पर जिन्हें विज्ञापनों की भूख बड़े-बड़े शहरों में भटका रही है । कुछ लेखक पत्र प्रकाशन में है और मध्यवर्गीय होते हुए भी कम्पोजीटर जैसे कर्मचारी का शोषण करने में नहीं हिचकते ।

1.15.5 बेकार युवक :

साठोत्तर काल का सबसे निरीह प्राणी है - बेकार युवक । ये युवक बहुधा वे हैं जो विद्यार्थी जीवन की रोमांचकारी रंगीनियों से बाहर निकलकर यथार्थ में पीसने लगे हैं । नौकरीकी खोज में आए कुछ ग्रामीण युवक भी महानगरों की सड़कों पर घूमती हुई भीड़ के दयनीय अंग बन जाते हैं । नौकरी के लिए भटकता हुआ युवक पग-पग पर भ्रष्टाचार से टकराता है । छोटी छोटी नौकरियां भी बिना रिश्वत नहीं मिलती ।

जब कोई काम नहीं दिखता तो युवक कुछ छोटे छोटे कार्य ढूढ लेता है जैसे ट्यूशन, टाइप, शार्टहैंड, घन्टे दो घन्टे का पार्ट-टाइम प्रूफ रिडिंग, टार्जन सीरीज के उपन्यास लेखन, नाव से स्त्रियों को नदी पार ले जाना, गाइड, कपडे बेचना, वैद्यकी करना, वकीलों की फाइलें ठीक करना, स्टाल पर माल बेचना, स्मगलिंग का का सामान बेचना आदि ।

•16•। अधिक दबावजन्य विकृतियां : .. ...

अधिकांश विकृतियां आर्थिक दबाव की ही देन है । आर्थिक स्त्रोतों का ठहराव और पैसे का अवमूल्यन दोहरी भार करता है। अधिक दबाव से उत्पन्न मानसिक विकृतियां बाह्य लक्षणों में भी प्रकट हो जाती है।जैसे बालों में तेल नहीं होना, अर्ध-मैले कपड़े, बढ़ी हुई दाढ़ी, चेहरे पर कमजोरी, मुर्दनी और विक्षिप्तता के भाव । आज के समाज में गलाघोट आर्थिक प्रतियोगिता विकृतियों का कारण बन रही है । बडे व्यापारियों की प्रतियोगिता ने छोटे व्यापारी टूट रहे हैं । कभी कभी तंग आकर छोटे व्यापारियों को अपनी दूकाने भी बेचनी पडती है । छोटी दूकाने रही भी तो चलती नहीं और बेचारा व्यापारी फिर नौकरी की ओर चल देता है ।

नौकरियों के लिए जो प्रतियोगिता मांग और पूर्ति के असंतुलन के कारण उत्पन्न हो गई है वह और भी भयंकर है । पूरी भीड़ की भीड़ नौकरी के लिए प्रतियोगी है । प्रतियोगिता का लाभ उठाकर मालिक साठ देकर एक सौ बीस की रसीद लिखाता है । दोगली

अर्थ व्यवस्था में केवल भटकन है :

नौकरी चाहिए, नौकरी चाहिए,
जो नौकरी नहीं तो मिटा के रख देंगे,
ये बंगले, ये कारें जला के रख देंगे । *

1017. विद्रोही :

रूढ़ियों और पुरानी व्यवस्थाओं के प्रति आज की युवा पीढ़ी स्वाभाविक रूप से विद्रोही हो उठी है। आज की पीढ़ी इनके प्रति बड़ी निर्मम और निर्भय है । विद्रोही कोई अध्यारोपित वस्तु नहीं सहजरूप से उगनेवाली अस्वीकृति है । साठोत्तर काल में संगठित और सामूहिक विद्रोह की अभिव्यक्ति भी बढ़ती जा रही है । आर्थिक और राजनैतिक शोषण और आपाधापी के प्रति सामूहिक मानस चिन्गारियों से भर उठता है, हड़तालें होती हैं । पुतले जलाए जाते हैं । हिंसा और मार-काट भी हो जाती है । शहर कभी ठंडा नहीं रहता । विद्रोहात्मक हलचल हर नगर में घटती रहती है । तोड़-फोड़ लड़ाई झगड़ा, डकैती, बलात्कार, दंगा फसाद, गोली, कर्फ्यू आम बात हो गयी है ।

यदि किसी शहर में एक दिन में कोई ~~बड़ी बड़े~~ घटना न घटे तो वह शहर ही नहीं है । ईंट पत्थरों का फेंकना, स्कूल बंद, आफिस बंद, सब नगर के पर्यायवाची से हो गए हैं । अधिकांश जन-समूह कुछ इतना निराश हो चुका है कि उसे लगने लगा है कि वह व्यवस्था को बदलने में असमर्थ है । वह अपनी दुर्दशा के लिए लोगों को

---

* प्यार किए जा : राजेन्द्रकुमार

उत्तरदायी समझता है और उत्तरदायी वर्ग अपने को बचाकर दूसरे को दोषी ठहराना चाहता है ।

बहरी जनता बहरा नेता,
सब है कोल्हू के बैल,
जो मालिक है वह बहरा है,
जो नौकर है वह बहरा है,
जो बाबू है वह बहरा, जो अफसर है वह बहरा ....*

1.18.1 भीड़ के मनुष्य :

आत्मीयता और संबंध भावना के अभाव में समाज एक भीड़ में परिणत हो गया है । मनुष्य इस भीड़ में अपरिचित और अजनबीपन का अनुभव बड़ी तीव्रता से कर रहा है । भीड़ के भी अपरिहार्य है - भीड़ में जेब कतरे और लुटेरे ही अधिक दिखलाई पड़ते हैं । धमाधम भीड़ में किसी परिचित को बात सोचना अपराध जैसा लगता है । वस्तुत: भीड़ में उसकी पहचान खो जाती है । कभी कभी ही इस भीड़ के किसी अंश को वह पहचान पाता है । भीड़ कभी कभी निराश खालापन और अकेलेपन को समेट लेती है । किन्तु अधिकांश भीड़ अकेलेपन को उभार देती है । भीड़ उस व्यवस्था का भी बोध कराती है जो वास्तव में अव्यवस्था और अराजकता का पर्याय हो गई है । इससे मनुष्य का रूप विकृत होता चला जाता है ।

---

* कैद : माया गोविन्द

1.19. <u>अवसंगत व्यक्ति :</u> ....

आज का व्यक्ति अपने को इसलिए अवसंगत (मिस फिट) पा रहा है कि समाज के कुछ खण्ड आधुनिक हो गये या हो रहे हैं । और शेष खण्ड स्थिर या रूढ़ि ग्रस्त है इसलिए समग्र रूप से समाज में अवगति की परिस्थितियाँ बनती जाती है ।

समाज की सारी वर्तमान व्यवस्था छिद्रपूर्ण है । कुछ भी युवा मानस के अनुकूल नहीं है । कहीं यह अनुभव किया जा रहा है कि मैं वा जाने कितना काम कर सकता हूँ यदि मुझे सुविधा मिले । ऐसा अनुभव हो रहा है कि क्षमता और योग्यता के ठीक उपयोग के अवसर नहीं मिल रहे हैं और निकट भविष्य में ही इस प्रकार के अवसरों की आशा नहीं है । अवसंगति बोध आज की पीढ़ी को संत्रस्त किए दे रहा है ।

हाय रे हाय ए दुनिया
हम तेरी नजर में आवारे -

1.20. <u>दोहरा व्यक्तित्व :</u>

बाहर और भीतर के अन्तर्विरोध, विसंगति एवं तज्जन्य मनःस्थितियों ने मनुष्य के व्यक्तित्व को जटिल बना दिया है वह अपने किसी भी व्यवहार में सहज नहीं रह गया है -

एक चेहरे पे कई चेहरे
लगा लेते हैं लोग -

एक कृत्रिम व्यवहार उसका स्वभाव बनता जा रहा है - "आज का मनुष्य दोहरी जिन्दगी को जीने के लिए विवश है जो कि वह जानता है कि चेहरे पर जितनी ही क्रीम पाउडर की पर्तें लगाकर समाज में खूबसूरत दिखाई देना चाहता है -भीतर से उतना ही उसका पोलापन और कलौंछ लिए हुए चेहरा झांक उठता है" ।*

1.21.1 भय और संत्रास : ... .

ये स्थिति विश्वासहीन आत्मीयता से रहित खंडित आत्मविश्वास वाली और जीवन के मान मूल्यों की विघटनशील स्थिति का परिणाम है । युद्ध-विनाश और अनिश्चित भविष्य इस स्थिति को दृढ़ करने में सहयोग देते हैं ।

1.22.1 अन्तर्मुखता : ....

वस्तुवादी युग की विवशता जन्य आत्मोन्मुखता किसी रहस्यानुभूति को जन्म देने में असमर्थ है । इससे कुंठा और आंतरिक गतिहीनता ही जन्म लेती है । सभी संस्थाओं को नकारकर व्यक्ति क्रमबद्धता, आयोजन और पुनरावृत्ति से बचता हुआ अपने निजी क्षणों में स्थित होकर उनकी संवेदनाओं को अनुभव और अभिव्यक्त करना चाहता है । उसके निजी क्षण बाह्य और आंतरिक कारणों से परायेपन के बोध से ग्रस्त होते जाते हैं ।

मनुष्य आज बाह्य जीवन के व्यापारों के प्रति उदासीन ही नहीं उत्साहहीन भी हो गया है । मनोरंजन निरर्थक लगता है -

---

* श्री सुधीन्द्र : नई कहानी : प्रकृति और पाठ : : पृ. 43

बाहर अन्दर सब शत्रु ही शत्रु दिखाई देते हैं ।

इस अन्तर्मुखता को ना रहस्यानुभूति की स्थिति कह सकते हैं और न पलायन को । बल्कि यह उस ऊब और आत्मीय-रहित मानवीय संबंधों का परिणाम है जो मनुष्य के चारों ओर उगते जा रहे हैं ।

/.23./ अकेलापन/खालीपन/सूनापन : ....

आज का मानव आर्थिक कारणों से महानगरों में रहने और पिसने के लिए विवश है । महानगरीय सभ्यता उसे अकेला खाली और सूना बनाती है । अविश्वास और संदेह की छायाएं इतनी गहरी होती जा रही है कि जब अकेलापन दुःसह्य हो जाता है तो आत्म-हत्या तक की बात मनुष्य सोचने लगता है ।

भीतर का यह खालीपन मनुष्य की आंतरिक शक्ति को सुला देता है । सारी प्रेरणाएं निस्पन्द हो जाती हैं ।

/.24./ चाय सिग्रेट - शराब : ....

चाय : थके और निराश व्यक्ति को चाय एक शरण के रूप में दिखलाई पड़ती है जो दैनिक जीवन का आवश्यक अंग बन गई है । चाय पीना जीवन का वह क्षण है जिसमें व्यक्ति व्यस्तता से कुछ देर के लिए उन्मुक्त हो जाता है ।

सिग्रेट : चाय की भांति सिग्रेट भी मानव को ऊब का साथी है । प्रतीक्षा के क्षण काटने के लिए सिग्रेट काम आती है, धुंधलाई मनोस्थिति का तनाव भी इससे कम होता है । बाहरी और अनचाही परिस्थितियों पर सिग्रेट का धुंआ एक आवरण बन

जाता है । प्रेमगत निराशा और भटकाव की स्थिति में सिग्रेट एक सहारे का काम करती है ।

मैं जिंदगी का साथ निभाता चला गया
हर फिक्र को धुएं में उड़ाता चला गया । *

1.24.2 <u>शराब</u> : ....

जब दुःख और पीड़ा बहुत गहरी होती है तो शराब की शरण ली जाती है । यौवन की विदाई और वृद्धावस्था के आगमन के लक्षणों के प्रकट होने पर अधेड़ व्यक्ति को जो पीड़ा होती है उसमें शराब उसकी चेतना को कुछ विस्मृति प्रदान करती है । भग्न हृदय का सहारा भी शराब बनती है ।

शराब अकेलेपन को भरने का भी साधन है दूसरी ओर रोमांस के क्षणों को गर्मी और उत्तेजना भी शराब से मिलती है । अत्याधिक हर्ष के अवसरों पर सामूहिक रूप से शराब पीना सामान्य बात है । उच्च वर्ग और नेताओं के लिए शराब मनोरंजन का अनिवार्य साधन है । एक ओर टूटा हुआ मनुष्य अपनी पहचान को भूलने के लिए पीता है तो दूसरी ओर वर्गीय वैषम्य इसके सहारे उभरता है ।

1.25.1 <u>वेश्यालय - एक शरण</u> : ... .

वेश्या ,कीपरंपरा बहुत पुरानी है । साठोत्तर काल में समाज में वेश्याओं की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई है । इस काल में पुरुष उन स्थलों की ओर फिसल रहा है जहाँ उसे क्षणिक तृप्ति मिले

---

* हम दोनों :

यह भी संभव है कि शराब और वेश्या अंत तक उसे और अतृप्ति प्रदान करें ।

1.25.2 बीमारी : विषाक्त वातावरण में आज हर मानव बीमार है । स्वास्थ्य संबंधी आचार संहिता स्वास्थ्य के नियम स्वास्थ्य संतुलित भोजन आदि बातें किसी मर्ज के लिए छोड़ दी जाती है ।

बीमार हो गई दुनिया,
बेकार हो गई दुनिया - *, कपड़

स्वास्थ्य बनाना सिर्फ नेता या धनी वर्ग के लिए ही संभव है । मध्यवित्तीय वर्ग का युवक बीमार होने, रहने और उसी को अपरिहार्य नियति मानकर चलते रहने के लिए अभिशाप्त है ।

1.26.1 टूटन : .. ..

समाज जिन परिस्थितियों में होकर निकल रहा है और व्यक्ति जिन मन:स्थितियों को जी रहा है उसकी अभिव्यक्ति टूटन शब्द बड़ी सार्थकता से करता है । संबंध मूल्य, विश्वास, जीवन के प्रति आस्था, सब टूट रहे हैं । व्यक्ति अन्तर्बाह्य टूटन का अनुभव कर रहा है ।

न कोई उमंग है न कोई तरंग है,
मेरी जिन्दगी है क्या इक कटी पतंग है
आकाश से गिरी मैं एक बार कट के ऐसे
दुनिया ने फिर ना पूछो लूटा है मुझको कैसे ।[2]

---

* रोटी, कपड़ा और मकान

2 कटी पतंग : आनंद बख्शी

1.26.2 आत्म-हत्या : एक विशेष मन:स्थिति : ....

"मरता क्या न करता" की स्थिति में आकर मनुष्य हत्या की ओर भी प्रेरित होता है और जब टूटा हुआ मन और चुकी हुई शक्ति काम नहीं देती तो आत्म-हत्या की प्रेरणा बलवती हो उठती है ।

अभावग्रस्त हर व्यक्ति धीरे-धीरे आत्महत्या कर रहा है । आर्थिक दबाव, प्रेम असफलता, आदि आत्महत्या के प्रबल कारण है ।

1.27.1 जिजीविषा : ... .

आज जीवन जीने योग्य नहीं रह गया क्योंकि जिसे प्रेम को संजीवनी समझा जाता था, वह स्वयं निर्जीव होता जा रहा है ।

जीवन तभी जीने योग्य हो सकता है, जब बन्धन हो रुकावट न हो, मर्यादा ना हो - आत्म विश्वासहीन मनु भाग्य से प्रतिक्षण टकरा रहा है ।

जीना फिर भी एक विवशता है । जिजीविषा मनुष्य की प्रकृति का एक मानस है । इस प्राकृतिक रागात्मक शक्ति के विरोध में समाज की अनेक प्रतिकूल शक्तियां खड़ी हैं ।

इस द्वन्द्व में अधिकांशत: जिजीविषा विजयनी होती है । अपवाद रूप में ही आत्म हत्या जैसी क्रियाएं घटित होती हैं जिजीविषा प्रकृति की एक ऐसी व्यापक प्रेरणा है जो इस चेतन में

प्रकट दिखाई देती है ।

जिन्दगी की ना टूटे लड़ी ।
प्यार कर ले घड़ी दो घड़ी । *

* क्रांति : संतोष आनंद

खण्ड - तीन : गीत-वस्तु

3. गीत वस्तु : ....

प्रास्ताविक : इसमें सन्देह नहीं कि सिने गीत की प्राण शक्ति और उसका आकर्षण केन्द्र उसकी लय संगीत रचना और वाद्य संगति में निहित रहती है । इसका प्रमाण यह है कि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी गीत लोकप्रिय है - चाहे उसकी विषय वस्तु का परिचय भाषा के अभाव में न हो पाये फिर भी सिने गीत का अध्येता या अनुसंधाता गीत वस्तु को छोड़कर नहीं चल सकता । सिने गीत की वस्तु योजना पर प्रस्तुत अध्याय में विचार किया गया है ।

परिमाण की दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो सिने गीतों में सबसे अधिक संख्या में प्रेम और सौन्दर्य वाले गीतों की है । इसका कारण यह है कि चित्रपट के मनोरंजन से संबंधित

सामान्य जन की रुचि सौन्दर्य और प्रेम की भंगिमाओं में ही विशेष रमती है । अभी बौद्धिक रूप से यह जनसमूह इतना प्रबुद्ध नहीं है कि समस्या मूलक या यथार्थ परक गीत वस्तु की वैचारिक भूमिका में प्रवेश कर सके । इसके लिए उसकी अभिरुचि का उच्चस्तरीय परिष्कार अपेक्षित होगा । परिमाण की दृष्टि से दूसरा स्थान जीवन दर्शन के लिये हुए समाजोन्मुख गीतों का है । इसमें नैतिकता सामाजिक यथार्थ का बोध व्यंग आदि सन्निविष्ट रहते हैं । तीसरा स्थान राष्ट्र प्रेम या राष्ट्रीय चेतना से संबंधित चेतना का है । आजादी के बाद राष्ट्रीयता के चेतना ने एक नया रूपाकार गीतों में ग्रहण किया है । इन कोटियों के अतिरिक्त कुछ स्फुट, हल्के फुलके खेल के गीत भी चलते हैं ।

....

अध्याय : 2 [ब]

:
:
:
:
:
:
:

प्रेम-काम

प्रेम और काम :   ....

0. प्रास्ताविक : इस बात को अनादि काल से लेकर आज तक माना जाता रहा है कि प्रेम की स्थिति जीवन के केन्द्र में है । यह भी स्वीकार करके चला जा सकता है कि कोई भी मूल प्रवृत्ति प्रेम से अधिक व्यापक नहीं है : मानव जगत ही नहीं जन्तु जगत और वनस्पति जगत भी इस प्रवृत्ति की किसी न किसी प्रेरणा से आन्दोलित रहते हैं । प्रेम से सम्बन्धित दर्शन भी संसार में विकसित हुआ और प्रेम सन्दर्भ साहित्य में विविध प्रकार से स्थापित हुए और इसके दैहिक स्तर से सम्बन्धित काम शास्त्र भी लिखे गये । यह द्वन्द भी चलता रहा कि प्रेम के दैहिक मानसिक और आध्यात्मिक स्तरों में से कौनसा स्तर वरणीय है । इन तीनों धरातलों पर प्रेम की विविध परिणतियाँ होती है । यह सभी स्तर समकालीन हिन्दी साहित्य में किसी न किसी रूप में

मिल जाते हैं । यह स्वीकार कर लेने में आपत्ति नहीं हो सकती कि सिने साहित्य का 99 प्रतिशत प्रेम और सौन्दर्य को ही समर्पित हुआ है । नूरी, लैला मजनू, अमर प्रेम, एक दूजे के लिये जैसी फिल्मों में प्रेम की आध्यात्मिक परम्परा भी प्रतीकायित हुई है । जिसमें त्याग और बलिदान के तत्व प्रेम के उदात्त पक्ष को प्रमाणित करते हैं । इस प्रकार की फिल्मों की संख्या भी अत्यन्त सीमित है । अधिकांश फिल्मों में प्रेम का दैहिक पक्ष ही अधिक आया है जिसमें सामाजिक संघर्ष और वर्गीय द्वन्द ने दर्द पैदा किया है जो प्रेम के दैहिक स्तर को मर्मस्पर्शता प्रदान करता है । प्रेम का त्रीभुजीय सूत्र भी तरह तरह से प्रकट हुआ है - दो प्रेमी एक प्रेमीका, * पति-पत्नी और प्रेमिका,[2] दो प्रेमिकाएं और एक प्रेमी ।[3] इन त्रिभुजों में प्रेम सम्बन्धी संघर्ष चलता है । कभी इस संघर्ष को रूढ़िप्रिय माँ बाप दर्द की ओर खिसकाते हैं और कभी जाति व्यवस्था इसको उग्र रूप देती है । प्रेम सम्बन्धी इस संघर्ष की उपयोगिता, कुतुहल और जिज्ञासा जैसे नाटकीय तत्वों को उभारता है किन्तु इन सबके बीच में अनुस्यूत रहता है - प्रेम, काम और सौन्दर्य का त्रिभुज । इस त्रिभुज का विस्तार प्रेम संघर्ष से पूर्व भी होता है और बीच बीच में भी होता रहता है और इसी त्रिभुज की सजावट में सिने साहित्यकारों की प्रतिभा प्राय: लगी रहती है । इसका कारण यह भी हो सकता है कि यही वह त्रिभुज है जिसका सम्बन्ध रूढ़िप्रिय समाज में उगती हुई सामान्य जन की प्रेम, सम्बन्धी कुण्ठा से हैं । आदर्श और नैतिकता, परम्परा और रूढ़ि से प्रेम के स्वच्छन्द व्यवहार को बाधित करके समाज व्यथित मन को अभेद्य कुण्ठा में धकिया

---

* संगम : राजकपूर
2 पति-पत्नी और वह : [बी.आर.चोपड़ा]
3 कराटे : [दे.मुखर्जी]

देता है । इसका विरेचन * काम प्रेम और सौन्दर्य के त्रिभुज के प्रदर्शन के द्वारा बहुत कुछ होता है : यही सामान्य जन की अभिरुचि बन जाती है : अब सामान्य जन के अवचेतन मन की ग्रन्थियाँ बहुत कुछ शिथिल होती है, इस सम्बन्ध में एक मत द्रष्टव्य है ।

"प्राण चेतना अपने मौलिक नियमों के अनुसार मानव की रागवृत्ति को संचालित करती है । प्रेम आवेगों का अंध समर्पण नहीं है उसके पीछे अवचेतन मन कार्य करता है । वही प्रेम की समस्त गतिविधियों का संचालन करता है, वही कुंठाओं को मिटाकर और सद्ग्रन्थियों को खोलकर मन को वासना के बंधन में बांध देता है । *

प्रेम सम्बन्धी द्वन्द का वहन प्राय: पटकथा करती है । कुंठा और अवरोध जन्य दर्द गीतों का माध्यम ग्रहण करता है । रूपाकर्षण और प्रेम-क्रीडा भी बहुत कुछ गीतों का विषय बनती है । एक ओर रूप के आकाश में गीत के पक्षी उड़ते हुए रूप की ऊँचाइयों और तत्सम्बन्धी अनुभूति की गहराइयों को मापते हैं और कभी कामशास्त्रीय संयोग की विक्षिप्तियों को संमूर्तित करता है । यहीं जो नग्नता बढ़ती जाती है उसी को संस्कारों से जड़मानस अश्लीलता कह देता है और दूसरी और सैंसर बोर्ड के दरवाजों को खटखटाया जाता है कि वह चुंबनादि आदि के दृश्यों के लिये अधिक से अधिक सहिष्णु हो । इस क्षेत्र में नकारात्मक स्वर को स्वीकार के स्वर में बदले इस प्रवृत्ति का सम्बन्ध एक और अवचेतन मन की काम कुण्ठा में जुड़ जाता है और दूसरी ओर फिल्म सम्बन्धी व्यावसायिक दृष्टि से । कुछ भी हो, सिने साहित्य में प्रेम के संदर्भ

---

* डॉ. शिवाकर कटारे : गीति नाट्य शिल्प विवेचन : पृ. 118-119

युगाद् से युगादृतर होते जाते हैं और गीतों में इनकी प्रतिछाया गहराती जाती है । प्रस्तुत अध्याय में गीतों के माध्यम से प्रकट होनेवाली प्रेम और सौन्दर्य की आकृतियों को अनुसंधेय बनाया गया है ।

1. प्रेम दर्शन : ....

यद्यपि अधिकांश सिने गीतों में प्रेम का व्यवहारिक रूप या दैहिक स्तर ही अधिक आया है तथापि आनुषंगिक रूप से प्रेम सम्बन्धी आदर्श परक या दार्शनिक उक्तियाँ भी समाविष्ट हुई हैं । इन उक्तियों में प्रेम को महिमा भी आई है और प्रेम के आदर्शों का भी कथन किया गया है । इन कथनों में मांसल या स्थूल प्रेम की स्थितियों का अतिक्रमण करके गीत शुद्ध मानसिक या आध्यात्मिक स्तरों पर संक्रमण करता है ।

1.1 शुद्ध प्रेम : .. .. ..

मांसलता के आधार से परे भी मानव मन एक आदर्श प्रेम की अनुभूति करता है । इसे निर्मल प्रेम का या पवित्र प्रेम कहा जाता है । पवित्र प्रेम को बहुत महानता का दर्जा दिया गया है । यह प्रेम मांसल नहीं होता अपितु दिव्य होता है । यह एक ऐसा अहसास है जो हृदय की गहराइयों से पल्लवित होता है । इसे आत्मा ही अनुभव कर सकती है । जहाँ पवित्र प्रेम की गहराई है वहाँ प्रेम वाचाल नहीं होता । जैसे बहुत गहरी झील की सतह पर बहुत कम हलचल होती है । पवित्र प्रेम का एक मौन हजारों मांसल प्रेम निवेदनों से कहीं ज्यादा/तीव्र और प्रभावी होती है -

हमने देखी है इन आँखों की महकती खुशबू
हाथ से छू के इसे रिश्तों का इल्जाम ना दो ...

तात्पर्य यह है कि प्रेम अपने आप में स्वयं एक सम्बन्ध जो दो आत्माओं के बीच बनता है । अन्य सामाजिक रिश्ते इस प्रेम को औपचारिक परिणति देना चाहते हैं किन्तु शुद्ध प्रेम इन सामाजिक औपचारिकताओं से भी मुक्त रहना चाहता है । वह अपनी अस्मिता के लिये किसी सामाजिक आधार का मोहताज नहीं है ।

प्रेम जहाँ अस्तित्व की गहराइयों में लहराता है वहाँ उसकी ऊँचाइयाँ भी परिलक्षित होती है । ऊँचाइयाँ उसके बोध और दर्शन से संबंधित होती है । प्रेम की ऊँचाइयाँ त्याग और बलिदान से प्रामाणित होती है । इनकी चर्चा अनादि काल से प्रेमी और विचारक करते आये हैं । एक गीत में प्रेम को हिमालय से भी ऊँचा कहा गया है ।

मेरा प्रेम हिमालय से ऊँचा, सागर से गहरा प्यार मेरा
अपना कह दे एक बार मुझे, होगा मुझ पर उपकार तेरा..[2]

पवित्र प्रेम पूर्व जन्मों के बंधनों को स्वीकार करता है और यह कि नायक नायिका संभवतः पिछले जन्म में भी इसी तरह प्रेमी-प्रेमिका रहे हैं ।

प्रेमी के मन में यह विश्वास जम जाता है कि कोई भी बाधायें प्रेम की परिणति को अवरुद्ध नहीं कर सकती यहाँ तक की प्रेम जन्म मरण के आर पार भी अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखेगा ।

---

* खामोशी : गुलजार 2 पुजारिन : बी॰डी॰ मिश्र

सौ बार जन्म लेंगे, सौ बार फना होगा
ए जाने वफा फिर भी हम तुम न जुदा होंगे *

पवित्र प्रेम मृत्यु से डरता नहीं । क्योंकि प्रेमी युगल यह समझता है कि उनकी मृत्यु केवल शरीर की मृत्यु हो सकती है । उनके प्रेम की या उनके आत्मा की नहीं :

प्यार कभी भी मरता नहीं, मौत से भी डरता नहीं
लुट जाएंगे, मिट जाएंगे, मर जाएंगे हम
जिन्दा रहेगी हमारी दास्तां, जब तक है वहां
ए जाने जा...[2]

अपने प्रेमी का साक्षात्कार ही प्रेयसी के लिए सबसे प्रिय होता है । उसके सामीप्य से ही वह सर्वस्व की अनुभूति कर लेती है । और उसके मन उपवन के सारे पुष्प एक साथ खिल उठते हैं । जिस प्रकार सूर्य के दिशान्तर के साथ सूर्यमुखी अपनी दिशा बदल देती है उसी प्रकार प्रेयसी की चेतन/अचेतन अवस्था में मात्र अपने प्रियतम के दर्शन या उसकी स्मृति से ओत-प्रोत रहना चाहती है ।

एक तू जो मिला सारी दुनिया मिली
खिला जो मेरा दिल सारी दुनिया खिली
तू सूरज मैं सुरजमुखी हूँ पिया -
ना देखूं तो तो लगे ना जिया ...[3]

ऐसा विचार किया गया है कि ये प्रेमी युगल जन्म-जन्मान्तर

1	उस्तादों के उस्ताद	:	असद भोपाली
2	शोले	:	आनंद बक्षी
3	हिमालय की गोद में	:	इंदीवर

से एक-दूसरे के लिये जन्म लेते रहे हैं ।

कभी कभी मेरे दिल में ख्याल आता है
कि जैसे तुझको बनाया गया है मेरे लिए
तू अब से पहले सितारों में बस रही थी कहीं
तुझे ज़मी पे बुलाया गया है मेरे लिये .....*

यह प्रेम दर्शन प्रभावित करनेवाला नियतिवाद है । वास्तव में यह नियतिवाद प्रेम सम्बन्धी विश्वास का ही रूपान्तरण है । प्रेम की अनन्यता भी इसमें व्यंजित है ।

प्रेम का अर्थ है आकर्षण : प्रेमी प्रेमिका में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्रकृति के व्यापार में यही एक आकर्षण विद्यमान है ।

सूरज पीछे घूमे धरती, चांद के पीछे घूमे सवेरा
जिस नाते ने इनको बांधा, वो नाता है तेरा-मेरा ...[2]

पवित्र प्रेमी समय, समाज और संसार की परवाह किए बिना एक दूसरे को पाने की चेष्टा करते हैं -

हम इंतजार करेंगे तेरा क्यामत तक
खुदा करें के क्यामत हो और तु आए ....[3]

प्रेमिका जब पवित्र प्रेम के बंधन में बंध जाती है तो उसे सम्पूर्ण जगत प्रीतममय दिखता है :

---

*	कभी कभी	:	साहिर लुधियानवी
2	आदमी और इन्सान	:	साहिर लुधियानवी
3	बहू बेगम	:	मजरूह

तुम्ही मेरे मंदिर तुम्ही मेरी पूजा
तुम्ही देवता हो,
जिधर देखती हूं, उधर तुम ही तुम हो... *

प्रेमी एक दूसरे के लिए प्राणोत्सर्ग करने के लिए तत्पर रहते हैं।

अब तो है तुमसे हर खुशी अपनी
तुम पे मरना है जिन्दगी अपनी ...[2]

और -

हम बने तुम बने एक दूजे के लिए
उसको कसम लगे बिछुड़ कर, इक पल भी जिए ...[3]

प्रेम जहाँ अग-जग व्यापी आकर्षण शक्ति की ही मानवीय परिणति है वहाँ प्रेम का लक्षण चिर अतृप्ति भी है यह अतृप्ति इसलिये होती है कि वह उच्च से उच्चतर भूमिकाओं में प्रवेश पाने के लिये व्याकुल रहता है। अतृप्ति का सम्बन्ध शारीरिक व्यापार से भी हो सकता है और शुद्ध मानसिक स्तर पर भी। इस अतृप्ति के आधार पर ही संयोग की स्थितियों में विरह की सूक्ष्मतर अनुभूतियां संचरित रहती है। एक गीत में इसकी ओर संकेत किया गया है :

अभी न जाओ छोड़कर के दिल अभी भरा नहीं
अभी अभी तो आई हो, बहार बन के छाई हो

---

* खानदान : साहिर
2 अभिमान : मजरूह
3 एक दूजे के लिए : आनंद बक्शी

x x x x x

मैं थोड़ी देर जी तो लूं, नशे के घूंट पी तो लूं
अभी तो कुछ कहा नहीं अभी तो कुछ सुना नहीं । *

इस अतृप्ति की चर्चा भक्ति साहित्य के प्रेमोत्कर्ष के क्षणों में की गई है । यह संयोग एवं वियोग का संगम प्रेम की एक दिव्य स्थिति है ।

काल एक नैरंतर्य है । मानव जीवन भी आदिकाल से अंत तक प्रवाहमान रहेगा । जीवन की धारा में मूल भावों और प्रवृत्तियों का प्रवाह आता ही रहेगा । यह "कन्टीन्यूयम" का एक सिद्धान्त है जो देशकाल और जीवन से सम्बद्ध रहता है । इस नैरंतर्य की चर्चा एक गीत में हसरत ने की है ।

सौ साल पहले मुझे तुम से प्यार था
आज भी है और कल भी रहेगा
सदियों से तुझसे मिलने जिया बेकरार था
आज भी है और कल भी रहेगा ।[2]

प्रेम का नैरंतर्य देश और काल की सीमाओं का अतिक्रमण करके स्थापित रहता है । प्रलय और सृष्टि के कालखण्ड इसको खंडित नहीं कर सकते । उर्वशी में भी प्रेम के इस नैरंतर्यकी ओर संकेत करके कामाध्यात्म को पुष्ट किया गया है ।

---

* हम दोनों : साहिर
2 जब प्यार किसी से होता है : हसरत

प्रेम की गहराइयों और ऊँचाइयों में विचरण करनेवाले प्रेमी भी संसार में पूज्य हुए हैं । ऐसे अनेक प्रेमी युग्म विश्व के इतिहास और साहित्य में प्रेम के प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठित हो गये हैं जो अन्ततः प्रेम की सूक्ष्मताओं को समर्पित हो गये हैं । सिने गीतों में प्रतीक आदर्श के रूप में इनका भी उल्लेख प्रस्तुत या अप्रस्तुत रूप में मिल जाता है । राम-सीता, राधाकृष्ण, मीरा-मोहन, हीर-रांझा, सोनी महीवाल, लैला मजनू, रोमियो जूलियट, आदि इसी प्रकार के अमर प्रेमी युग्म है । इनको चाहे व्यवहार में लाना सम्भव न रहा हो फिर भी इनकी ओर संकेत इसलिये किया गया है कि प्रेम का स्वरूप कुछ उदात्त हो जाये । कुछ उदाहरण प्रस्तुत है :

एक उदाहरण मीरा-मोहन से प्रस्तुत है :

> लाख छुपाये मीरा रानी, मनमोहन की प्रेम दीवानी
> जान गई जान गई जान गई सब सखियाँ । *

इसी क्रम में सीताराम को भी आदर्श युगल रूप में प्रतिष्ठित किया गया है :

> चलो हम तुम कोई दूजा नाम रख लें
> नाम बदल कर सीता राम रख लें ।[2]

राधा और कृष्ण का स्थान तो सर्वोच्च है इनका उदाहरण अप्रस्तुत रूप में भी आता है और प्रस्तुत रूप में भी एक गीत में राधा को

---

* आपकी कसम : आनंद बक्षी

2 ये गुलिस्ताँ हमारा : आनंद बक्षी

इस रूप में मूर्तिमान किया गया है :

जैसे -

राधा ने माला जपी श्याम की
मैने ओढी चुनरिया तेरे नाम की । *

लौकिक प्रेमी युग्मों में हीर-रांझा या लैला मजनू का स्थान महत्वपूर्ण हो जाता है ।

हीर बने तू रांझा बनके तेरी गली में आऊं
नाम अगर हो तेरा लैला मजनूं मैं बन जाऊं

1.2 प्रेमानन्द : ....

प्रेम का आनंद आत्मा की रागात्मक परिव्याप्ति में निहित है । प्रेम की अंतिम पराकाष्ठा चतुर्दिक प्रियदर्शन में है "जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है" प्रिय की अन्तर्बाह्य छवियां प्रेमी को परिवेष्ठित कर लेती है । शकील ने "साहब बीबी गुलाम" में प्रेमी की इसी मनोदशा की अभिव्यंजना की है । इस मनःस्थिति में प्रेमीका अपनी सुध-बुध को खो बैठती है : अहं प्रिय में घुल-घुल जाता है :

पिया ऐसो जिया में समाय गयो रे
कि मैं तन मन की सुध बुध गवां बैठी
हर आहट पे समझी वो आय गयो रे
झट घूंघट में मुखड़ा छुपा बैठी ।[2]

---

* तेरे मेरे सपने : नीरज

चारों ओर ऐसा वातावरण बन जाता है जिसमें आनंद के अतिरिक्त कुछ नहीं रहता । इस आनंदमय वातावरण को साहिर ने इस प्रकार प्रतीकायित किया है :

कभी कभी मेरे दिल में ख्याल आता है
कि जैसे बजती है शहनाइयाँ सी राहों में
सुहागरात है, घूँघट उठा रहा हूँ मैं
सिमट रही है तू शरमा के अपनी बाहों में । *

अनन्तः प्रेमी और प्रेमिका की दिव्य परिणति होती है । लगता है कि प्रेमी प्रेमिका का अस्तित्व देवत्व प्राप्त कर रहा है ।

प्यार ईश्वरत्व प्रदान करता हुआ निम्नलिखित गीत में दिखलाया गया है ।

मुझे देवता बनाकर तेरी चाह-तों ने पूजा
मेरा प्यार कह रहा है, मै तुझे खुदा बना दूं ।[2]

तात्पर्य यह है कि अस्तित्व प्रेम की राह से देवत्व की ओर चलता हुआ मिलता है । प्रेम उसका उदात्तीकरण करके उसे न जाने कहाँ से कहाँ ले जाता है । खण्ड के स्थान पर अखण्ड अपूर्ण के स्थान पर संपूर्णता की स्थापना हो जाती है और चिर-अतृप्ति सौ सौ तृप्तियों से भी अधिक स्पृहणीय हो जाती है ।

---

* कभी कभी

2 दाग : साहिर

प्रेम साधन नहीं है : वह स्वयं साध्य है । त्याग और उत्सर्ग की भावनायें प्रेम को देवता बना देती है । "दिल एक मंदिर है" क्योंकि इसी में जीवन की पवित्रतायें उल्लासित होती है । इन क्षणों को ही दिल एक पवित्र मन्दिर बन जाता है । इस मन्दिर में ही प्रेम के देवता की मूर्ति प्रतिष्ठित होती है और गीतकार इस सारी स्थिति को शब्द देता है :

दिल एक मंदिर है, प्यार की जिसमें होती है पूजा
ये प्रीतम का घर है । *

यदि रहस्यवादी शब्दावली में कहा जाये तो अनंत प्रियतम का अवतरण हृदय के मंदिर में ही होता है । प्रेम और प्रिय में अभेद स्थापित हो जाता है ।

स्थूल आकर्षण मन-मन में व्याप्त प्रेम की सूक्ष्म झंकृतियों में लीन हो जाता है और विश्व मानव मन की एकता सिद्ध हो जाती है ।

इस प्रकार साठोत्तर सिने गीतों में आदर्श प्रेम का दर्शन न्यूनाधिक अभिव्यक्ति पाता है । यद्यपि सिनेमा के द्वारा संगमूर्तित प्रेम भौतिक स्तर पर ही विक्षोभ पैदा करता है फिर भी पीड़ा और विरह के ऐसे क्षण प्रेम में घटित हो जाते हैं जिनमें शुद्ध आध्यात्मिक धरातल बर्बस उभर आता है । इस प्रेम दर्शन में एक सार्वभौमिकता दृष्टिगत होती है ।

1.3 प्रेम और धन : ....

धन या सम्पत्ति प्रेम को खरीदने का दावा करता है । वह

---

* दिल एक मंदिर : हसरत

एक ऐसा स्वर्ण जाल बिछाना चाहता है जिसमें सौन्दर्य का हिरण उलझ जाये - उलझ कर रह जाये । यह स्वर्ण जाल वैभव विलास और प्रलोभन का होता है । ऐसा द्वन्द प्रेम की शुद्ध शक्तियों से होता है । प्राय: जिने गीतों में प्रेम की शुद्ध शक्तियों के सामने धन की शक्तियों को पराजित एवं तिरस्कृत दिखलाया गया है । इस आशय के गीत प्रेम के दर्शन को ही पुष्ट करते हैं । एक गीत में शहंशाहियत को इस प्रकार ललकारा गया है :

एक शहंशाह ने बनवाके हसीं ताजमहल
हम गरीबों की मोहब्बत का उड़ाया है मजाक

कुछ ऐसे संदर्भ भी उपस्थित किये जाते हैं जिनमें क्षणिक रूप से ही सही निर्धन प्रेमी का दिल टूटता लगता है तब सारी सहानुभूति निर्धन और विवश प्रेमी पर केन्द्रित हो जाती है । उदाहरण के लिये ये पंक्तियाँ ली जा सकती हैं :

चाँदी की दीवार न तोड़ी प्यार भरा दिल तोड़ दिया
एक धनवान की लड़की ने निर्धन के दिल तोड़ दिया ।

एक नायक धन के मूल्य की उपेक्षा करता हुआ अपनी प्रेमिका से याचना कर रहा है :

ना मांगू सोना चाँदी ना मांगू हीरा मोती
ये मेरे किस काम के
देती है दिल दे बदले में दिल के *

इस गीत संदर्भ की योजना में जो सूत्र गुम्फित है वह यह है कि प्रेम अपने आप में एक मूल्य है । इस मूल्य को धन का मूल्य निष्प्रभ नहीं

---

* बॉबी : विट्ठलभाई पटेल

कर सकता । शुद्ध मानवीय मूल्यों की अवहेलना का यह युग है जहाँ बाह्य और स्थूल मूल्यों की विजय होती जा रही है । यह स्थिति अत्यन्त चिन्त्य है । सिने गीतों का यह आदर्श है जिसमें प्रेम के मूल्य की विजय स्थापित की गई है । बड़े-बड़े तस्कर-व्यापारी और काले धन के स्वामी प्रेम को खरीदने के अभियान में असफल दिखाये जाते हैं । पटकथा सिने गीतों को इस दर्शन को कई प्रकार से पुष्ट करती है - कभी निर्धन प्रेमी धनी बन जाता है, कभी धनी माँ-बाप निर्धन प्रेमी के कौशल को देखकर उसे अपनी सम्पत्ति सौंप देते हैं और कभी यह सब कुछ क्रान्ति में बदल जाता है ।

2. <u>प्रेम का मनोविज्ञान</u> : ... .

मध्यकालीन नैतिकता और कामाश्रित चरित्र कल्पना और उस पर आधारित सदाचार की संधारणा को आधुनिक मनोवैज्ञानिक खोजों ने कापने ठेस पहुँचाई है । इनके स्थान पर काम और प्रेम के वैयक्तिक और सामाजिक यथार्थ पर अधिक ध्यान केन्द्रित होने लगा । उस नैतिकता का मनोविज्ञान का पुनर्निरीक्षण किया जो काम और प्रेम की स्वच्छन्द परिणतियों को वर्जित करती है । उन कुण्ठाओं को अधिक सहानुभूति के साथ देखा गया जो प्रेम सम्बन्धी सामाजिक वर्जनों और दबावों से उत्पन्न होती है । व्यक्तित्व और अस्तित्व की केन्द्रवर्ती प्रवृत्ति के रूप में काम को आँका गया । यह भी प्रस्तावित किया गया कि व्यक्तित्व का पूर्ण विकास काम-सम्बन्धी मनोग्रन्थियों में विमोचन पर ही निर्भर रहता है । जहाँ साहित्य की विभिन्न विधायें नयी नैतिकता और काम सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक मान्यताओं से प्रभावित हुई वहाँ सिने गीत भी इनसे अछूता नहीं रहा ।

2.1 काम :

विश्व साहित्य में काम प्रवृत्ति की अभिव्यंजना प्रकट या प्रच्छन्न रूप में सदैव हुई यह सार्वभौमिक प्रवृत्ति है। प्रेम काम की व्युत्पत्ति है और जीवन में काम अथवा प्रेम की अनिवार्यता है। काम मनुष्य को भोग की ओर प्रवृत्त करता है तो उसमें असीम त्याग की भावना का भी संचार करता है। उसकी सन्तुष्टि में सुख है तो असन्तुष्टि में घोर पीड़ा। उसका विवृत्त रूप हीन विकारों को जन्म देता है।

भारतवर्ष में वात्स्यायन का "कामसूत्र ग्रन्थ" कामशास्त्र के ग्रन्थों में सर्वश्रेष्ठ है। पीछे पश्चिम में भी "सैक्सोलोजी" का विकास एक विज्ञान के रूप में हुआ। फ्रायड जो मूलतः मनोविश्लेषण शास्त्री थे उन्होंने काम मूलक प्रवृत्ति को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करके उसका विश्लेषण किया उनके अनुसार शैशवीय कामविकास से ही स्त्री पुरुषों के समस्त व्यापारों की दिशा निर्धारित होती है। मनुष्य की मनोविकृतियों के मूल में उसकी अतृप्त कामेच्छायें ही होती है।

यह एक सत्य है कि काम एक ऐसी शक्ति है जिसका सम्बन्ध जैविकीय तत्त्व और मनोविज्ञान दोनों से है। प्रेम काम की मानसिक अभिव्यक्ति है और काम प्रवृत्ति समस्त सामाजिक और वैयक्तिक जीवन को परिचालित करती है।

काम के सम्बन्ध में एक विद्वान का कथन है -

"काम का इतिहास वेद उपनिषदों की अद्वैत भूमि पर परम ब्रह्म से प्रारम्भ होता है। आत्मा में वह स्वतन्त्र स्वयं, अनंत सूक्ष्म व्यापक

आदि शक्ति रूप रखता है और पुरुष की संकुचित स्थिति में वह ह कामना मोह, तृष्णा, वासना और आसक्ति के रूप में परिणित हो जाता है।"* इस परम्परा को उस समय चाहे शुद्ध मनोविज्ञान की परम्परा से चाहे न जोड़ा गया हो किन्तु यह संधारणाये मूलवर्ती है जिनका वैज्ञानिक व्यावहारिक और गणतीय विकास आधुनिक विज्ञान ने किया है। यह दूरान्वयी होगा कि हम सिने गीतों के काम व्यवहार का सम्बन्ध, वेद उपनिषदों से जुड़ी उसका सम्बन्ध आधुनिक मनोविश्लेषण से जोड़ना ही उचित होगा।

सिनेमा का नायक जो युवा वर्ग का प्रतीक भी है - रूप रस एवं सुन्दरता की भूख का पीड़ित रहा है। यह प्रिया के अंगों में खो जाने चितवनों में खो जाने, अधरों से अधरों की बात कराने का कायल रहा है। एक ही पल के दरस में उसे प्रिया को पाने की तृष्णा जाग उठती है।

2.2. यौन कुण्ठायें : ....

सिने जगत की सृजन शक्तियाँ उस रचना में संलग्न हुई है जो काम की कुण्ठाओं से उत्पन्न पीड़ा की विरेचन कर सके और काम सम्बन्धी अपराध भावना से तथा काम सम्बन्धी विकृतियों और विसंगतियों से मुक्ति दिला सके। स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध जैविक धरातल पर रख कर देखने से काम की चेष्टायें उचित प्रतीत ~~होती~~ होने लगती है। चलचित्रीय काम विवर्त पर विचार करते हुए एक विद्वान ने लिखा है - "पुरुष और नारी के मध्य शान्ति केवल काम क्रिया

---

* रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी : गीत काव्य : पृ. 312

से स्थापित हो सकती है।* " इसकी झंकृति इस पंक्ति में सुनाई पड़ती है :

मेरे दिल में आज क्या है तु कहे तो मैं बता दूं
तेरी जुल्फ फिर संवारु तेरी मांग फिर सजा दूं
तेरे बाजुओं में आकर मेरा दर्द चैन पाये।[2]

चलचित्रों के निर्माताओं का यह भी सिद्धान्त हो गया है कि काम क्रिया किसी भी रूप में मनुष्य को शान्ति प्रदान करती है।* इन मान्यताओं का क्रियान्वयन पाश्चात्य सभ्यता और होलीवुड जैसे चलचित्र केन्द्रों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भारत जैसे आदर्शवादी और नैतिकतावादी देशों के लिये यह चौंका देनेवाली स्थिति है। किन्तु भारतीय सिने जगत धीरे-धीरे काम की विमुक्ति की ओर बढ़ता जा रहा है। अति कामाचार सम्बन्धी चलचित्रों को केवल प्रौढ़ों के लिये सीमित कर दिया जाता है। सामान्य चलचित्रों में भी कामाचार की छायाएं पड़ने ही लगी है, बढ़ती ही जा रही है। और संघर्ष चल रहा है।

जब काम को जीवन के केन्द्र में स्थापित कर दिया गया हो और वह शारीरिक और मानसिक सुख की धुरी मान लिया गया हो उसकी शक्ति को अपरिहार्य कह दिया गया हो और उसका वैविक

---

* सैक्स-साइक-एक्स्प्रेशन इन फिल्म –

2 दाग़ – साहिर

आवश्यकता का समर्थन किया जा रहा हो तब कामवृत्ति के वर्जन से उत्पन्न कुंठा अधिक कटु और कभी कभी क्रान्तिपरक हो जाती है। सारा जीवन कुण्ठाजन्य उन्माद और अस्वाभाविक मानसिकता से भर उठता है। फलतः व्यक्ति काम सम्बन्धी अपराधों की ओर अग्रसर होता है। इसको एक सिने गीत में इस प्रकार अभिव्यक्ति मिली है :

चाहा था बनूं प्यार की राहों का देवता
मुझको बना दिया है गुनाहों का देवता। *

इस वस्तु स्थिति में पुरानी मान्यतायें जर्जर होती जा रही है। आज का युवा मानस काम की छाया में ही जीना चाहता है और काम में इसलिये प्रवृत्त होता है कि वह शांति से मर भी सके [1] इसके प्रतिध्वनि निम्नलिखित गीत पंक्तियों में सुनी जा सकती है।

दोनों किसी को नज़र नहीं आये
चल दरिया में डूब जाये।[2]

तात्पर्य यह है कि शैशव के अवसान पर यौवन का उदय, प्राणों की

---

* गुनाहों का देवता

1 सेक्स साइक एक्सटरी इन फिल्म : पार्किवीलर पृष्ठ 44.

2 ब्दब प्रेम कहानी :

सांसों में काम का संगीत, यौवन के खुमार में संसार का रंग जाना जीवन-यौवन की शाश्वतता की इच्छा, वासना का उदय, वासना पूर्ति के लिये समागम तद्जन्य आनंद एक कृम है । फिर यदि यौवन का मार्ग अवरुद्ध हो जाये तो मानस में हलचल होती है, अशान्ति का संघर्ष मचता है । *

काम कुंठा का एक सामाजिक पक्ष भी है -

भारतीय समाज में वैवाहिक बंधन की जड़े कुछ ज्यादा मजबूत है । विवाह के बाद नारी एवं पुरूष की सेक्स सम्बन्धी स्वतन्त्रताएँ प्राय: समाप्त सी हो जाती है और समाज विवाहित पुरूष एवं नारी के पर-पुरूष अथवा पर नारी के सेक्स सम्बन्धों को स्वीकार नहीं करता ।

इस स्थिति में पत्नी अथवा पति में यौन-कुंठाएं जन्म ले लेती है :- इस तरह संभावित वैवाहिक बंधन की कुंठाओं से भयभीत आज के समाज का युवा वर्ग विवाह के बंधन को नकारना चाहता है :

मैं तुमसे मुहब्बत करती हूँ, पर शादी के नाम से डरती हूँ
रहूँगी मैं कुँवारी, उम्र सारी आई एम सारी ...
शादी से प्यार का मज़ा जाता रहता है ...[2]

पूर्ण, यौवना जिसका व्यक्तिगत जीवन साथी पुरूष की मृत्यु अथवा अलगाव से तहस नहस हो गया हो और वह उत्तेजना के

---

* उदयशंकर भट्ट : विश्वामित्र और दो भावनाट्य : पृ. 74
2 वारंट : आनंद बक्षी

नाम पर लूट लिया गया हो । उसे पुनः अपने बिखराव को समेटना होता है और नवजीवन का अविष्कार करना होता है । "प्रेम रोग" की यही कथा वस्तु है ।

भंवरे ने खिलाया फूल,
फूल को ले गया राजकुंवर
भंवरे तू कहना न भूल
फूल तेरा हो गया इधर-उधर ... *

काम प्रक्रिया द्वारा काम उर्जा का स्खलन होता है । काम उर्जा के स्खलन का अचानक रुक जाना यौन-कुंठाओं को जन्म देता है और नारी या पुरुष का पूर्ण जीवन यौवन काल में विनष्ट हो जाता है -

इश्क की गरमी ये जज्बात, किसे पेश करुं
ये सुलगते हुए दिन-रात, किसे पेश करुं...[2]

इस महाविनाश को रोकने के लिए नए रास्ते खोजने होते हैं नया प्यार ढूंढना होता है - नया साथी हासिल करना होता है । इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को सिने गीतकारों ने बड़े सशक्त स्वरों में उठाया है :

मेरी तमन्नाओं की तकदीर तुम संवार दो
प्यासी है जिंदगी तुम मुझे प्यार दो

---

* प्रेम रोग

2 गजल : साहिर लुधियानवी

..   ..   ..

धोखे हैं हर दिल में नफरत है रंग रंग में
सबने डुबोया है मुझे, पार तुम उतार दो .... *

फिल्म महबूबा में आनंद बक्षी ने यौन कुंठा ग्रस्त नायिका के लिए एक बहुत ही मर्मस्पर्शी गीत लिखा :

मेरे नैना सावन भादों, फिर भी मेरा मन प्यासा
रुत आए रुत जाए देकर, झूठा एक दिलासा ....[2]

2.3 <u>काम एक विश्व रोग :</u>   ....

मानव शून्य में जी रहा है । इस भयंकर स्थिति का काम विज्ञान की कसौटी पर विश्लेषण विश्वविख्यात निर्देशक अन्टोनियोनी ने अपनी फिल्मों "लावेन्चुरा", "ला नाट" और "ला एक्लिस" में बड़ी गहराई से किया है । इस जटिल रहस्य को सुझाते हुए पार्कर टिलर का कथन है -

"लव एज एन इन्स्टीनक्ट", दि एरोज आफ मिथिकल कल्चर हैज़ फेल्ड, इन रोमांस, एं पोयटरी, इवन इन मैजिकल रिलिजियन दि एमोशन आफ लव, इटस एकस्टसी, हैज़ स्टुड वारंट बियांड एवरी डे सेक्यूटर सेक्शन सच एज़ दैट आफ मैरेज आर व्हाट वि काल पिक्लिटी इन लव, अन्टोनियोनी डज़ ब्रिंग समथिंग इन टू ड्रास्टीक क्वेश्चन - दि एरोटिक एकस्टसी इटसेल्फ व्हाट हैज़ सीमड सुप्रीम टू पोयेट्स टू द, हिरोज एण्ड हिरोइन्स आफ लव टू जिस सीमस टू हेव लास्ट आल क्रेडिट इन दि वर्ल्ड एवोक्ड बाई अन्टोनियोनी ।[3]

---

* होली आई रे : इंदीवर   2 महबूबा : आनंद बक्षी

3 इन्टरव्यू विद डायरेक्टर्स

पवित्र प्रेम असफल हो चुका है जिसका प्रतिपादन सदियों से कवि करते रहे और जो विवाह के सामाजिक परिवेश में पवित्रता पाता था। अन्तोनियोनो ने भयंकर प्रश्न उठाया है। अन्टोनियोनी की दुनिया में [कवियों को सर्वोच्च दिखनेवाला] उद्दीपक आनंद भी आज के युग में खो गया है -

"मैन टू - डे हेज़ नो फियर आफ दि साइन्टिफिक अननोन ही इज अफ्रेड आफ दि मारल अननोन ..... मैन इज टू वि कन्सीडर्ड अनफ्रेड आफ दि साइन्टिफिक अननोन बिकाज ही इज इनवेडिंग फार स्पेस सो डाउटलेसली एण्ड डिस्कवरिंग दि मारल कान्सक्वेन्सेस आफ ओपनिंग सम आफ दि नेचरस डिपेस्ट सिक्रेटस एण्ड हारनेसिंग देम, आइ, बट दि मोरल अननोन दि फ्यूचर आफ मौरलिटी इज अननोन व्हाई दे शुड फियर द मोरल अननोन .... पैराग्राफ पैरानोइया सप्लाइस दि अनसर"।

आज मानव विज्ञान से नहीं डरता किन्तु अपनी अज्ञात नैतिकता से डरता है। हे मानव क्यों इतना भयभीत है। इसका उत्तर पैरानोइया की व्याख्या करते समय मनोवैज्ञानिकों ने दिया है -

"पैरानोइया मानसिक भय के रूप में प्रकट होता है जिस कारण मानव, जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से दूर हो जाता है। यह अवस्था किसी गहरे पीड़ाजनक अनुभव या किसी अदम्य इच्छा के पूरा होते होते रुक जाने से या आत्मा सम्मान पर गहरी चोट पहुँचने के कारण, उत्पन्न होती है।"

पैरानोयड व्यक्ति को अपने चारों ओर एक षड्यंत्र की गंध आती रहती है - सारा संसार उसे शत्रु दिखता है । यह स्वयं निर्मित मानसिक रोग आज विश्व की आधुनिक विचारधारा द्वारा स्वीकृत हो चुका है और इसकी गहराई से जांच भी की जा चुकी है । *

यह वक्त के हाथों में चमकते हुए खन्जर
इक साथ कलेजे में उतर क्यों नहीं जाते ...[2]

पूरे संसार में चल रहे षड्यंत्र से त्रस्त मानव अपनी जड़ें खो देता है और अधर में लटक जाता है । न उसे धरती मिलती है न आसमान ।

नैतिकता की भूख से त्रस्त अकेला महसूस करता हुआ पैरानोइक मानव बिना अपराध के भी चारों और फैले हुए जासूसों की कल्पना करने लगता है । असंतुलित, चंचल, नारियां ‡यौन भूख से त्रस्त घर के अंधेरे कोनों में और अंधेरी सड़कों पर बलात्कारियों की उपस्थिति महसूस करने लगती है । प्रकृति के किसी भी उलझे या [illegible] अस्पष्ट आयाम से पैरानोइक जन्य भय उत्पन्न हो सकता है ।"[3]

साठोत्तरी हिन्दी सिने गीतकारों ने इस विश्व रोग के स्वरों को बार-बार उठाया है । निरीह मानव को किस भयंकर वातावरण में जीना पड़ रहा है इसकी कल्पना भी कितनी त्रासमयी है -

---

* [illegible] गमन : शहरयार

2• पुरी लव : असद भोपाली

3 सेक्स साइक एटेस्ट्रा : पर्कर : पृ•85-95

बरसों से सुलगते तन मन पर
अश्कों के तो छींटे दे न सके
तपते हुए दिल के जख्मों पर
बरसे भी तो अंगारों की तरह ....*

वेश्यावृत्ति में लिप्त नारी पेरानोइक है और हर समय संत्रास में जीती है । आत्म सम्मान पर चोट बलपूर्वक तोड़ा हुआ नैतिकता का मूल्य, प्रेम में असफलता - यही तो है एक नारी का वेश्या बन जाने का नैतिक कारण .....

आनंद बक्षी ने फिल्म ~~कटी~~ कटी पतंग में नारी मन को इस पेरानोइक रोग से बुरी तरह ग्रसित बताया है । केवल स्वयं की कल्पना में एक भयंकर आघात [वैधव्य के कारण कामकुंठा से, ग्रसित नारी सारी दुनिया से ही मुंह मोड़ बैठी है :

न कोई उमंग है न कोई तरंग है
..   ..
मेरी जिन्दगी है क्या एक कटी पतंग है

2.4 <u>प्रेम क्रान्ति</u> :

मनुष्य समाज के बंधन से घिरा हुआ है । यह बंधन आत्मा और मन दोनों के नैसर्गिक विकास में बाधक है । दूसरा अन्तर पीढ़ी का है । नयी पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी द्वारा स्थापित जीवन मूल्यों को स्वीकार नहीं करती और पुरानी पीढ़ी अपनी सत्ता को जमाये रखना चाहती है । यहीं नयी पीढ़ी का युवा वर्ग इन बन्धनों को

---

* ममता : गीतकार मजरूह

चुनौती देता है । आज वह समाज द्वारा स्थापित मर्यादाओं को तोड़ रहा है । प्रेम क्रान्ति कोई नयी उद्भावना नहीं है, युवामन एवं प्रेमी सदैव इसमें संलग्न है । प्रेम कथानकों के लैला मजनूं, शीरी फरहाद, ढोला मारवण इसी प्रेम क्रान्ति की परम्पराएं है । आज यह प्रेम क्रान्ति विश्व के हर भाग में फैल चुकी है, सिनेमा ने इसमें महत्वपूर्ण योगदान दिया है । आज प्रेमी आर्थिक वैषम्य, छुआछात, धर्म, जाति आदि पर आधारित प्रेम अंकुशों से विद्रोह कर उठा है और यह क्रान्ति का उद्घोष प्रेमी-प्रेमिका सिनों गीतों के करते दिखाई पड़ते हैं ।

अब चाहे मां रूठे या बाबा
यारा मैंने तो हां कर ली
अब चाहे ■ रब रूठे या दुनिया
मैंने तेरी बांह पकड़ ली । *

इस गीत में प्रेम युगल की मां, बाप से स्पष्ट असहमत है और उन्हें उनकी परवाह नहीं है । साथ ही समाज व धर्म द्वारा रचे गए ईश्वरीय भय का भी उन्हें डर नहीं है और ना ही संसार की कोई परवाह है वह अपने प्रेम व्यापार के लिये क्रान्तिकारी हो गये हैं ।

लाख जंजीरों में जकड़े ये जमाने वाले
तोड़कर बंद निकल आयेंगे आनेवाले [2]

प्रेम क्रान्तिकारी लोग क्या कहते हैं" इसकी चिंता नहीं करते और आनंद बक्शी का नायक नायिका को यह प्रेरणा देता है कि

---

* दाग : साहिर

2 चार दिल चार राहें : साहिर

दुनिया की बातों में फंसकर अपनी मिलन-बेला को क्यों नष्ट किया जाय ।

कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों का काम है कहना
छोड़ो बेकार की बातों में बीत न जाये रैना

साहिर प्रेम क्रान्ति के प्रबल समर्थक है । वह हर रीत रस्म को तोड़ना अच्छा समझते हैं ।

कुत्ते भौंकते हैं, कापला चलता रहता है
रीत रस्म तोड़ भी दे, दिल को अकेला छोड़ भी दे ।*

इस तरह का आक्षेप चलचित्रों एवं उनके गीतों पर लगाया जाता है कि ये नयी पीढ़ी को दिग्भ्रमित कर रहे हैं उन्हें बिगाड़ रहे हैं । किन्तु यह निराधार तर्क है । आज का युवावर्ग चाहे वह संसार के किसी भी हिस्से में हो बिल्कुल स्वतन्त्र होकर जीना चाहता है ।

खुल्लम खुल्ला प्यार करेंगे हम दोनों
इस दुनिया से नहीं डरेंगे हम दोनों ।

प्रेमिका अपने प्रेम और प्रेमी के ख्यालों में खोई रहना चाहती है दुनिया से बेखबर ।

जाग के फिर सो गई, सपनों में खो गई
आग लगे सारी दुनिया को, मै तेरी हो गई रे बालमा ।[2]

---

* चार दिल चार राहे : साहिर
2 आन मिलो सजना : आनंद बक्षी

३. प्रेम व्यवहार : ....

प्रेम : परिणति :

प्रेम मन में पैदा होता है और अन्तत: विविध सोपानों पर होता हुआ अध्यात्म में खो जाता है । दो ध्रुवातों के बीच प्रेम विविध दिशाओं में उतरता-चढ़ता चलता है । कभी मिलन में प्रेम स्वप्न चरितार्थ होता हुआ मिलता है और कभी विरह प्रज्जवलित होकर एक ओर तो पीड़ा को गहराता चला जाता है और दूसरी ओर विकृतियों और कलुषताओं को धो देता है । सामान्य रूप से अधिकांश गीत मिलन की ऐन्द्रिय परिणतियों को प्राप्त करते हैं किन्तु विरह की पीड़ा भी उनमें उभरती है । प्रेम परिणति का सारा विधान साहित्यिक स्पर्शों के साथ सिने गीतों में उतर आया है । प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत इन्हीं स्थितियों का आकलन किया गया है ।

३.१ संयोग : ....

प्रेम साधना का लक्ष्य है प्रिय-मिलन । मिलन की भूमिका भी मादक होती है और मिलन के क्षण भी मदिर हो उठते हैं ।

३.१.१ अनदेखे से प्रेम : .. .. ..

नायक अथवा नायिका के हृदय में एक भावी जीवन साथी की कल्पना सदैव रहती है । वे दोनों किसी अनदेखे प्रेमी के विचारों में खोने लगते हैं । उनके दरस की संभावना उनमें प्रेम की कसक भर देती है । कई सिने कथानकों में पट कथा कुछ इस तरह चलती है कि

नायिका किसी उपवन, नदी या तालाब के किनारे अपनी सखियों के साथ विहार कर रही होती है और नायक उस रास्ते से गुजरता है। उसी समय नायिका किसी अज्ञात अनदेखे प्रेमी के लिये गीत गाती है और नायक के मन में नायिका के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है। यह स्थिति नायिका के लिये नायक की भी हो सकती है।

हमारे गांव कोई आयेगा
प्यार की डोर में बंध जायेगा। *

इस गीत में "कोई" शब्द इस बात का वाचक है कि प्रिय अज्ञात है। और यही अज्ञात प्रेमी इन बेसुध क्षणों में यथार्थ बन जाता है।

अपनी भावी प्रेमिका की खोज नायिका को विकल कर देती है:

मीत न मिला रे। मन का
मीत ना मिला
कोई तो मिलन का करो रे उपाय।[2]

इस गीत में एक अनाम और अक्षम्य पीड़ा का अनुभव प्रेमी का मानस कर रहा है, वह पुकार उठता है कि उसके मिलन की योजना करने कोई आये तो सही।

---

* प्रोफेसर : शैलेन्द्र

2 अभिमान : मजरूह

3.1.2 प्रथम दर्शन : ....

प्रेम में प्रथम दर्शन का विशेष महत्त्व है । इसका कारण यह है कि प्रेम - संकेतों, स्पन्दनों और मूक संवादों का आरम्भ इन्हीं क्षणों में होता है । कुछ बातें होठों तक आते आते रुक जाती है । कुछ आधी अधूरी प्रकट होती है । इन्हीं मादक क्षणों को अनेक सिने गीतों में बांधा गया है ।

जब मिले वो मिले मुझे पहली बार
उनसे हो गयी आंखे चार
पास न बैठे पल भर वो
फिर भी हो गया उनसे प्यार
इतनी थी बस खबर कि मेरे होश उड़ गये । *

इस गीत में आंखे चार होना मुहावरा सटीक और सार्थक हो रह है । प्रथम दर्शन के प्रभाव की अभिव्यक्ति भी स्पष्ट रूप से की ग है .... होश उड़ गये ... वास्तव में प्रथम मिलन चेतना को मधु स्थान कर देता है - आदान प्रदान में सबसे महत्त्वपूर्ण उपहार दिल ही माना गया है । यह आदान प्रदान दूसरों के लिये अबू रहता है । वस्तुतः यह शुद्ध भावनात्मक व्यापार है ।

ये दिल लेकर बनजरना
आ गया तेरा दीवाना
दिलबर जानी न देना ।[2]

---

* झुक गया आसमान : हसरत जयपुरी

2 एक बार मुस्करा दो

शेरो शायरी एवं गीतों के माध्यम से अपनी तरफ आकर्षित करने का माध्यम काफी प्राचीन है जो भावाभिव्यक्ति गद्य में कठिन होती है । गीत में सहजता से हो जाती है साथ ही मर्मस्पर्शी भी बन पड़ती है ।

कुछ शेर सुनाता हूँ मैं जो तुझसे मुखातिब है
एक हुस्न परी दिल में है ये उससे मुखातिब है । *

परदा अनवरत दर्शन का बाधक है । परदा भौतिक भी हो सकता है, लज्जा का भी हो सकता है और कोई भटकाव भी पर्दा बन सकता है । जब हृदय प्रेम से आप्लावित हो जाता है तो पर्दे को एक क्षण भी सहन करना असम्भव हो जाता है । आवरण और अनावरण के अभिप्राय को लेकर कई गीत बने हैं जैसे -

परदा नशी को बेपरदान कर दूँ तो
अकबर मेरा नाम नहीं [2]

5.1.3 प्रेम किरण : ... .

वैसे तो प्रेमोन्माद समग्र चेतना और समस्त अंगों को प्रभावित करता है, किन्तु प्रेम के समस्त व्यापार में आंखों का उल्लेखनीय स्थान होता है । सम्भवतः प्रेम सम्बन्धी साहित्य में सबसे अधिक वर्णन आंखों का ही किया गया आंखों के तीन रंग, सफेद-काला-लाल को लेकर अनेक उक्तियाँ की गई हैं साथ ही आंखों की भाषा (स्पीच आफ दी आई) आंखों के इशारे, अर्धनिमिलित

---

* एक दिल सौ अफसाने

2 अमर अकबर अन्थोनी : आनंद बक्षी

आँखें, बंद आँखें, कुछ ऐसे सूत्र है जिनको गीतों में विशद् रूप दिये गये हैं रीतिकाल के एक कवि रसलीन ने आखों में अमृत-विष और मदिरा तीनों की स्थिति मानी है ।

नयन तिरंगी होते हैं - पहला श्वेत रंग अमृत है, दूसरा रंग काला [पुतली] विष है और तीसरा रक्तिम - मद्य है । इस तिरंगी आँख की त्रिगुणी किरने जिनमें एक साथ जीवन, मृत्यु एवं उन्मादित करने की शक्तियाँ विद्यमान होती है जब किसी पर पड़ती है तो मन अपना सर्वस्व भूल जाता है ।

गुलाबी आँखे जो तेरी देखीं
शराबी ये दिल हो गया
सम्भालो मुझको ओ मेरे यारों
सम्भलना मुश्किल हो गया ..... *

मनचाहे प्रियतम के सम्मुख आते ही आँखों में प्रसन्नता चमक उठती है - पूरा अहसास झनझनाने लगता है ।

कौन आया के निगाहों में चमक नाच उठी
दिल के सोए हुए तारों में खनक जाग उठी ....[2]

नव यौवना नायिका का नायक की तरफ अर्थपूर्ण नेत्रों से देखना उसका सर्वस्व छीन लेने जैसा है । जब महफिल में नर्तकी नायिका एक सरसरी निगाह अपने दीवाने नायकों पर डालती है तो उनके धैर्य का सामूहिक कत्ले-आम हो जाता है ।

---

*	दी ट्रेन	:	आनंद बक्षी
2	वक्त	:	साहिर

उठा के नीची नजर, मैंने जब सलाम किया
मेरी अदाओं ने, महफिल में कत्ले आम किया .... *

प्रेमी से किसी कारण रूठ जाने पर नायिका छेड़ में कहती है कि तेरी मौत तो मेरी एक नजर से हो सकती है । किसी शस्त्रादि की जरूरत नहीं है ।

तुझे खंजर से क्या मारू एक नजर है काफी
मेरे सजना सुन तेरी खता की नहीं है माफी ....[2]

सिनेमा एक दृश्य श्रव्य माध्यम है । इसे ग्राह्य करने के माध्यम नेत्र एवं श्रवण इन्द्रिया है । सिने गीतकारों ने प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए नयनों को काफी महत्व दिया है एवं अनेक सुन्दर प्रयोग किए हैं -

तीर आंखों के जिगर के पार कर दो यार तुम
जान ले लो या जां को निसार कर दो यार तुम ....[3]

आंखों के इशारे को प्रभाव सिने गीतकार ने अफ्रीका के आदिवासियों के "काले जादू" से भी अधिक प्रभावशाली बताया है ।

काला काला जादू है, ऐसा मेरी नजर में
हाय रे चाहे कहीं पर मारूं, कटारी लगे जिगर में ...[4]

---

* कामशास्त्र
2 निर्दोष
3 गुनाहों का देवता : शैलेन्द्र
4 रामपुर का लक्ष्मण

सिने गीतकारों ने आँखों को मय-खाना माना है जिसकी मदिरा बिना जीवन ही मुश्किल है ।

आप रोज मेरी नजरों से पीते रहे
इस नशे के सहारे ही जीते रहे ..... *

•1.4• प्रेम का प्रभाव : ....

प्रथम मिलन में प्रेम की स्फूर्तियाँ विविध प्रेरणाओं में बदल जाती है । इन प्रेरणाओं से न जाने कितने प्रभाव प्रेमी और प्रेमिका के व्यक्तित्व को घेर लेते हैं । विभिन्न कल्पनायें उमड़कर कवि प्रतिभा को जगा देती है - प्रेमी और कवि में बहुत कम अंतर रह जाता है जो कवि नहीं है वह भी प्रेम का संस्पर्श पाकर सृजन के लिये प्रेरित हो उठता है । आनंद बक्षी ने इस स्थिति का इस प्रकार वर्णन किया है :

मैं शायर तो नहीं, मगर ए हंसी
जब से देखा मैंने तुझको, मुझको
शायरी आ गई ।[2]

दूसरा प्रभाव यह पड़ता है कि प्रेमी में एक नवीन शक्ति संचरित हो उठती है उसका विश्वास अपनी आत्मशक्ति के प्रति जगता है । नयी आस्था जन्म लेती है उसके व्यवहार और वाणी में वह शक्ति आ जाती है कि वह पत्थर को भी पिघला दें -

फौलाद के भी दिल में उल्फत की आग भर दूँ
अरे मैं वो परवाना हूँ पत्थर को मोम कर दूँ ।[3]

---

* चन्दन का पलना : आनंद 2 बाबी
3 जानी मेरा नाम : इन्दीवर

इसके साथ ही प्रेमी अपनी परिस्थितियों में पड़कर धैर्यवान भी हो जाता है । मुसीबतों को झेलने और परिस्थितियों से लड़ने की उसमें शक्ति आ जाती है । उसमें अधीरता भी आती है किन्तु प्रेम के पथ पर वह धीरज का सम्बल लेकर ही चलता है :

> कितनी सदियाँ बीत गई है, हाय तुझे समझाने में
> मेरे जैसा धीरजवाला, है कोई और जमाने में
> दिल का बढ़ता बोझ कभी कम होगा के नहीं ? *

3.1.5 <u>प्रेम-स्वप्न</u> : ....

प्रेमी जहाँ कवि बनता है वहाँ स्वप्न द्रष्टा भी प्रायडीय मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के अनुसार स्वप्न अचेतन और अवचेतन मन में रहनेवाली अपूर्ण इच्छाओं की प्रतीकात्मक सृष्टि है । दिवा-स्वप्न में मन की विविध इच्छाओं के कल्पना-जन्य चित्र हैं । स्वप्नों में कभी अपूर्ण इच्छायें पूर्ण होती हैं और कभी इच्छाओं के परोक्ष भाग उजागर होते हैं । स्वप्न का प्रयोग प्रतीक के रूप में भी हुआ है । प्रेम-गीतों में इस तरह का सप्रयोजन और सार्थक प्रयोग गीतकारों ने किया है ।

नायक के स्वप्न में नायिका आती है और उसका सम्बन्ध जागरण के क्षणों से जुड़ जाता है :

> रात कली एक ख्वाब में आई
> और गले का हार हुई
> .. ..

---

* संगम : शैलेन्द्र

सुबह को जब हम नींद से जागे
आंखे उसी से चार हुई । *

प्रियतम के स्वप्न में खोकर नायिका भी सारी दुनिया को ललकार उठती है । वह पूर्णतः प्रिय की हो जाती है :

जाग के फिर सो गई
सपने में खो गई
आग लगे सारी दुनिया को
मै तेरी हो गई ।[2]

नायिका की संज्ञा "सपनों की रानी" हो जाता है - "मेरी सपनों की रानी कब आयेगी तू ।" [3]

स्वप्न एक प्रकार से प्रियतमा का प्रतीक बन जाता है । कभी नायक अपने का स्वप्नवत घोषित करता है :

मैं तो एक ख्वाब हूं
इस ख्वाब से तू प्यार न कर ।[4]

न जाने मन कितने दिवा सपनों में खो जाता है । उन स्वप्नों में से सभी का पूर्ण होना असम्भव है पता नहीं कितने के भाग्य में पूरा होना लिखा है :

नैन हमारे सांझ सवेरे, देखे लाखों सपने
सच ये कहीं होंगे या नहीं
कोई जाने नहीं ।[5]

---

* बुड्ढा मिल गया : मजरूह   2 आन मिलो सजना : आनंद बक्षी
3 आराधना : आनंद बक्षी 4 हिमालय की गोद में : आनंद बक्षी
5 ~~अन्नदाता~~ : ~~योगेश~~

अधूरे स्वप्न छल के पर्याय बन जाते हैं कितने ही रंगीन स्वप्न एक छलिया की भांति हाथ में आते आते फिसल जाते हैं :-

सपने छलते ही रहे रोज नयी राहों से
कोई फिसला है अभी अभी बाहों से । *

कभी सपने चूर होते हुए भी मिलते हैं -
"तबसे सारे जीवन के सपने है चूर" 2

तात्पर्य यह है कि प्रेम व्यापार में प्रतीकात्मक दृष्टि से भी और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी स्वप्नों का महत्त्वपूर्ण स्थान हो जाता है । स्वप्न मिलन और विरह दोनों का ही साथ देते हैं । कभी दिवा स्वप्न प्रेमिका की रूप कल्पना को लेकर चलता है और सौभाग्य से वह कभी पूरा हो जाता है और कभी अधूरा रह जाता है । एक दिवा स्वप्न इन पंक्तियों में स्थापित हुआ है ।

चांद सी महबूबा हो मेरी
कब ऐसा मैंने सोचा था
हा तुम बिल्कुल वैसी हो
जैसा मैंने सोचा था ।3

3.1.6 मिलन स्थल : ....

सभ्यता के विकास के साथ-साथ मिलन के अवसरों एवं स्थानों में भी विकास होता है । एक समय था जब मिलन की सारी अनुभूतियां प्रगीतात्मक हो उठती थीं और मिलन के लिये प्राकृतिक सौन्दर्य

---

* आविष्कार : कपिल कुमार 2 हरेराम हरे कृष्ण : आनंद बक्षी
3 हिमालय की गोद में : कमर जलालाबादी

के सुगम स्थल खोजे जाते थे - नदी का किनारा महकता हुआ उद्यान, पहाड़ी की चोटी, झरते हुए झरनों का पड़ोस, फूलों की क्यारियाँ आदि। जब सभ्यता ने महानगरों की सृष्टि की तो प्रेमी-प्रेमिका के मिलन स्थलों की सूची भी विकसित हुई और उनकी प्रकृति भी बदली मिलने के नये स्थल ये बने - क्लब, होटल, कालेज, अस्पताल, दफ्तर, रेलगाड़ी आदि प्रेमी-प्रेमिकाओं के मिलन स्थलों की चर्चा भी सिने गीतों में आई हैं।

पर्वतीय उपात्यका : वादियां : ....

पहाड़ियों, वादियों और बहते झरणों के उन्मुक्त वातावरण में मिलते हुए नायक एवं नायिका इन्हीं प्राकृतिक तत्वों की सराहना करते हुए अपने मन की बातें कहते हैं।

मैं यह कहती हूँ कि,
खोने की जरूरत क्या है,
ओढ़ के धुंध की चादर
को यहीं सो जाए ..... *

प्रेम और पर्वत का एक अटूट सा रिश्ता है। कदाचित मानव-प्रेम पत्थरों, पहाड़ों के सान्निध्य में पूरी तरह से मुखर हो उठता है।

ये पर्वतों के दायरे, ये शाम का धुंआ
ऐसे में क्यूं न छेड़ दे, दो दिलों को दास्तां ...[2]

सरिता : समुद्र तट : जल :

नदी किनारे या समन्दर के बीच पर लहरों से खेलते हुए

---

* वक्त : साहिर 2 वासना : साहिर

मिलन का रंग बड़ा अनोखा होता है ।

साहिल की रेत पर यूँ लहरा उठे ये दिल
सागर में उठने वाली हर लहर को सलाम ...*

... ...

ओ गरम गरम काया ठंडा ठंडा पानी
लहर जैसे छुरी चले, राजा-जानी .....[2]

उपवन (बाग) : ... .

उपवन में पुष्पों के सान्निध्य एवं शीतल वं सुगंधित पवन की दुलार भरी थपकी से नैसर्गिक प्रेमी-प्रेमिका का मिलन और मदभरा हो उठता है ।

इन हवाओं में इन फिजाओं में
तुमको मेरा प्यार पुकारे, आजा आजा रे ....[3]

.. ..

शबनम के मोती फूलों पे बिखरे
दोनों की आस फले,
बल खाती बेलें मस्ती में खेले
पेड़ों से मिल के गले .....[4]

पनघट : (पनघट) :

पनघट पे मैं कम जाने लगी
नटखट से मैं शरमाने लगी ....[5]

---

* एक दूजे के लिए : आनंद बक्षी 2 परछाइयाँ : मजरूह
3 गुमराह : साहिर 4 हमराज : साहिर 5 लोफर

मेला : .. .. ..

जनपद एवं छोटे छोटे कस्बों में मेले आदि ही ऐसे अवसर आते हैं जब नायक नायिका सज संवर कर मेला देखने आते हैं । सिनेमा में ऐसी स्थिति में गीतों की योजना की जाती है । ऐसे अवसरों पर लोक नृत्य आदि का भी आयोजन किया जाता है जहाँ नायक एवं नायिका अपने प्रेम का प्रदर्शन करते हैं ।

बोल गोरी बोल तेरा कौन पिया
कौन है वो जिसे तूने प्यार किया
अरे तू जाने ना उसका नाम, हर सुबह हर शाम
दुनिया ने उसी का नाम लिया ..... *

नायिका अपने रूप सौन्दर्य का प्रभाव नवयुवकों पर किस प्रकार पड़ रहा था उसका वर्णन करती है ।

गई थी मैं मेले तो कई अलबेले
अरे नये नये छोरे डाल रहे थे मुझ पे डोरे...[2]

मंदिर : .. .. ..

मन्दिर आदि देवस्थान बहुत ही पवित्र स्थान माने जाते हैं । नायक एवं नायिका का परस्पर मिलन मंदिर आदि में भी दिखाया जाता है । बुद्ध काल में बौद्ध मठ तो वासना के मन्दिर बन गये । मध्यकाल में भी प्रेम एवं वासना के कृत्यों का सिलसिला मंदिरों में चलता रहा ।

चल सन्यासी मंदिर में, तेरा चिमटा मेरी चुड़ियाँ
साथ साथ खनकाएंगे .....[3]

---

* मिलन : आनंद बक्षी 2 कसौटी 3 संन्यासी

रूढ़ परिवार के बंधन में जकड़ी नायिका के लिये अपने प्रेमी से मिलने का स्थान मन्दिर ही हो सकता क्योंकि उसे वहाँ जाने की पाबन्दी नहीं होती ।

मैं तुमसे मिलने आई मंदिर जाने के बहाने । *

<u>शिक्षण संस्था :</u> ....

महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में सह पाठन होता है । वहाँ छात्र-छात्राएं जो वय-संधि को पार कर युवावस्था में प्रवेश कर रहे या रहीं होते/होती है उनमें प्रेमांकुर का प्रस्फुटन स्वभाविक एवं सहज है । अनेक चित्रों में नायक नायिका का मिलन विश्वविद्यालय के प्रांगण, कक्षा, पुस्तकालय, कैन्टीन, किताबों की बदला-बदली, रैगिंग, बस-लाइन आदि आदि में दिखाया गया है । फिल्म मेरे महबूब में कालेज जाते हुए नायक से नायिका टकरा जाती है और उसकी किताबे जमीन पर गिर जाती है । नायक किताबे उठाकर भौचक्की खड़ी नायिका को क्षमा-याचना सहित देता है और उन दोनों के बीच मिलन का प्रारम्भ हो जाता है :

मेरे महबूब मुझे मेरी मोहब्बत की कसम
फिर मुझे नरगिसी आँखों का सहारा दे दे
मेरा खोया हुआ रंगीन नजारा दे दें .....[2]

<u>क्लब :</u>

समाज का युवा-वर्ग पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगे क्लबों और

---

* हीरा

2 मेरे महबूब :

डिस्को के माहौल में ही सुख की तलाश करना चाहते हैं । कृत्रिम वातावरण आधुनिकतम उपकरणों, प्रकाश एवं ध्वनि यंत्रों से सुसज्जित डिस्को का माहौल ही उनके तरुण हृदय को तरंगित करता है ।

जवानी जाने मन, हसीन दिलरुबा
मिले जो दिल जवां, निसार हो गया
शिकारी खुद यहाँ, शिकार हो गया .....*

....

मैं एक डिस्को डिस्को डिस्को
दुनियाँ है एक डिस्को, डिस्को, 82 [2]

<u>समारोह :</u>

सिने पटकथा में नायक-नायिका का मिलन समारोहों के माध्यम से दिखाया जाता है । ये समारोह विवाह, जन्म-दिन, पर्व, त्योहार, काकटेल पार्टी, विदेश से आगमन की पार्टी आदि । अभिजात्य वर्ग में सांस्कृतिक एवं पारिवारिक जीवन के समारोह, मध्यम वर्ग में एवं निम्न वर्ग में सदैव होते हैं और इन समारोहों में नायक नायिका की तरफ अथवा नायिका नायक की तरफ आकर्षित हो जाती है या पूर्व परिचित रहे हो तो गीतों के माध्यम से अपनी प्रेम भावनाओं की प्रस्तुति करते हैं ।

चेहरे पे खुशी छा जाती है
आंखों में सुरूर आ जाता है
महफिल में तुम्हारे आने से
हर चीज़ पे नूर आ जाता है । [3]

---

* नमक हलाल   2 खुद्दार   3 वक्त : साहिर

वेश्या का कोठा : ... ...

वेश्या-जीवन एक सामाजिक समस्या है । फिर भी वेश्या-एक नारी है । प्रेम एवं अपनेपन के लिये उसका मन भी रोता है । कोठे के वातावरण में नाचती हुई वेश्या भी प्रेम से मुक्त नहीं रह सकती ।

दिल क्या है चीज आप मेरी जान लीजिये
बस एक बार मेरा कहा मान लीजिये
इस अंजुमन में आपको आना है बार-बार
दीवारों दर को गौर से पहचान लीजिए । *

डाकुओं का गुप्त निवास स्थल : .. .. ..

डाकु समस्या के चल-चित्रों में नायक नायिका का मिलन डाकुओं के गुप्त निवास स्थल पर होता है । डाकुओं के बीहड़ों में फंसी नायिका अपने प्रेमी को छुड़ाने के प्रयत्न में निर्णय नहीं ले पा रही है ।

मार दिया जाय कि छोड़ दिया जाए
बोल तेरे साथ क्या सुलुक किया जाए
ए बुझती हुई शमा के परवाने ....[2]

कमरा :

ये चोरी चोरी चुपके चुपके
तेरे मेरे बिन इस कमरे में और कौन है ....[3]

---

* उमरावजान : शहरयार 2 मेरा गांव मेरा देश : आनंद बक्षी

गली :

प्याला लेकर निकले रे मजनूं आशिक हुए भिखारी
खेल रहे है गली गली में दिल का जुआ जुआरी ...*
... .
मेरी गली में आया चोर, मन का चोर मेरे तन का चोर[2]

सड़क :

प्रेम की पूर्व निर्धारित मर्यादायें अब समाप्त हो चुकी है । प्रेमी युगल किसी से भी डरे बिना खुल्लम खुल्ला सड़क पर प्रेम - व्यवहार कर रहे हैं ।

अरे देख रहे हैं तो देखने दो
जल भी रहे हैं तो जलने दो
खुली सड़क है, तो क्या हुआ भाई
खुल्लम खुल्ला प्यार करेंगे हम दोनों ....[3]

गृह : कमरा : छत: सेज : आंगन :

दुल्हन का अपने प्रियतम से मिलन भी घर के विभिन्न हिस्सों में दर्शाया जाता है ।

सेज :

रेशमी सेज है महकी हुई तन्हाई है
आज की रात मुरादों की बारात आई है ।[4]

---

*	जीवन संग्राम	:	गुलजार	3 खेल खेल में	: गुलशन बावरा
2	धरती	:	हसरत	4 धर्म पुत्र	: साहिर

परलोक :

प्रेमियों को यह निष्ठुर संसार जब मिलने नहीं देता तो वह किसी दूसरे विश्व में जाकर एक दूसरे से मिलने की कल्पना करते हैं।

चलो दिलदार चलो, चांद के पार चलो .... *

....

लो धर थरा रहा है, अब शम्भे जिन्दगी की
उजड़ी हुई मुहब्बत, मेहमां है दो घड़ी की
मरकर ही अब मिलेंगे, जीकर तो मिल न पाए ....[2]

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि सिने गीतों में नायक-नायिका मिलन के विविध स्थल हैं। सिनेमा के कथानक की पुनरावृत्ति के कारण निर्देशक को नायक नायिका के प्रेम प्रसंग में नवीनता लाने के लिये नये नये स्थानों की योजना करनी पड़ती है और सिने कवि गीतकार ने उसकी यह मांग उचित दवा से पूरी भी की है।

3.1.7 मांसल प्रेम : ....

जैविक और शारीरिक धरातल का मिलन सिने-गीतों में बड़ा सज धज कर आया है। यह योजना कभी कभी नंगी और कुरुचि-पूर्ण भी हो गयी है इसका सम्बन्ध अभिरुचि के पतन से भी जोड़ा जा सकता है। दर्शक का अतृप्त मन कामुक क्षणों को गीत में बंधा हुआ पाकर तृप्त होता है। वे गीत उसके कंठ और वाणी में आ विराजते हैं

---

* पाकीजा : कैफी आज़मी 2 दो बदन : शकील

छुपी हुई पाशविक कामुकता थोड़ी देर के लिये मुक्त हो जाती है । नैतिकता के पहरेदार इन्हीं परिणतियों के कारण सिने गीतों को नैतिक पतन का कारण मान लेता है । इन सबका विस्तृत विवेचन यहाँ आवश्यक नहीं है । केवल प्रवृत्ति परिचय के लिये उदाहरण देना पर्याप्त होगा ।

प्रेम का आधार शरीर है । यही मांसल शरीर प्रेम के विद्युत आवेगों को धारण करने में सक्षम है - प्रेम ऊर्जा की शक्ति को शायद कोई और पदार्थ नहीं संभाल सकता । बड़ी विशिष्ट शक्ति के लिए विशिष्ट पात्र चाहिये - मानव का मांसल शरीर ही पात्र है । कंकाल प्यार नहीं कर सकते । युगों युगों से महामिलन को आतुर दो प्रेम तरंगे विभिन्न रूपों में नर्तन करती है । विश्व प्रसिद्ध सारे प्रेमी युगल इस महामिलन को लालसा के प्रतीक है । मिर्जा साहिबा, सस्सी पुन, हीर-रांझा लैला मजनू, रोमियों जूलियट, शीरीं-फरहाद दुल्ला भट्टी आदि और नव युग का हर प्रेमी युगल इसी महाप्यास से आक्रान्त रहा है - नारी और पुरुष दोनों का उद्दाम यौवन बारबार इस प्यास को बुझाना चाहता है ।* *

काल के साथ साथ बुद्धि विकसित हुई और मानव पशु से उभर उठ गया समाज का संगठन हुआ । नियम बने । मांसल-मिलन को सीमाबद्ध करने का प्रयत्न किया गया । विवाह का बंधन इसी आधार की एक कड़ी थी और दो प्रेमियों का अन्तिम मिलन - विवाह मांसल मिलन की सामाजिक स्वीकृति है ।

---

* गीति नाट्य एवं विवेचन : डा. शिवशंकर कटारे

प्रेम के मान सरोवर में विचरण करनेवाले युगल मांसल मिलन के लिए बेचैन रहते हैं :

आज की रात नहीं, शिक्वे शिकायत के लिए
आज का लम्हा, हरेक पल है मुहब्बत के लिए
रेशमी सेज है महकी हुई, तनहाई है ... .
अपनी जुल्फों को मेरे शाने पे बिखर जाने दो .... *

काम क्रिया में विलम्ब अथवा अपूर्णता प्रेमी युगल को विचलित कर देती है -

अभी ना जाओ छोड़कर,
कि दिल अभी भरा नहीं
मैं थोडी देर जी तो लूं
नशे के घूंट पी तो लूं ....[2]

जीवन की विसंगतियों एवं समाज की प्रतिद्वन्द्वता की परवाह किए बिना प्रकृति अपना काम नियम से करती रहती है । नारी और पुरुष एक दूसरे की तरफ आकर्षित होकर मांसल आधार पर मिलते रहते हैं :-

सांसों में घुल रही है किसी सांस की महक
दामन को छू रहा है कोई हाथ क्या करें .....[3]

---

* धर्म पुत्र : साहिर
2 हम दोनों : साहिर
3 आज और कल : साहिर

मांसल मिलन ही सृजन प्रक्रिया है और ये ही मनुष्य की जीवन-तरंग को लेकर आगे बढ़ती है । नारी पुरुष ने सदेव एक दूसरे को मांसल मिलन के लिए आमंत्रण दिया है - ये आमंत्रण, कभी रूप सज्जा से कभी नयन-चितवन से, कभी शारीरिक भंगिमाओं से अर्थात महर्षि वात्सायनन द्वारा बताई हुई 64 कलाओं द्वारा दिया जाता रहा है :

कांच की चूड़ियां भी, मैने खनकाई
अपनी जुल्फें भी मेने, लो बिखराई .... *

काम क्रिया में प्रहार या आघात की बार बार पुनरावृत्ति होती है । इस बल प्रयोग का कारण काम जनित उन्माद होता है । इसका उद्देश्य एक शान्तिपूर्ण सन्तुष्टि की मानसिक अवस्था का सृजन होता है :

बैठी बैठी सोचूँ मैं, वो तो चल दे मुझको डसके
मुझको मार डाले ना, अपने बाजुओं में कस के ....[2]

काम क्रिया में समय का अंतराल असह्य होता है । आतुर युगल मांसल मिलन की पुनरावृत्ति के लिए बेचैन रहते हैं ।

आज मिले हो फिर कल मिलोगे फिर परसों मिलोगे
जरा जल्दी जल्दी मिला करो ना जी ... .[3]

नर नारी के मांसल मिलने के मूल में "नव मानव-सृजन" का

---

*	मेरा गांव मेरा देश	:	आनंद बक्षी
2	नूरी	:	नक्श लायलपुरी
3	आप बीती	:	आनंद बक्षी

सिद्धान्त निहित है । सृजन के इस प्राकृतिक एवं शाश्वत नियम से ही आज मानव जीवित है । और आनेवाला हर मानव सृजन के लिए मांसल मिलन के महत्त्व को स्वीकार करता जा रहा है -

प्यार की कलियों से तो, झोली भर दी है
वादे का एक फूल, अभी बाकी है .... *

आलिंगन : .. ..

प्रेम की परिपक्वता का प्रारम्भ आलिंगन है जब नायक नायिका के अंग प्रत्यंग एक दूसरे में सिमट जाना चाहते है ठीक उसी समय से मांसल मिलन की पहली कड़ी प्रारम्भ होती है ।

हसीना डरी डरी
बाहों में सिमट गई
सीने से लिपट गई रे . ...[2]

आज की नायिका-नायक का दर दूर रहना नहीं सहन कर सकती है और नायक को आलिंगन के लिये उकसाती है ।

सुन सुन कसम से लागू तेरे कदम से
रहा जाय न हमसे गले लग जा गले लग जा ....[3]

नायिका के विश्वास घात से आहत नायक-नायिका को उसके सम्पूर्ण समर्पण एवं आलिंगन की स्मृति कराता है ।

---

*	गीता मेरा नाम	:	राजेन्द्र कृष्ण
2	नमक हलाल	:	
3	काला सोना	:	वर्मा मलिक

गले लगी सहम सहम, मरे गले से बोलती
वो तुम न थी तो कौन था, तुम्हीं तो थी *

पूर्ण समर्पण को कृत संकल्प नायिका बिना किसी हिचकिचाहट के नायक को आलिंगन का निमंत्रण देती है ।

बाहों में चले आवो, हमसे सनम क्या परदा
ये आज का नहीं मिलन, ये संग है उमर भर का ...[2]

<u>चुंबन :</u> . .. .

आलिंगन के उपरान्त प्रेम सोपान पर चुंबन का प्रारम्भ होता है । संसार की कठोरता के कारण चुंबन की अवस्था का प्रयोग किने गीतों के माध्यम से किया गया है ।

वो नीरज नयना आ जरा
तेरी लाज का घूंघट खोल दूं
तेरे आंचल पर कोई गीत लिखूं
तेरे होठों में अमृत घोल दूं .....[3]

....

तेरे रसवंती होठों का
मैं गीत कोई बन जाऊंगा
सरगम के फूलों से तेरे
सपनों की सेज सजाऊंगा ।...[4]

---

* संगम : शैलेन्द्र
2 अनामिका : मजरूह
3 शर्मीली :
4 सत्यं शिवं सुन्दरम : आनंद बक्षी

परिरम्भण : ....

प्रेम में मांसल मिलन की परिणति परिरम्भण में होती है भारतीय समाज की आदर्शवादिता के कारण परिरम्भण के दृश्यों की उत्तेजनात्मक अनुभूति गीतों के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है ।

ना वो सोया, ना ही सोने दिया
मिसरी जैसी बात में आ गई
मैं जालिम की घात में आ गई
ऐसी चाल चला मतवाला
भर दी नस-नस में इक ज्वाला
जाने कैसा जादू डाला ..... *

परिरम्भण का निमन्त्रण देती हुई नायिका -

हाँ .... बाहों में चले आओ
कभी-कभी कुछ तो कहो ओ पिया हमसे
कम से कम अब तो खुल के मिलो जरा हमसे
है रात अपनी जो तुम हो अपने
किसी का फिर हमें डर क्या .....[2]

....

ओ .... ओये गजब आज की ढलती शाम है
ऐसे में मुझे तुमसे काम है
प्यासी हूँ प्यार में दरिया किनारे
अब तो मुझे तेरी लगी, तू ही बुझा .....[3]

---

* ललकार :
2 अनामिका : मजरूह सुलतानपुरी
3 खुदा कसम :

सिने गीतकारों ने परिरम्भण को यथार्थ एवं जीवंत रूप में प्रस्तुत करने का सराहनीय कार्य किया है । नायिका आज के युग धर्मानुसार स्पष्ट एवं सीधे सीधे नायक के सम्मुख परिरम्भण एवं सम्भोग का प्रस्ताव रखते हुए हिचकिचाती नहीं ।

विशेष : मांसल मिलन की अन्य स्थितियां "काम" और "नारी सौन्दर्य" के अन्तर्गत देखिये ।

3.2 वियोग : ....

सिने गीतों में संयोग के भाव विह्वल क्षणों को ही अधिक अभिव्यक्ति मिली है । संयोग की विविध स्थितियों को चित्रित करने में कई पृविधियों का प्रयोग भी किया गया है । कहीं शैली अलंकृत हो गयी और कहीं काम विधियों से बोझिल । चाहे इस अनुपात में विरह की पीड़ा को अभिव्यक्ति न मिली हो फिर भी विरह की अभिव्यक्ति पर्याप्त हुई है । विरह के गीतों में भारतीय और शैलियों का प्रयोग हुआ है । कभी विरह वेदना ने अतिशयोक्ति का पल्ला पकड़ा है और कभी वह अपनी स्वाभाविक छवियों में विद्यमान है । संसार के साहित्य में जहां भी मिलन के गीत गायें गये हैं विरह का सह अस्तित्व भी रहा है । प्राकृतिक रूप से भी न सदैव मिलन ही स्थिर रह सकता है न विरह भी । मानव जीवन विरह और मिलन की अनुभूतियों में जीता चला आया है । चाहे दिव्य या आध्यात्मिक प्रेम हो और चाहे लौकिक प्रेम विरह का महत्व सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार किया गया है । सिद्धान्त यह है कि विरह मिलन की और मिलन विरह की भूमिका तैयार करता है । विरह मिलन के क्षणों को भी उदात्त बनाता है और उनको तीव्रता प्रदान करता है । रहस्यवादियों ने विरह का सम्बन्ध साधना से माना है जिसका साध्य

मिलन है । इसीलिये कबीर ने विरह को "सुलतान"* कहा है । मीरा ने विरह को प्रधानता होने के कारण प्रेम को दुखमय माना है - "प्रेम करे दुख होय" सूरदास ने भो स्पष्ट घोषित किया है - "प्रेम करे काहू सुख न लहो ।" वास्तव में प्रेम विरह में जागृत और जीवित रहता है मिलन उसकी सुषुप्तावस्था है ।[2] एक पारखी का तो यह कहना है कि विरह दो प्रेमियों का अन्तर्मिलन है और संयोग बाह्य । विरह ही प्रेम को व्यापक बनाता है : सर्वत्र प्रिय की छवि भर उठती है । तात्पर्य यह है कि विरह प्रेम व्यापार में स्वाभाविक भी है और संयोग का उपसारक भी । विरह की अनेक स्थितियों का वर्णन शास्त्रों में किया गया है । सिने गीतों में प्राय: सभी स्थितियां मिल जाती है उनमें से कुछ की ओर आगे संकेत किया गया है ।

3.2.1 विरह : कारण और रूप : ....

जब प्रेम अत्यंत तीव्र हो जाता है तब एक क्षण का वियोग भी असह्य हो जाता है । परिस्थिति ऐसी भी बन सकती है कि चिर-विरह की शिला के नीचे प्रेम का अंकुर दबा रह जाये । एक क्षण के विरह से लेकर दीर्घ विरह तक की इनकी अनेक कोटियां घटित होती है ।

---

* विरहा बुरहा मत कहो विरहा है सुलतान
जा घर विरह न संचरे वाघर है श्मशान ‖विरह को अंग‖
‖कबीर ग्रन्थावली‖

2 विरह प्रेम की जागृत गति है
और सुषुप्ति मिलन है ‖रामनरेश त्रिपाठी‖

प्रतीक्षा :   ..   ..

प्रतीक्षा वास्तव में आशा का क्षण होता है । विरह के क्षणों में यह आशा बनी रहती है कि एक न एक दिन प्रिय आयेगा प्रिय के आने में यदि विलम्ब अधिक होता जाता है तो आशा का यह तंतु क्षीना भी हो जाता है । राह देखते देखते कबीर की आँखें धुँधियां गयी थी फिर भी आशा का तन्तु टूटता नहीं है इसीलिये प्रतीक्षा का महत्व एक कवि ने बतलाया है - "जो मज़ा इन्तजार में देखा वो न वस्ले यार में" किन्तु प्रतीक्षा के क्षण भावाकुलता के कारण युगों को नापने की क्षमता रखते हैं । मिलने की आशा के समाप्त होने पर प्रतीक्षा विरह नैराश्य विरह में बदल जाता है । एक सिने गीत प्रमाण के रूप में प्रस्तुत है :-

पूछो न कैसे मैने रैन बिताई
इक पल जैसे एक युग बीता
युग बीते मोहे नींद न आई । *2

एक और गीत में प्रतीक्षा को परीक्षा का नाम दिया गया जो प्रतीक्षा के क्षणों में अधीर हो जाता है उसके प्रेम की गहराई संदिग्ध हो जाती है :

ये इन्तजार भी एक इम्तहान होता है
इसी से इश्क कीं शोला जवान होता है
ये इन्तजार सलामत हो और तू आयें ।3

---

* आँखड़िया झाला पड्या पंथ निहारि निहारि ।
(कबीर ग्रन्थावली - विरह का अंग)
2 मेरी सूरत तेरी आँखें : शैलेन्द्र
3 बहू बेगम : साहिर

प्रतीक्षा में व्याप्त आशा का सूत्र कभी विश्वास में बदल जाता है । "आयेगा आनेवाला" (महल) और यह विश्वास कभी यथार्थ में बदल जाता है और कभी अविश्वास है । इस प्रकार प्रतीक्षा के क्षण ड्रामा के क्षण होते हैं । प्रतीक्षा में प्रेम को उद्दीप्त करने की शक्ति विद्यमान रहती है ।

<u>प्रवास</u> : ....

जब प्रेमी प्रेमिका एक दूसरे से दूर चले जाते हैं तो वह पल बड़ी कठिनाई से व्यतीत होते हैं । जिन्दगी जैसे रूक जाती है और एक-एक पल एक एक युग के समान बीतता है । प्रवासी प्रियतम की प्रतीक्षा में प्रेयसी जल बिन मछली का तरह तड़पती है ।

प्रवासी प्रेमी अथवा प्रेमी प्रेमिका एक दूसरे की स्मृति में विरहातुर हो जाते हैं । प्रकृति के माध्यम से वे अपनी प्रिय की अनुभूति या उसे अपने विरही मन का संदेश देना चाहते हैं । कालिदास का मेघदूत भी इसी आशय का काव्य है ।

आये तुम याद मुझे, ब गाने लगी हर धड़कन
खुशबू लाई पवन, महका हुआ चंदन .... *

प्रवास को प्रस्थान करते हुए प्रिय से प्रेयसी प्रकृति के माध्यम से न जाने की प्रार्थना करती है ।

ओ बसंती पवन पागल
न जा रे न जा रे रोके कोई
बनके पत्थर हम पड़े थे, सूनी सूनी राह में

---

* मिली : योगेश

जी उठे हम, जब से तेरी बाह आई बाह में
छीनकर नैनों से काजल न जारे न जा रोको कोई ...

प्रेमी युगल को प्रवास के समय एक दूसरे से संबंधित हर वस्तु हर क्षण और हर भंगिमा की स्मृति आने लगती है उसका मन एक विचित्र असमंजस से व्यथित हो उठता है ।

मैंने ये सोचकर उसके दर से उठा था
कि वो रोक लेगी मना लेगी मुझको
हवाओं में लहराता उड़ता था आंचल
दामन पकड़कर बिठा लेगी मुझको
कदम ऐसे अंदाज से उठ रहे थे
कि आवाज देकर बुला लेगी मुझको ....[2]

प्रवासी नायिका को नायक प्रकृति के माध्यम से लौटकर आने का आवाहन करता है ।

ये वादियां ये फिजाएं बुला रही हैं तुम्हें
खामोशियों की अदाएं बुला रही हैं तुम्हें
तुम्हारी जुल्फों से खुशबू की भीख लेने को
झुकी झुकी सी घटाएं बुला रही हैं तुम्हें .....[3]

प्रिय का प्रवास और प्रिय के मिलन के विरह की रात बहुत लम्बी दिखाई पड़ती है ।

---

*	गंगा जमुना	:	हसरत
2	हकीकत	:	कैफी आजमी
3	आज और कल	:	साहिर

शबे इंतजार आखिर कभी होगी मुख्तसर भी
ये चिराग बुझ रहे हैं मेरे साथ जलते जलते ..

प्रवास विरह सुदीर्घ विरह होता है । प्रवासी प्रियतम को सिने गीतों में प्राय: परदेसी नाम से पुकारा गया है "बरसात" में एक प्रवासी के प्रेम की पीड़ा का सौन्दर्य है । यह पीड़ा अनंत होती है । इसको ध्यान में रखकर एक उपदेशात्मक गीत की रचना की गई :

परदेसियों से ना अँखियाँ मिलाना
परदेसियों को है इक दिन जाना

सन्देह और अपबोध : ....

सन्देह वह कीटाणु है जो प्रेम की लहलही लता में लगकर उसे नष्ट कर सकता है । प्रेम के इतिहास में सन्देह की रूढ़ी को अनेक प्रकार से लक्षित किया जा सकता है । सन्देह किसी के मन में हो सकता है । संताप वहाँ जगाता है जबकि सन्देह झूठा हो और झूठे सन्देह के कारण प्रेम बाधित हो जाये । सन्देह के ऐसे अवसर पटकथाओं में प्राय: अनुस्यूत रहते हैं । अंत में सन्देह का निवारण भी होता है और पश्चाताप भी । वास्तव में यह कथा की रूढ़ि है किन्तु इसकी कुछ झलकियाँ गीतों में भी देखी जा सकती है । प्रेमी को कुछ से कुछ समझ लेने का दुख बड़ा कष्ट होता है -

---

* पाकीजा : कैफी आज़मी

अपना वो ग़म नहीं है
ग़म है तो इतना ग़म
वो बेवफा न समझे,
हम से बदल न जायें । *

कभी कभी प्रिय के प्रति "वफा" दिखाने का अवसर भी प्रेमी को नहीं मिलता और उसे विद्रोह की यातना झेलनी पड़ती है :

हम बेवफा हर्गिज़ न थे, पर हम वफा कर न सके
हमको मिली उसकी सजा, हम जो ख़ता कर न सके ।[2]

एक और गीत में शक या सन्देह के प्रति सावधान रहने के लिये कहा गया है क्योंकि यह शक या सन्देह अत्यंत घातक हो सकता है । इसका यह परिणाम भी हो सकता है जीवन भर प्रेमी पश्चाताप की आग में जलता रहे । इससे वह पीड़ा भी हो सकती है जो निरपराध को दण्ड देने से होती है । इसी बात की ओर एक सिने गीत संकेत करता है ।

शक धोखा है, क्या भरोसा है सुनो
दोस्तों शक दोस्ती का दुश्मन है
अपने दिल में इसे घर बनाने न दो
कल तड़पना पड़े प्यार में जिनको
रोक लो रूठकर उनको जाने ।[3]

शक और संदेह के प्रति यह चेतावनी अत्यन्त व्यवहारिक है । इसके

---

*	सेहरा	:	हसरत
2	शालीमार	:	आनंद बख्शी
3	आपकी क़सम	:	आनंद बख्शी

द्वारा दुखांत चलचित्रों को सुखांत बनाया जा सकता है ।

चारों ओर फैले हुए विश्वासघाती वातावरण को शकील ने देखा है और एक गीत में दिखाया है :

ना आदमी का कोई भरोसा
ना दोस्ती का कोई ठिकाना
वफा के बदले है बेवफाई
अजब जमाना है ये ज़माना । *

आदर्शवाद भी विश्वासघात की आग में तपकर यास्वर होता है ।

प्रेयसी प्रियतम के विश्वासघात को सहकर भी उसकी विश्वासपात्र बनी रहने में अपनी सफलता समझती है - प्रियतम के दिए हुए सारे दुख सारी पीड़ाएँ उसे प्रिय लगने लगती है और वह इसके लिए अपने भाग्य को ही उत्तरदायी ठहराती है :

है इसी में प्यार की आबरू
वो जफा करें मैं वफा करूँ
मुझे गम भी उनका अजीज है
ये उनकी दी हुई चीज़ है
यही गम है अब मेरी जिन्दगी
इसे कैसे दिल से जुदा करूं ....[2]

विश्वासघात जन्य विरह जीवन की नग्नसत्य को प्रकट करता है । मनुष्य का मानवता से विश्वास उठ जाता है ।

---

*	आदमी	:	शकील
2	अनपढ़	:	राजा मेहंदी अली ख

दिल ऐसा किसी ने मेरा तोड़ा
बरबादी की तरफ ऐसा मोड़ा
एक भले मानुष को
अमानुष बना के छोड़ा .. ..*

सबसे अधिक आघात उस समय पहुँचता है जब कोई अपना ही विश्वासघात करता है ।

हमसे मत पूछो कैसे मंदिर टूटा सपनों का
लोगों की बात नहीं है ये किस्सा है अपनों का
कोई दुश्मन ठेस लगाये तो मन मीत जिया बहलाये
मन मीत जो घाव लगाये उसे कौन मिटाये ...[2]

आग जलाती है नारी छल करती है पुरूष का फिर भी आग से नाता है और नारी से अटूट सम्बन्ध :

मुझे क्या हुआ था इक बेवफा से
हाय मुझे क्यों प्यार आया
तेरी बेवफाई पे हंसे जग सारा
गली गली गुजरे जिधर से ....[3]

जिनके प्रति "वफा" की गई या जिनपर विश्वास किया गया उनकी बेवफाई जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है :

---

*	अमानुष	:	इंदीवर
2	अमर प्रेम	:	आनंद बक्षी
3	अनामिका	:	मजरूह

वफा जिनसे की बेवफा हो गये
वो वादे मुहब्बत के क्या हो गये
जो कहते हैं हमसे सदा है तुम्हारे
जमाने में सबसे जिन्हें हम थे प्यारे
x x x x x
वो जिनके लिये हम फना हो गये । *

तात्पर्य यह है कि विश्वासघात का सूत्र जितना पटकथा को मोड़ देता है उतना ही वह सिने गीत की आत्मा में भी रमता है । यह पटकथा का वह भाग है जो अपनी प्रगीतात्मक परिणति के लिये मचल उठता है :

ईर्ष्या : .. ..

प्रेम एकाधिकार चाहता है किसी अन्य से किसी प्रकार का सम्बन्ध भी प्रेम को ईर्ष्या से भर देता है । ईर्ष्या प्रेम की गहराई की भी द्योतक है :

चोरी चोरी चुपके चुपके, तेरे मेरे बिन
इस कमरे में और कौन है ......[2]

नायिका अपनी अन्य सहेलियों से ईर्ष्या करती है :

चम्पा जाए चमेली जाए,
मैं कैसे रह जाऊंगी
पांच आने की पांच जलेबी
बीच सड़क पे खाऊंगी ।. [3]

---

* प्यार का सागर : प्रेम धवन 2 बुलेट : आनंद
3 चोर मचाए शोर : रवीन्द्र जैन

प्रेमिका के पर-पुरूष से विवाह हो जाने की कल्पना मात्र से ईर्ष्या जलता हुआ नायक :

घिर के आएगी घटाए फिर से सावन की
तुम तो बाहों में रहोगी अपने साजन की
गले हम गम को लगाएंगे आज के बाद .... *

पर स्त्री- पर-पुरूष सम्बन्ध क या प्रशंसा प्रेमी-हृदय के मन में ईर्ष्या का संचार करते हैं । यह ईर्ष्या कभी कभी बहुत घातक सिद्ध होती है ।

3.2.2 <u>विरह दशाये :</u> ....

<u>स्मृति :</u> स्मृति एक महत्त्वपूर्ण विरह-दशा है । इस विरह दशा में सुखमय मिलन के क्षण अंकित होते हैं । संयोगात्मक अतीत स्मृति के द्वारा ही वियोगात्मक वर्तमान के साथ समन्वित होता है । संयोग के क्षणों में जो कुछ घटित हो चुका है वह सब स्मृति-पथ में एक कारवां की तरह गतिशील हो उठता है । कभी "यादों की बारात ही चल पड़ती है । एक ऐसा घनीभूत क्षण भी आता कि याद के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहता ।[2]

विरह के क्षणों में मिलन की यादें पीड़ा को बढ़ा देती है ।

---

* हवस : सावन कुमार

2 यादें नाम का सुनिलदत्त निर्मित एक चलचित्र था जिसमें यादें ही अपनी विविध भंगिमाओं के साथ उपस्थित था ।

अतीत का सुख व दुख के दिनों में याद बनकर जब आता है तो दुख बढ़ता ही चला जाता है । प्रसाद जी ने स्पष्ट कहा :-

चिंता करता हूँ मैं जितनी
उस अतीत की उस सुख को
उतनी ही अनन्तमय बनती
जाती रेखायें दुख की । *

एक सिने गीत में भी प्रेमिका के घुंघरू की छम छम स्मृति में आकर गम बन जाती है :

घुंघरू की छम छम
बन गयी दिल का गम
डूब गया दिल यादों में
उभरी बेरंग लगी रे ....[2]

हृदय-स्मृतियों के पारावार में डूबकर मन न जाने कितने बिम्बों से भर जाता है । किन्तु सदा ही स्मृति दुख का कारण नहीं होती । यादों से प्रिय जब सजीव हो उठता है तो जैसे हृदय-के स्पन्दन जीवंत हो जाते हैं सारा वातावरण जैसे महक उठता है -

आये तुम याद मुझे
गाने लगी हर धड़कन
खुशबू लाई पवन
महका हुआ चंदन ।[3]

---

*	कामायनी	:	चिंता सर्ग
2	महबूबा	:	आनंद बक्षी
3	मिली	:	योगेश

दूसरी ओर स्मृतियाँ दर्द भी संचार की चेतना में कर देती है । रात रात नींद नहीं आती और चेतना के पास गम का ताना बन जाता है :

आपकी याद आती रही रातभर
चश्मे नम मुस्कुराती रही रातभर
रात भर दर्द की शमा जलती रही
गम की लौ थरथराती रही रातभर । *

यादों के अवरत सिल सिले से तंग आकर मानवीकरण की शैली में गीतकार कह उठता है :

भूली हुई यादों मुझे इतना न सताओ
अब चैन से रहने दो मेरे पास न आओ ।[2]

किंतु मनोवैज्ञानिक ढंग जिन्हें हम भूलना चाहे वो अक्सर याद आते ही है । स्मृतियों को भुलाने की जितनी भी चेष्टा की जाती है यादें उतनी ही तरोताजा बनती है । यादें जीवन का सम्बल भी बन जाती है । अपने वियुक्त प्रेमी को सम्बोधित करके नायक नायिका से और नायिका नायक से एक सिने गीत में कह उठते हैं :

याद आ रही है, तेरी याद आ रही है
याद आने से, तेरे जाने से
जान जा रही है ।[3]

---

*	मखदूम	:	गमन 2 संजोग : राजेन्द्र कृष्ण
234	दिल एक मंदिर	:	हसरत जयपुरी 3 लवस्टोरी
	पारसमणि	:	असद भोपाली

तात्पर्य यह है कि याद वियोग के क्षणों में एक विवशता बन जाती है - "याद न जाये बीते दिनों की" * जब याद आती है तो आती ही जाती है, सिलसिला बढ़ता ही जाता है वो जब याद आये, बहुत याद आये ।[2]

यही यादें स्वप्न बनती है और स्वप्नों की फिर याद बनती है - क्रम अखण्ड रहता है :

जिन्हें हम भूलना चाहे वो अक्सर याद आते है [3]

समय बीतता रहता है जीवन के क्षण आते जाते रहते हैं पर निष्ठुर प्रेमी नहीं आता - आती है उसकी याद ।[4] ऋतुयें आकर यादों को आकर जगा देती हैं - वही बरसात, वही रिमझिम थी जब कभी हम मिलते थे । किन्तु न जाने अब वह सावन क्यों नहीं आता ।[5] आश्चर्य यह है कि यादों में प्रियतम हृदय के बहुत समीप आ जाता है फिर भी दूर रहता है - दिल के मेरे पास हो इतनी,
फिर भी हो कितनी दूर ।[6]

---

* दिल एक मंदिर : हसरत जयपुरी 2 पारसमणि : असद भोपाली

3 आबरू : जी.एल. रावल

4. दिल ढल जाये, हाय रात न जाये
तू तो न आये तेरी याद सताये - गाइड : शैलेन्द्र

5 ऐसी ही रिमझिम, ऐसी फुहारें
ऐसी ही थी बरसात
खुद से जुदा और जग से पराये, हम दोनों थे साथ
फिर से वो सावन अब क्यों न आये

6 मन/ - वही - गाइड : शैलेन्द्र

प्रेमोद्वेग : ....

प्रेम मूल प्रवृत्ति का एक शक्तिशाली झोंका है - अपरिहार्य और अपरिहृत । इससे मानवीय चेतना खिल उठती है । भावना के उद्रेक से मन उद्विग्न हो उठता है और रोम रोम इस संवेग की शीतल दाहकता का अनुभव करता है । प्रेम के साहित्य में उद्वेग की भी बहुविध अभिव्यक्ति हुई है । उद्वेग से विक्षुब्ध प्रेमी-प्रेमिका अनुभूति की गहराइयों में उतरते चले जाते हैं और कसक भी उतनी ही उत्पीड़क होती जाती है । इन स्थितियों का कैसे वर्णन करें एक उलझन बढ़ती जाती है । मन के उद्वेग का केवल अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नहीं :

क्या कहूं कहा नहीं जाये
बिन कहे भी रहा नहीं जाये
रात रात भर करवटें बदलूं
दिल का दर्द सहा नहीं जाये । *

....

एक तड़प बिजली की नस नस कौंध जाती है
तेरी खातिर मैं तड़पायी
तरसे बिजली सावन को ।[2]

उद्विग्न प्रेमी कह उठता है - हम तुम से जुदा होकर, मर जायेंगे रो रोकर ।[3]

---

* हरियाली और रास्ता : हसरत
2 संगम : शैलेन्द्र
3 एक सपेरा एक लुटेरा : असद भोपाली

अनिद्रा :   ..   ..   ..

विरह का सबसे अधिक प्रभाव नींद पर पड़ता है । निद्रा चेतना का विश्राम है और अतृप्त प्रेम इस विश्राम को चर जाता है । जब सारी दुनिया सो जाती है तब प्रेमी तारे गिनता है । जब प्रेम की तीव्रता का वर्णन किया जाता है तो अनिद्रा का वर्णन एक रूढ़ के रूप में ग्रथित होता है । सिने गीतों में भी इस रूढ़ि का पालन भी विविध प्रकार से हुआ है । कभी प्रिय की प्रतीक्षा में नींद हराम हो जाती है :

रात रात भर जाग जाग कर इंतजार करते हैं
हम तुम से प्यार करते हैं ... *

रात की घटिकाओं के साथ-साथ विरही मन की पीड़ा भी बढ़ती है :

दर्दे दिल बढ़ता जाए
सारी सारी रात नींद न आय ...[2]

चांदनी और तारों भरी सुन्दर रात प्रेमी-मन को मिलन के लिये चंचल बना देती है :

आज की रात बड़ी शोख बड़ी नटखट है
आज तो तेरे बिना नींद नहीं आएगी ....[3]

मकदूम मोहनुद्दिन शाहर ने अनिद्रा पर बहुत ही सुन्दर

---

*	प्यार का सागर	:	प्रेम धवन
2	बुनियाद	:	आनंद बक्षी
3	नई उमर की नई फसल	:	नीरज

गजल लिखी थी जिसे उनकी मृत्युपरान्त सिने गीत के रूप में ढाला गया -

आपकी याद आती रही रात भर
चश्में नम मुस्कुराती रही रात भर
रात भर दर्द की शमा जलती रही
ग़म की लौ थर थराती रही, रात भर ..... *

अनिद्रा केवल एक पक्षीय न ही होती । यदि निष्ठुरता प्रेमी चला भी जाये तो वियुक्त होकर उसकी नींद भी उड़ जाती है ।

ओ मेरी महबूबा, महबूबा, महबूबा
तुझे जाना है तो जा
तेरी मर्जी मेरा क्या,
तेरी चाहत मेरा चैन चुराएगी
लेकिन तुझको भी तो नींद न आएगी ।[2]

इसी तरह के अनेक अनिद्रा रोग के चित्र सिने गीतों में मिलते हैं । यह अनिद्रा संयोग एवं वियोग दोनों से ही उत्पन्न हो सकती है ।

इसमें प्रेमी अथवा प्रेमिका गीत के माध्यम से अपनी भावनाओं अनुभूतियों एवं प्रेम की तीव्रता की प्रस्तुति करती है ।

आनंद बक्षी ने "आपकी कसम" फिल्म में इसी प्रकार का एक युगल गीत लिखा है :

---

*	मकदूम	:	गमन
2	धर्मवीर	:	आनंद बक्षी

नायिका : करवटें बदलते रहे सारी रात हम
आपकी कसम

नायक : गम न करो दिन जुदाई के बहुत है कम
आपकी कसम

इस गीत में नायिका अपने अनिद्रा रोग की बात नायक को बताती है और ~~नायिका~~ नायक उसे दिलासा देता है कि उसका यह अनिद्रा रोग शीघ्र ही समाप्त होनेवाला है, उनके मिलन पर्व पर ।

<u>नैराश्य :</u> . .. .

प्रेम की सबसे दुखद स्थिति वह है जब मिलन की सारी आशायें चुक जाती है । यह स्थिति अत्यन्त आत्मघाती प्रकृति की भी हो जाती है । प्रकाश की उस किरण को भी अंधकार ग्रस लेता है जो जीवन की सबेल होती है । निराश प्रेमी और प्रेम संसार में सबसे अधिक सहानुभूति के पात्र होते हैं । चलचित्र में यह स्थिति भी अपनी विशद् प्रगीतात्मक परिणति लेती है । कभी आंसू उमड़कर सब कुछ को डुबोने का संकल्प लेते दिखाई पड़ते हैं : दिल टूट जाता है : दिल के हजार टुकड़े हो जाते : सारे रास्ते बंद हो जाते हैं : न दिशा न दृष्टि ।

किसका रस्ता देखे
ए दिल ए सौदाई
मीलों है खामोशी
बरसों है तन्हाई । *

---

* जोशीला :

विस्तारोन्मुख अहं नियति की चट्टानों से टकराकर, सीमित होता होता, शून्य बनने की प्रक्रिया में आ जाता है । एक दुर्भेद्य अकेलापन जीवन पर छा जाता है और अकेला ज़िंदगी अनिश्चित दूरियों में भटक जाती है :

जिन रातों की भोर नहीं है
आज ऐसी ही रात आई
ग़म के बोझ से डूब गया दिल
सागर की है गहराई । *

और

"दृग देख जहाँ तक पाते हैं
गम का सागर लहराता है" 2

निराश प्रेमी को लगता है कि प्यार के जो क्षण बीत गये उनका लौटकर आना सम्भव नहीं है ।

ये हवायें कभी चुपचाप चली जायेंगी
लौटकर फिर कभी गुलशन में नहीं आयेंगी ।3

निराशा आशा का ही प्रतिरोधी रूप है । किसी मित्र से ये आशा की जाती है कि वह अपने मित्र के डगमगाते पैरों को सहारा देगा और जब वह सहारा नहीं देता तो वही आशा एक अप्रत्याशित स्थिति में बदल जाती है जिसे निराशा कहते हैं । यहाँ विश्वास और यथार्थ का द्वन्द होता है । एक गीत की पंक्तियाँ द्रष्टव्य है :

---

*	दूर गगन की छाँव में	:	शैलेन्द्र
2	मधु कलश	:	बच्चन
3	हिमालय की गोद में	:	कमर जलालाबादी

कदम ऐसे अंदाज से उठ रहे थे
कि आवाज देकर बुला लेगी मुझको
मगर उसने रोका न उसने बुलाया
ना दामन ही पकड़ा न मुझसे बिठाया । *

सबसे बड़ी बात यह है कि निराशा ने जो विषाद प्रेमी को दिया था उसको कोई सुननेवाला नहीं । उसको सुनकर कोई सहानुभूति प्रकट करनेवाला नहीं जो देश कभी अपना लगता था वो पराया हो गया : जो लोग अपने लगते थे वे पराये हो गये :

हम तो चले परदेस हम परदेसी हो गये
छूटा अपना देश कि हम परदेसी हो गये ।[2]

तथा

ये दुनिया हाल दिले बेकरार का
बुझता हुआ चिराग हूँ अपने मज़ार का
ऐ काश भूल जाऊं पर भूलता नहीं
किस धूम से उठा था, जनाजा बहार का ।[3]

हृदय भग्नता : ....

शारीरिक संरचना में हृदय तंत्री दिल का सर्वाधिक महत्व है । शरीर को सारी रक्त शिराएं हृदय से जुड़ी होती है और उनमें रक्त संचार हृदय के अनवरत स्पंदन से होता है । हृदय के स्पन्दन का विराम "मृत्यु" है । इसलिए विश्व साहित्य में हृदय को शरीर का

---

* हकीकत : कैफी आज़मी
2 सरगम
3 हीर रांझा : कैफी आज़मी

सर्वाधिक संवेदनशील स्थल कहा गया है और भावनाओं की अभिव्यक्ति आदि के लिए हृदय को आधार माना गया है । जीवन विज्ञान के अनुसार भी मानव की बुद्धि स्थित-भाव का प्रभाव तुरन्त ही रक्त-चाप पर पड़ता है । हृदय के लिए विभिन्न शब्द पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त किए गए हैं । जैसे - छाती, सीना, दिल, मन, जिया, कलेजा, हिया, जिगर आदि ।

किसी भी गहरे मानसिक आघात या झटके के कारण हृदय अपनी सामान्य स्पंदन गति से चलना छोड़कर भावनात्मक आवेगों के अनुसार तीव्र एवं मन्द गति धारण कर लेता है जिसके फलस्वरूप मनुष्य की सहज चेतना असंतुलित हो जाती है । इसे ही भग्न हृदय अवस्था अथवा "दिल टूटना" कहते हैं ।

दिल मेरा टूट गया
आस मेरी टूट गयी ..... *

नर-नारी प्रेम में भी इस अवस्था की संभावना रहती है । जब प्रेमी युगल में से कोई एक प्रेम की असफलता या किसी परिवेशजन्य बाधा के कारण गहरे मानसिक आघात को वरण कर लेता है तो भग्न हृदय का प्रभाव स्पष्ट दिखता है :

दो दिल टूटे, दो दिल हारे
दुनियावालों, सदके तुम्हारे ....[2]

---

* दिल भी तेरा हम भी तेरे : शमीम जयपुरी

2 हीर रांझा

दिल की कोमलता को कवि गीतकार कांच के खिलौने की संज्ञा देता है :

दिल का खिलौना हाए टूट गया
कोई लुटेरा आके लूट गया .... *

प्रेमिका दूसरे की हो गई । प्रेमी का हृदय भग्न हो गया । किसी मोड़ पर फिर मुलाकात हुई तो प्रेमी का भग्न हृदय बिलख उठा :

हमको खबर भी होने नहीं दी
किस मोड़ पर ला के दिल तूने तोड़ा ....[2]

कैफी आजमी में दिल टूटने के स्थान पर "दिल की रगें टूटने" का चमत्कारिक प्रयोग किया है । वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी धमनियों एवं शिराओं की असामान्य स्थिति से ही दिल का दौरा पड़ता है ।

आज सोचा तो आंसू भर आए
मुद्दते हो गई मुस्कराए
दिल की नाजुक रगें टूटती है
याद इतना भी कोई न आए ....[3]

....

जिस दिल में बसा था प्यार तेरा
उस दिल को कभी का तोड़ दिया ...[4]

---

* गूंज उठी शहनाई : भरत व्यास   2 दुल्हा-दुल्हन : इंदीवर
3 हंसते जख्म : कैफी आज़मी   4 सहेली : इंदीवर

आज की आधुनिका प्रेम में दिल के टूटने से भयभीत होकर स्वयं ही दिल तोड़ना पसंद करती है :

दिल तोड़ के सड़क पर फेंक दूंगी
    पर तुझे नहीं दूंगी
हाँ दिल तोड़ के, मोड़ के
    सड़क पे फेंक दूंगी .... *

वास्तव में आज के स्वार्थान्ध वातावरण में दिल का तोड़ना एक खेल हो गया है :

खिलौना मा जानकर तुम तो
मेरा दिल तोड़ जाते हो ।[2]

दिल के तोड़ने के बाद भी यदि प्रेमी का मन दिल तोड़ने वाले को दुआ दे तो यह प्रेम की आदर्शवादी परिणति कही जायेगी । इसकी परम्परा साठ पूर्व गीतों से हो चली आ रही थी - मेरा दिल तोड़नेवाले मेरे दिल की दुआ लेना और इसकी गूंज एक साठोत्तर गीत में मिलती है । दिल तोड़नेवाले तुझे दिल ढूंढ रहा है और दिल तोड़ने की घटना को भाग्य के सिर मढ़ दिया जाता है

वो तेरे प्यार का गम
 इक बहाना था सनम
  अपनी किस्मत ही कुछ ऐसी थी
   कि दिल टूट गया -[3]

---

* दुनिया का मेला : आनंद बक्षी
2 खिलौना : आनंद बक्षी
3 माई लव : आनंद बक्षी

पर-पीड़न : ....

हृदय के टूटने से स्वयं को तो पीड़ा होती ही है। किन्तु साथ-साथ भग्न-हृदय के अन्तराल से अभिशाप निकलते हैं जो दूसरे पक्ष के विनाश को उद्यत रहते हैं।

मेरी भीगी भीगी सी पलकों में
रह गए जैसे मेरे सपने बिखर के
जले तन तेरा भी किसी के मिलन को
अनामिका तू भी तरसे ..... *

अपने प्रिय को किसी अन्य के साथ देखने पर नायक विद्रोही हो उठता है और सम्पूर्ण विश्व को नष्ट करने की सोचता है :

ये रात है नजारों की
गैरों के साथ यारों की
जो है बिगाड़ दूं सारी
दुनिया उजाड़ दूं सारी ....[2]

नायिका के विश्वास घात से क्षुब्ध नायक उसे कोसता है कि उसने वैभवपूर्ण जीवन के लिये उससे बेवफाई की है :

तेरी वफा की लाश पे ला मैं ही डाल दूं
रेशम का ये कफन जो मिला है रकीब से ....[3]

---

* अनामिका : मजरूह
2 रोटी कपड़ा और मकान : संतोष आनंद
3 इक महल हो सपनों का : साहिर

विलाप और रुदन : ....

नैराश्य का रास्ता आंसुओं से भीगा हुआ होता है । निराशा के कारण ही अंधकार और आंसुओं का संगम होता है । टूटे हुए हृदय से जो आह उठती है वह विलाप बन कर चतुर्दिक छा जाती है । असफल प्रेम के यह आवश्यक उपकरण है । उदाहरण के लिये कुछ गीत लिये जा सकते हैं । रफी ने रोने की दास्तानि का इस प्रकार बयान किया है :

गम जुदाई का सहा जाता नहीं
आपके बिन अब रहा जाता नहीं
प्यार में क्या क्या गवां कर रो दिये । *

प्रेम की जो कहानी लिखी गई थी वह आंसुओं ने धो दी :

मेरा जीवन कोरा कागज
कोरा ही रह गया
जो लिखा था
आंसुओं के साथ बह गया ।[2]

अरमानों की एक बस्ती दिल में बस जाती है । नैराश्य उस बस्ती को उजाड़ देता है सारे अरमान चूर होकर आंसुओं की धारा में बह जाते हैं :

दिल के अरमां आंसुओं में बह गये
हम वफा करके भी तनहा रह गये ।[3]

---

*	मेरा साया	:	राजा मेहंदी अली खां
2	कोरा कागज	:	एम.जी.हसरत 3. निकाह

विलाप : ....

बिछुड़ना भी नियति है । असहाय प्रेमी प्रिय की स्मृति में विलाप कर उठता है । उसके जीवन में एकाकीपन के अँधियारे बादल मंडराने लगते हैं :

कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन
बीते हुए दिन वो मेरे प्यारे पल छिन
आज ढूँढ कहाँ खो गए जाने किधर .... *

जब विश्व में मनुष्य को कहीं से एक व्यक्ति का भी अपनत्व प्राप्त नहीं होता तो वह अनायास ही विलाप कर उठता है ।

कोई होता जिसको अपना हम लेते यारों
पास नहीं तो दूर ही होता लेकिन कोई होता मेरा अपना[2]

आत्मपीड़न और पश्चाताप : ... .

प्रेम तो अपने हृदय की वस्तु है किन्तु ये जिसके प्रति उत्पन्न हुआ है वो तो अपनी सीमाओं के परे हैं । उसे हासिल करना तूफानों और आँधियों के बीच दीपक जलाना है और पानी में आग लगाने जैसा है ।

किन्तु जब प्रेम का उन्माद बढ़ जाता है तो ना तो किसी से कुछ कह सकते है ना इस विरह की पीड़ा को सह सकते हैं । आत्मपीड़न ही इसका एक मात्र रास्ता रह जाता है ।

---

* दूर गगन की छाव में : शैलेन्द्र

2 मेरे अपने : गुलजार

है दर्द ऐसा कि सहना मुश्किल
दुनियावालों से कहना मुश्किल ...*

नायक नायिका की याद में स्वयं को समाप्त कर देना चाहता है ।

तेरी याद दिल से भुलाने चला हूँ
वे खुद अपनी हस्ती मिटाने चला हूँ ....[2]

..   ..   ..

तू न रही तेरी निशानी क्यूं रहे
ये जवानी क्यूं रहे जिन्दगानी क्यूं रहे
जा जा जा जा मुझे न आज याद आ ....[3]

..   ..   ..

लोग काहे मुझे जहर नहीं देते
जख्मी जिया फिरे कहाँ कहाँ लेके
अब मैं बादल, मैं धूप, मैं दीवाना
मुझको लागे ना कुछ भी सुहाना ...[4]

अवसर बीत जाने पर मनुष्य अपनी की गई गलतियों पर पश्चाताप करता है । वह यह महसूस करता है कि उसने जो कुछ किया वह ठीक नहीं था और वह अपनी स्वीकारोक्ति से अपने मन के बोझ को

---

*	दिल अपना और प्रीत पराई	: शैलेन्द्र
2	हरियाली और रास्ता	: शैलेन्द्र
3	प्रेम नगर	: आनंद बक्षी
4	नाच उठा संसार	: हसरत

हल्का करना चाहता है :

मैं अपने आप से घबरा गया हूँ
मुझे ऐ जिन्दगी दीवाना कर दें .... *

.. .. ..

कभी खुद पे कभी हालात पे रोना आया
बात निकली तो हरेक बात पे रोना आया ....[2]

नायक ने नायिका को समझने की गलती की । वह बड़ी निष्ठुर एवं पाषाण हृदयी निकली इसका उसे पश्चाताप है ।

पत्थर के सनम तुझे हमने मुहब्बत का खुदा जाना
बड़ी भूल हुई अरे हमने ये क्या समझा ये क्या जाना..[3]

3.3 <u>प्रेम रोग</u> : ....

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रेम कुण्ठित होकर एक रोग भी बन जाता है । इस रोग से तन और मन दोनों ही व्याकुल रहते हैं । यह रोग प्राय: अचिकित्सय होता है । एक ऐसा दर्द चेतना को कचोटता रहता है जो अनाम होता है और जिसको दूसरा कोई जान नहीं पाता -

"हेरी मैं तो प्रेम दीवानी मेरा दर्द न जाने कोय"

प्रेम रोग-ग्रस्त मीरा और राधा को साहित्य में उभारा गया है ।

---

* निर्बंदिया : राजेन्द्र कृष्ण
2 हम दोनों : साहिर 3 पत्थर के सनम :मजरूह
*

प्रेम का रोग बड़ा विचित्र है । जब ये लग जाता है तो स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती है । मन कभी रोता है कभी हँसता है और कभी सांसारिक वस्तुओं से उचाट होने लगता है । रातों को नींद नहीं आती । सिने गीतों में बताए गए इन लक्षणों से समाज में प्रेम रोगियों की पहचान की जा सकती है :

प्रेम का रोग बड़ा बुरा
माका नका माका नका
ऐसा मेरे को मेरी माँ ने कहा
माका नका माका नका ..... *

वयःसंधि की अवस्था में तो इस प्रेम रोग की दशा बहुत ही गंभीर होती है । यहाँ प्रेम-पीड़ित नायिका कुछ भी करने को कृत संकल्प हो जाती है :

छोटी सी उमर में है लग गया रोग
कहते हैं लोग मैं मर जाऊँगी
और मरने से पहले कुछ करने से पहले
लेके तेरा नाम तुझे बदनाम मैं कर जाऊँगी ...[2]

इस रोग को कोई दवा या वैद्य ठीक नहीं कर सकता क्योंकि यह तो प्रेम का रोग है और इस रोग का निदान प्रिय ही कर सकता है ।

नहीं वैद्य का है काम दिल पुकारे तेरा नाम
आँखें करती है सलाम, पलकें देती है पयाम ...[3]

---

* दस नम्बरी : मजरूह 2 दो राग : आनंद बक्षी

3 दुनिया : आनंद बक्षी

यह प्रेम रोग एक नैसर्गिक अनुभूति है और हर मनुष्य को जीवन में कभी न कभी होता ही है । अलबत्ता इसका प्रभाव अति तीव्र, तीव्र अथवा मध्यम होता है । फिल्मी गीतों में अधिकतर अति तीव्र प्रेम रोग की कल्पना की जाती रही है :

मैं हूँ प्रेम रोगी मेरी दवा तो कराओ
जाओ जाओ किसी वैद्य को बुलाओ । *

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :

1. यद्यपि संयोग के गीतों की संख्या विरह के गीतों से अधिक दिखलाई पड़ती है तथापि अभिव्यंजना शिल्प उसकी प्रविधियाँ और उक्ति वैभव विरह के गीतों में ही अधिक लक्षित होती है ।

2. विरह के गीतों का चमत्कार प्राय: गज़लों में या उर्दू की शायरी में ही अधिक प्रकट हुआ है । इस दृष्टि से गीत गायक रफी का नाम भी उल्लेखनीय है ।

3. संयोग के गीतों एवं विरह के गीतों की वस्तु प्राय: पुरानी रूढ़ियों को लेकर ही चली है जहाँ तहाँ कुछ आधुनिक संस्पर्श दिखाई पड़ता है - आटे में नमक ।

4. सन् 1960 से पहले के विरह गीतों में आह, रुदन, विलाप आदि नपोले और लिजलिजे तत्व गीतों में अधिक आते थे किन्तु साठोत्तर विरह गीतों में रोने धोने के स्थान पर विचार और संघर्ष आत्मघात के स्थान पर जिजीविषा और तत्व अधिक दिखाई पड़ते हैं ।

---

* प्रेम रोग :

5. प्रेम सम्बन्धी दार्शनिक उक्तियाँ और आदर्श आज के प्रेम गीतों में भी मिलते हैं किन्तु पुराने सिने गीतों की अपेक्षा आज के सिने गीतों में मनोवैज्ञानिक तत्व अपेक्षाकृत अधिक मिलने लगे हैं ।

.. ..

अध्याय : 2 (ब)

रूप-सौन्दर्य

0. <u>प्रास्ताविक</u> : ....

सौन्दर्य अयसकान्त [मेगनेट] है : यह सचेतन मन को आकर्षित करता है । सौन्दर्य की स्थिति बाह्य है इसीलिये सौन्दर्य इन्द्रिय-ग्राह्य होता है । इन्द्रियों के माध्यम से ही सौन्दर्य की आकृतियाँ चेतना के पटल पर बिंबित होती है । विचारकों ने अंतसौन्दर्य की कल्पना की है-गुण-प्रतिभा, सच्चरित्रता और शील आन्तरिक सौन्दर्य के उपादान कहे जा सकते हैं इनके संयोग से मानव-व्यवहार सुन्दर बनता है और उस मानव व्यवहार को भी हम इन्द्रियों से ही ग्रहण करते हैं । विशेष रूप से सौन्दर्य की चर्चा प्रेम के सम्बन्ध में उठती है । प्रेम भी मानव मानव के बीच गुरुत्वाकर्षण का ही प्रतीक है । सौन्दर्य प्रेम को प्रेरित और उत्तेजित करता है । सौन्दर्य के चेतना पर अंकित बिम्ब काम और प्रेम की प्रवृत्ति से संदर्भित होते हैं ।

काम और प्रेम से संदर्भित सौन्दर्य प्राय: व्यक्तिपरक हो जाता है और बाह्य सौन्दर्य वस्तुपरक कहा जा सकता है । अन्तत: इन दोनों की विभाजक रेखा विलीन हो जाती है ।

मनुष्य स्वभावत: सौन्दर्योपासक होता है जहाँ वह मन मन्दिर में प्रेम देवता की पूजा करता है वहाँ सौन्दर्य को भी देवत्व प्रदान करता है । सौन्दर्य और प्रेम के परस्पर सम्बन्ध को साहित्य में अनेक प्रकार से निरूपित किया जाता है । काव्यशास्त्रीय भाषा में सौन्दर्य उद्दीपक होता है ।

सिने जगत में सौन्दर्य की एकान्त प्रतिष्ठा है । सिने गीत जहाँ प्रेम की अनुभूति से उच्छलित रहते हैं वहाँ सौन्दर्य किरणों से भी प्रदीप्त होते हैं । सौन्दर्य का वर्णन प्रेम के वर्णन की अपेक्षा अधिक अलंकृत और चमत्कारपूर्ण होता है । जहाँ चलचित्र का निर्माता सौन्दर्य के बाह्य उपकरणों का संचय और प्रदर्शन चलचित्र में करता है वहाँ वह उन सौन्दर्य उपकरणों को कथा और गीत की परिधियों में बाँधनेवाले सिने साहित्य का भी स्वागत करता है । जहाँ दर्शक की इन्द्रियाँ इन्द्रियग्राह्यी सौन्दर्य से परितृप्त होती है वहाँ उसका मानस गीतान्तरित सौन्दर्य की कल्पनाओं और अनुभूतियों से उल्लासित हो जाता है । प्रस्तुत अध्याय में सौन्दर्य की गीतबद्ध छवियों का आकलन अभिष्ट है ।

सिने गीतों में मुख्यत: नारी के सौन्दर्य को उतारा गया है किन्तु नारी सौन्दर्य और प्रेम की भूमिका के रूप में प्राकृतिक सौन्दर्य पर भी उसकी दृष्टि गई है । इस अध्याय में नारी सौन्दर्य के साथ-साथ प्राकृतिक सौन्दर्य को भी विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है ।

1. नारी सौन्दर्य : .. .. ..

नारी सौन्दर्य के तीन स्तर निर्धारित किये जाते हैं : प्राकृतिक अंग सौन्दर्य, श्रृंगार-प्रसाधन जन्य सौन्दर्य तथा अंगभंगिमाओं और चेष्टाओं का सौन्दर्य । सिने गीतों का अधिकांश इस सौन्दर्य प्रोदभाषित है ।

1.1 प्राकृतिक सौन्दर्य : .. .. ..

1.1.1 यौवनागमन :

यौवनागमन से नायिका की पलकों में यौवन की मादकता की लाली के डोरे उसकी बरौनियों में प्रेम के आंसू और अधरों पर प्रेम के प्याले छलकने लगते हैं । उसके शरीर से यौवन की कनक किरणें फूटने लगती है और बाल्यावस्था की चंचल गाथायें समाप्त हो जाती है ।

मिट्ठू मियां । आज मैं जवान हो गई हूं
गुल से गुलिस्तान हो गई हूं । *

यौवनागमन के कारण नायिका के हृदय में प्रेम की मादक कल्पनायें जागृत होती है । रात की मादकता उसके यौवन के उन्मादकारी असंयत प्रवाह को और भी उद्दीप्त कर देती है । वह प्रेमी रूपी सघन वृक्ष के नीचे बैठकर अपना सारा संताप खो देना चाहती है ।

---

* मैं सुन्दर हूं

अंगड़ाई लेके प्रेम जवानी जागी रे
रात सुहानी जागी रे,
चुपके होठों से
एक कहानी जागी रे । *

सिने गीतों में नव यौवना नायिका के फूल सदृश्य यौवन के खिलने तथा उसके हृदय में उठनेवाली अनंत कामनाओं का चित्रण किया गया है ।

सोला बरस की बाली उमर को सलाम
ऐ प्यार तेरी पहली नज़र को सलाम ।[2]

यौवनागमन के कारण नायिका अपार छवियुक्ता - यौवन सम्पन्ना हो जाती है । वह दर्पण में बार-बार अपनी छवि देखना चाहती है । क्योंकि उसके जीवन में यौवन धन आ जाने से उसके अंगों में प्रकम्पन, चितवन में चंचलता, कटाक्ष में लक्ष्य और हृदय में प्रेमांकुर उत्पन्न हो जाता है । यह सोलह से सत्रह तक की अवस्था बड़ी दुविधापूर्ण होती है तथा इस समय लड़के लड़कियाँ विवेक से अधिक भावनाओं से परिचालित होते हैं ।

तू कितने बरस की, मैं सोलह बरस की
तू कितने बरस का, मैं सतरा बरस का
मिल न जाये नैना, एक दो बरस अभी दूर रहना
कुछ हो गया तो फिर न कहना ।[3]

---

* ज्योति : आनंद बक्षी
2 एक दूजे के लिये : आनंद बक्षी
3 कर्ज : आनंद बक्षी

यौवनागमन सम्बन्धी गीत पर्याप्त संख्या में मिलते हैं और उनमें व्यंजना की भंगिमाये तरह-तरह की है । कुछ शाश्वत सुन्दर वस्तुओं की कल्पना की गई है उनमें एक वस्तु वय-संधि का वर्णन है संसार के सभी श्रृंगारिक कवियों ने किया है । यौवन जिन उभारो और गोलाइयों को लेकर आता है और शरीर को एक नयी शैली में तराश देता है वह सौन्दर्य का ही पर्याय है । इस सौन्दर्य का वर्णन ही सिने गीतों में प्रमुख है ।

1.1.2 ऐन्द्रिय बोध :

यौवन जिस सौन्दर्य को जन्म देता है उसके ऐन्द्रिय बिम्ब सिने गीतों में खींचे गये हैं । उस सौन्दर्य के ऐन्द्रिय भोग की कामना ही बिम्बों का रूप ग्रहण करती है । जिस्म के स्तर पर सौन्दर्य की आकृतियाँ सम्पर्क की परिस्थिति में उभरने लगती है । यौवन जन्य सौन्दर्य का एक स्पर्श बिंब इस प्रकार बनता है ।

मेरे बाजुओं में आकर तेरा दर्द चैन पाये
तेरे गेसुओं में छुपकर मैं जहाँ के गम भुला दूँ । *

इन पंक्तियों में बाहों और अलकों के प्रभावमूलक बिम्ब निखरा है ।

इसी प्रकार युवती के लाल होठों में जलानेवाले स्पर्श बिंब उदित होता है इसीलिये कल्पना की जाती है "होठों में आग लिये ।"[2]

---

*	दाग	:	साहिर
2	अहसास	:	इन्दीवर

इसी प्रकार नारी के घुंघरूओं का श्रव्य बिम्ब बनता है उस बिंब के साथ प्रेमी का मन एकाकार हो जाता है अर्थात् बिम्ब और प्रेम भावना मिलकर एक सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं ।

घुंघरू की छम छम
बन गयी दिल का गम । *

इसी प्रकार नारी के कुछ अंगों का सौन्दर्य आस्वाद बिम्ब का रूप ग्रहण करता है :

छू लेने दो नाजुक होठों को
कुछ और नहीं है जाम है ये
कुदरत ने जो बख्सा है हमको
वो सबसे हसीं ईनाम है ये ।[2]

दृश्य बिम्बों की तो सबसे अधिक सृष्टि इन बिम्बों में हुई है । एक लक्षणा मूलक दृश्य बिम्ब का उदाहरण यह है :

सूरज की पहली किरण से आशा का सवेरा जागे
चन्दा की किरण से छूकर घनघोर अंधेरा भागे ।[3]

एक अलंकारयुक्त दृश्य बिम्ब इस प्रकार उपस्थित किया गया है :

---

* महबूबा :
2 काजल : साहिर
3 दूर गगन की छांव में : साहिर

जैसे पर्वत पे निगाह रुकती है
जैसे सागर से लहर उठती है
ऐसे तेरे चेहरे पे निगाह रुकती है । *

इसी प्रकार गंध बिम्ब भी उतारे गये गीतकार सांसों की सुगंध को लक्षित करके बिम्ब योजना करता है :

रंगों में तेरा अक्सढला तू न ढल सकी
सांसों की आंच जिस्म की खुशबू ना बन सकी ।[2]

बिम्ब योजना में विपर्यय शिल्प चमत्कारिक होता है । प्रकृतितः जो एक ऐन्द्रिय का विषय होता है उसको बिम्ब विपर्यय द्वारा दूसरी इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य बना दिया जाता है । इस विपर्यय में रूप और सौन्दर्य को पीया जा सकता है और वीणा की झंकारों को छुआ जा सकता है । यह प्रविधि सिने गीतों में बहुत अधिक प्रयुक्त हुई है ।

1.1.3 नैसर्गिक अंग सौन्दर्य : ....

नायिका के अंग प्रत्यंग की आनुपातिक रचना और उनका परस्पर सामंजस्य, आकार उनकी माप आदि कुछ ऐसे तत्व है जो नैसर्गिक कहे जा सकते हैं । इनके विधान में मनुष्य का कृतत्व नहीं रहता । इनका सिने गीतों में पर्याप्त उभार मिलता है । नायिका स्वयं अपने इस अंग विन्यास को प्रकृति की अमानत कहती है :

---

* कुली : आनंद बक्षी
2 सिकन्दर आजम : राजेन्द्र कृष्ण

जुल्फों में सावन की कालीब दरिया
मुखड़े पे फागुन की धूम रे
कुदरत ने दी है मुझे यह अमानत
सब कहतें है जिसको रूप रे । *

इस नैसर्गिक सौन्दर्य को अनेक गीत समर्पित किये गये । यह पद्धति प्राय: नख शिख की परम्परा की है । पुराने श्रृंगारी कवि नख-शिख सौन्दर्य के वर्णन में अपनी पूरी शक्ति लगा देते थे ।

नख शिख सौन्दर्य का अलग अलग वर्णन भी होता है और सारे अंग के सामंजस्य पूर्ण गठन का समवेत प्रभाव भी अंकित किया जाता है । साहिर ने अमानत चलचित्र में पूरे बदन के प्रभाव का उल्लेख किया है :

तेरे बदन में फूलों की गर्मी
शोलों की गर्मी, आंखों में बिजली

सारी काया को कभी है मात्र होने के कारण कंचन [2] कहा गया है और कभी चंदन[3]। शरीर की कोमलता भी सिने गीतों में अनेक अप्रस्तुतों एवं बिम्बों के माध्यम से समाविष्ट हुई है - "रेशमी अंग है मेरा" ।[4]

सारे शरीर में व्याप्त तत्व वर्ण भी है । जहां चांदी सोने

---

* जय पुकार : पुतली बाई
2 तेरी काया कंचन कंचन :[पारस : इन्दीवर]
3 चंदन सा बदन [सरस्वती चन्द्र : इन्दीवर]
4 रामपुर का लक्ष्मण

और चंदन सा बदन कहा गया है वहाँ उसका सांवला रंग भी कम आकर्षक नहीं रहा है । पारिभाषिक रूप से लावण्य सांवले रंग से प्रस्फुटित सौन्दर्य ही है - "हाँ, सांवला रंग है मेरा ।" दूसरी ओर संगमरमर भी वर्ण कल्पना में तैर आता है । कुछ अंगों की कोमलता दोष मानी जाती है । उनको कठोर ही होना चाहिये । इस आभास को समेटते हुए कल्पना की गई ।

संगमरमर की तरह सख्त बदन में तेरे
आ गई है मेरे छू लेने से गर्मी कितनी ।[2]

गीत की यह पंक्ति प्रेमी के स्पर्श के प्रभाव का कथन करके समग्रता उपस्थित करती है ।

दूसरी ओर कोमलता भी कुछ अंगों का प्रमुख गुण है । कोमलता का वर्णन करने में कवियों ने प्राय: अतिशयोक्ति का उपयोग किया है :

पड़ जाय तुम पर धूप तो संवलाये गोरा तन
मखमल पे तुम चलो तो छिल पांव गुलबदन ।[3]

वास्तव में नायिका के अंग प्रत्यंग से रूप के प्रकाश के झरने ही झरते हैं । उसका शरीर दीपों को भी प्रकाश देता है :

तुम आ गये हो, नूर आ गया है
नहीं तो चिरागों से लौ जा रही थी ।[4]

---

* रामपुर का लक्ष्मण
2 वक्त : साहिर
3 एक दिल सौ अफसाना : हसरत
4 आंधी : गुलज़ार

सारे बदन को इन्दीवर ने भी एक साथ देखा है -
"बाँहों में चाँदी का बदन होगा"* इस प्रकार सब समग्र शरीर का बिम्ब प्राकृतिक सौन्दर्य में पहली दृष्टि में उभरता है ।

प्रत्येक अंग का अलग अलग सौन्दर्य अधिक सम्पर्क के साथ-साथ खिलता है । कभी "जुल्फों" में बादल।[2] तैरते मिलते हैं और कभी "जुल्फों में नाग और नागिने नजर आती है ।[3] किसको डसने तू चली जुल्फों के नाग लिये ।[3] इस अप्रस्तुत विधान में बालों की लहरें उनका रंग, उनकी लम्बाई और उनका प्रभाव एक साथ मुखर हुए हैं । कभी यह कल्पना की जाती है कि बादलों की घटायें झुककर नायिका के बालों सुगन्ध की भीख लेने की योजना कर रही है :

तुम्हारी जुल्फों से खुशबू की भीख लेने को
झुकी झुकी सी घटायें बुला रही है तुम्हें । "[4]

कभी लोक भाषा में कहा गया - "जुल्फों में सावन की काली बदरिया ।"[5]

सम्भवत: श्यामल अलक भारतीय दृष्टि के सौन्दर्य के प्रतिमान है किन्तु सिने गीतकार ने सुनहली जुल्फों का सौन्दर्य भी देखा है - "जुल्फों का रंग सुनहला ।"[6]

भीगे हुए अलकों से पानी की गिरती हुई बूंदे भी सिने गीत की कल्पना में सम्मीलित है ।

---

*	अनोखी बात	2	अमानत : साहिर
3	अहसास	4	आज और कल : साहिर
5	पुतली बाई : जयकुमार		
6	काश्मीर की कली :		

निम्न स्थक में वर्षा में भीगती हुई नायिका के केशों से बरसता हुआ पानी नायक के मन में प्रेमांकुर उपजा रहा है ।

हाय वो रेशमी जुल्फों से बरसता पानी
फूल से गालों पे रुकने को तरसता पानी
दिल में तूफान उठाते हुए जजबात की रात । *

नायक नायिका की जुल्फों में आजीवन कैद रहना चाहता है ।

तेरी जुल्फों से जुदाई तो नहीं मांगी थी
कैद मांगी थी रिहाई तो नहीं मांगी थी ।[2]

बालों के बाद सबसे महत्वपूर्ण स्थान आंखों का है । आंखों की विशालता का वर्णन सभी कवि करते आये हैं । विशालता के साथ उनकी श्यामलता भी आकर्षक रही है । आंखों के रंग और उनकी विशालता को एक साथ उल्लेख करते हुए इन्दीवर ने लिखा है :

यह विशाल नयन, जैसे नील गगन
पक्षी की तरह खो जाऊं मैं ।[3]

प्रभाव की दृष्टि से यह भी कहा गया है कि मन का पक्षी मन के नीलाकाश में उड़ रहा है - और ऊंचा । और अंत में उन्हीं में लीन होता जा रहा है । प्रेमी के मन को नरगिसी आंखों का सहारा चाहिये - "फिर मुझे नरगिसी आंखों का सहारा दे दे ।[4]

---

* सरस्वती चन्द्र

2 मेरे महबूब : शकील

3 दो दिन

आँखों की लालिमा और मदिरा मादक होती है । लगता है शराब की लालिमा ही आँखों में उमड़ आई है । प्रभाव की दृष्टि से जो इन गुलाबी आँखों को देखता है वह स्वयं एक नशे में झूम उठता है :

गुलाबी आँखें जो तेरी देखी
शराबी ये दिल हो गया । *

आँखों के रंग और आकार के सौन्दर्य का तो बहुविध वर्णन हुआ है ही, आँखों की क्रियाएँ भी गीतकार की कल्पना में आई है -- आँखों का झुकना, बंद होना, अर्ध निमलित होना आदि अनेक क्रियाएँ है इनका प्रभाव भी अभूतपूर्व होता है :

आँखें अगर झुकीं तो मुहब्बत मचल उठे
नजर अगर उठी तो क्यामत मचल उठे । [2]

आँखों के लड़ने की बात भी रूढ़ हो गयी है :-

नयनों नयनों में रण होगा
हो मन जरा धीर धरो ।[3]

मुख वास्तव में कई अंगों का समन्वित रूप है । मुख के गोरे रंग को गीतकार ने इस प्रकार वर्णित किया है :

मुख पर फागुन की धूप रे [4]

---

* दी ट्रेन
2 हसरत : एक दिल सौ अफसाने
3 इन्दीवर : अनोखी रात
4 जयकुमार : पुतलीबाई

धूप जहाँ वर्ण का बिंब प्रस्तुत करती है वहाँ फागुन की धूप कहकर उसके सुहावनेपन को व्यक्त किया गया है । चाँदसा चेहरा कहने की बात तो बहुत पुरानी हो गयी फिर भी गीतकार ने इस अप्रस्तुत का प्रयोग किया है --

ये चाँद सा रोशन चेहरा *

शैलेन्द्र ने कल्पना को कुछ नवीनता देते हुए बिंब विधान इस प्रकार किया है :

फूल बदन मुखड़ा यूं दमके
बादल में ज्यूं बिजली चमके [2]

सारे बदन में मुख की स्थिति को यह कल्पना प्रकट करती है ।

होंठ का सौन्दर्य भी प्रेम व्यापार में एक शक्तिशाली उद्दीपन बन जाता है । इनके लिये कवि युग युग से नयी नयी कल्पना करते आये हैं । नया नया अप्रस्तुत इनको अर्पित किया जाता रहा है । कभी यह मदिरा से छलकते प्यालों के रुप में देखे गये हैं और कभी इनको प्रकृति का मूल्यवान उपहार कहकर कवि ने अपने दत्तरदायित्व को पूरा किया गया है ।

छू लेने दो नाजुक होठों को
कुछ और नहीं है जाम है ये
कुदरत ने जो हमको बख्शा है
वह सबसे बड़ा इनाम है ये -[3]

---

* कश्मीर की कली 3 साहिर : काजल

2 एक फूल चार काँटे : शैलेन्द्र

सौन्दर्य के पुराने प्रतिमान के अनुसार श्रेष्ठ नायिका की सासों में महक संचारित रहती है । प्रसाद जी ने भी सुरभित सांस का* उल्लेख किया है । सिने गीतकारों ने भी सासों की सुगंध का वर्णन किया है -

तेरी सासें महकी महकी [2]

ऊपर कुछ अंगों के सौन्दर्य वर्णन की प्रवृत्तियों को ओर संकेत किया गया है । वक्ष, कटि, अंगुली आदि ऐसे अंग है जिनपर सिनेगीत बरस पडे हैं उन सभी का निरूपण अनावश्यक विस्तार ही होगा । प्रवृत्ति परिचय के उपर्युक्त संकेत पर्याप्त है ।

जिस प्रकार एक रहस्यवादी कवि स्थूल मांसल सौन्दर्य से आकर्षित होकर मूल सौन्दर्याधिष्ठान की कल्पना करता है और यह भी जिज्ञासा करता है कि सौन्दर्य किसने बनाया है, उसी स्वर में सिने गीतकार कहता है :

तारीफ करूं क्या उसकी
जिसने तुम्हें बनाया । [3]

---

* अब न कपोलों पर छाया सी
पडती मुख की सुरभित भाप
- कामायनी : चिंता

2 इन्दीवर : पारस

3 काश्मीर की कली

1.1.4 शृंगार प्रसाधनजन्य सान्दय :

नारी सौन्दर्य प्रसाधनों के प्रयोग से नायक के मन में आकर्षण उत्पन्न करती है यही कारण है कि संसार के सभी देशों में प्रति वर्ष करोड़ों रुपए इन सौन्दर्य प्रसाधनों पर व्यय होते हैं । प्राचीन काल में भी सौन्दर्य प्रसाधनों का चलन था । बिन्दिया, आभूषण, पुष्प, वेश-विन्यास केश-विन्यास, महावर मेहंदी आदि का प्रयोग होता था और आजकल लेवेण्डर, लिपिस्टिक, रूज, स्नो, नाखुन पालिश और टैलकम आदि का प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है । हिन्दी सिने-गीतों में वेश-विन्यास, केश विन्यास, काजल, पुष्प शृंगार, मुख-शृंगार, मेहंदी, कुम-कुम आदि का प्रयोग मिलता है ।

काजल : कजरा लगा के, नजरे घुमा के
सीने पे वार करे,
गोरी तेरे नयना है जादू भरे *

बिन्दिया :

बिन्दिया का प्रयोग भी सिने-गीतकारों ने बड़ी जागरूकता से किया है ।

तेरी बिन्दिया रे हाय हाय
तेरे माथे बसे यूं जैसे चन्दा तारा
जिया में चमके कभी तो ऐसे कोई अंगारा 2

---

* बेदर्द जमाना क्या जाने : भरत व्यास
2 अभिमान : मजरूह

नायक को नायिका की माथे की बिन्दिया में बिजली की चमक दिखाई दे पड़ती है । कवि बिहारी ने भी एक दोहे में लिखा है कि जैसे किसी अंक के सामने बिन्दिया (शून्य) लगाने से वह अंक दस गुणा बढ़ जाता है उसी प्रकार नायिका के माथे पर बिन्दिया लगाने से उसका सौन्दर्य भी दस गुणा बढ़ जाता है ।

केश-विन्यास : ... ...

नायिका की कमर पर नागिन-सी बल खाती हुई चोटी उसके कान में हिलता हुआ झुमका नायक के संयम को तोड़ देता है ।

कान में झुमका, चाल में ठुमका
कमर पे चोटी लटके
हो गया दिल का पुर्जा-पुर्जा लगे पचासो झटके *

सिन्दूर : ... ...

सिन्दूर विवाहित हिन्दू नारी के सुहाग का प्रतीक है । इसे भी सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में प्रयोग किया जाता है । ~~इसके भी सौन्दर्य प्रसाधन~~ सिन्दूरी रंग के साथ साथ कई अलग अलग रंगों के सिन्दूरों को भी विभिन्न प्रान्तों में मांग में भरने की प्रथा है ।

मैंने सिन्दूर से मांग अपनी भरी,
रूप सैंया के कारण सजाया [2]

---

* सावन भादों : वर्मा मलिक
2 साहब बीबी और गुलाम

नायिका सान्दर्य के प्रसाधनों को व्यर्थ समझती है, उसके अनुसार प्रेम को किसी बाह्य साधन की आवश्यकता नहीं है । प्रेम के पूजन के लिये प्यार का कुम-कुम बाहों की माला और शरीर रूपी शिवाला ही बहुत है ।

प्यारा तेरा कुम-कुम है, बाहें तेरी माला
प्राण मेरा पुजारी, तन है शिवाला । *

वेश-विन्यास : ....

नायिका का वेश-विन्यास उसके अंग प्रत्यंगों में लुभावने ढंग से उजागर करता है । बदलते हुए फैशन और नयी-नयी वेश-भूषाओं से नायिका नायक को अपनी ओर आकर्षित करती है ।

ढीला ढीला कुर्ता है, पाजामा तंग तंग है,
अपना अदा है तेरी, अपना ही रंग है ।[2]

आँचल : ....

नायक को नायिका को आंचल से रोष है । क्योंकि वह नायिका का चेहरा छुपा लेता है ।

ये जो आंचल है, शिकवा है हमारा
क्यों छिपाता है चेहरा ये तुम्हारा ।[3]

---

* अर्चना : नीरज 2 पतंगा : इन्दीवर

3 मेहबूब की मेहंदी : आनंद बक्षी

प्रसाधन की क्रिया के साथ दर्पण का अटूट सम्बन्ध है । जब दर्पण में नायिका के अनिन्दय सौन्दर्य का प्रतिबिंब पडता है तो दर्पण भी अप्रभावित नहीं रहता

दर्पण वस्तु का प्रतिबिंब दर्शाता है । जहाँ दर्पण सौन्दर्य प्रसाधन के रूप आता है और नायक के मन में यह ईर्ष्या भर देता है कि उसकी नायिका का सम्पूर्ण लावण्य वह अपने में समा रखा है वहो दूसरी ओर दार्शनिकता में हृदय के, आत्मा के प्रतिबिंब के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

आ तू जो कहे बन जाऊंगी वही
छू के मेरा साया, दर्पण भी ललचाया
पर न तुझे प्यार भाया .... *

नायिका की सुन्दरता को देखकर आइना भी सिहर उठा :

क्या कमाल था कि देखा आइना सिहर उठा
इक तरफ जमीन और आस्मा ऊपर उठा ..[2]

1.1.5 अंग-भंगिमाओं का सौन्दर्य : ... ..

मांसल सौन्दर्य एवं प्रसाधन प्रदत्त सौन्दर्य से इतर नारी सौन्दर्य का एक सशक्त तीसरा आयाम भी है और वह है नारी की - भंगिमाओं का चुम्बकीय सौन्दर्य जिसे उर्दू में " नाजो-अंदाज " कहा गया है । सिने-गीतों में, भंगिमाओं, चेष्टाओं, हाव-भावों आदि का वर्णन भी पर्याप्त मिलता है ।

---

* नीलिमा : मजरूह
2 नई उमर की नई फसल : नीरज

मुग्ध नायक को नायिका की हर भंगिमा में सौन्दर्य दिखाई पड़ता है :

मुस्कुराने की अदा भी कातिल
सर झुकाने की अदा भी कातिल
इश्क की बाहों में आते आते
लौट जाने की अदा भी कातिल *

उसे नायिका की आँखों में सात गगन, उसके कंठ में सप्तसुरों की मिठास और चाल में ताल की थाप सुनाई पड़ती है ।

सात गगन तेरी आँखों में
सात सुरों का रस बातों में
ताल में डूबी चाल को तेरी
जल तरंगों का ढंग मिला [2]

नारी की चंचल चितवन और रहस्यपूर्ण मुस्कान से तो वैरागी भी डोल उठते हैं । नायक तो इंसान है ।

मेरा बैरागी मन डोल उठा
देखी जो अदा तेरी मस्ताना ।[3]

नायिका की मुस्कुराहट मिलन, झिझकना, बहकना, मचलना पलकों का उठाना गिराना सारे हाव-भाव एवं मुद्राएँ देखकर नायक उद्भूत रस में डूब जाता है ।

---

*	हीर रांझा	:	कैफी आजमी
2	मानवता	:	इन्दीवर
3	सरस्वती चन्द्र	:	इन्दीवर

कभी झुक के मिलना, कभी खुद झिझकना
कभी रास्तों में बहकना, मचलना
यह पलकों की चिलमन उठा के गिराना
गिराकर उठाना गजब हो गया । *

नव यौवना नायिका की चाल की कोमलता के आगे फूलों की डाली भी आकर्षक नहीं लगती है उसके रूप लावण्य के आगे चन्द्रमा एवं सूर्य भी भिखारी से लगते हैं ।

तौबा ये मतवाली चाल
झुक जाए फूलों की डाल
चांद और सूरज आकर मांगे
तुझसे रंगे जमाल .. ....[2]

नायिका को नायक उसकी कोमलता के कारण धीरे-धीरे चलने का परामर्श देता है कि कहीं उसकी कमर झटके से लचक न जायें

धीरे-धीरे चलो मोरी बांकी हिरनिया
कमर न लचके हाय संजनिया ....[3]

नायिका के सौन्दर्य में डूबे नायक को नायिका में एक सम्पूर्ण उपवन की झलक मिलती है ।

---

* आरजू : हसरत
2 पत्थर के सनम : मजरूह
3 जौहर महमूद इन गोवा : इंदीवर

हम अकेले है शहनाइयाँ चुप है
अंगना बोलता है,
तु जो चलती है छोटे से आँगन में
चमन सा डोलता है ... *

नायक को नायिका से गत वर्षा ऋतु में मिलन स्मरण हो आता है और उसकी लज्जा एवं समर्पण मन को बेचैन कर देते हैं ।

डर से बिजली के अचानक वो लिपटना उसका
और फिर शर्म से बल खा के सिमटना उसका
भीगे आँचल को दबाकर जो निचोड़ा उसने
दिल पे जलता हुआ एक तीरसा छोड़ा उसने [2]

प्रेमिका का रूठना प्रेमी को मृत्यु जैसी यातना देता है और उसकी मुस्कुराहट एवं समर्पण जीवन में विद्युत तरंगों को संचारित करता है ।

तुम रूठा ना करो मेरी जाँ मेरी जान निकल जाती है
तुम हंसती रहती है तो इक बिजली सी चमक जाती है [3]

सुन्दरता का कौन पागल नहीं है जहाँ भी अति सुन्दर नव-यौवना आ जाये कितने ही रास्ते चलते एकदम ठहर जाते हैं ।

वही पे मेले लग जाएं
तु देखे जरा चल के ...[4]

---

* वापस : मजरूह 2 बरसात की रात : साहिर

3 जब प्यार किसी से होता है : हसरत

4 सावन भादो : वर्मा मलिक

२. प्रकृति का सौन्दर्य : .. .. ..

प्रकृति मनुष्य की आदिम सहचर्य है जहाँ मनुष्य ने प्रकृति का निरीक्षण किया है वहाँ उसके साथ वह साहचर्य का अनुभव भी करता रहा है । प्रकृति मानवीय प्रवृत्तियों को दिशा भी प्रदान करती रही है । प्रेम आदि व्यापारों के लिये प्रकृति प्रेरक भी रही है और उनके लिये उद्दीपन सामग्री भी लिये हुए खड़ी है साहित्य में जड़ प्रकृति में चेतन प्राण सत्ता का आरोपण भी किया गया है और प्रकृति से अभिव्यक्ति के उपकरण भी ग्रहण किये गये हैं । साहित्य के कुछ आन्दोलन तो प्रकृति से घनिष्ठ रूप से जुड़े रहे हैं जैसे पश्चिम का रोमांस वाद हिन्दी का "छायावाद" आदि । यह आन्दोलन प्रकृति [illegible] को सचेतन आन्दोलन के रूप में देखते आये हैं । जिसने गीतों में यद्यपि नारी सौन्दर्य से प्रकृति निस्तेज हो जाती है फिर भी किसी ने किसी रूप में प्रकृति गीतों में उतर ही आई है । प्रकृति का प्रयोग इन रूपों में हुआ है ।

1. प्रकृति के रम्य रूप के प्रति आकर्षण
2. प्रकृति के धर्म में जीवन दृष्टि
3. प्रकृति के माध्यम से प्रणय विरह की अनुभूति की अभिव्यक्ति ।
4. प्रकृति और प्रिया की द्वन्द
5. प्रकृति का मानवीकरण
6. प्राकृतिक उपमानों एवं प्रतीकों का प्रयोग

प्रकृतिक के रम्य रूप के प्रति आकर्षण : .. ..

नित्य नवीन प्रकृति की अनुपम सुन्दरता कवियों के हृदय को सदैव आकर्षित करती रहती है । विभिन्न ऋतुएं एवं उनसे जुड़ी हुई

कल्पना का चित्रण फिल्मी गीतों में किये गये हैं ।

रंग बसंती संगी बसंती छा गया
मस्ताना मौसम आ गया
धरती का है आंचल पीला
झूमे अम्बर नीला नीला
सब रंगों से हैं रंगीला... *

श्रावण मास का आगमन किसान के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसकी आगामी फसल वर्षा पर ही आधारित है ।

आयो रे आयो रे सावन आयो रे
सच हुए मेहनत के सपने
के दुखड़े दूर हुए अपने
किया धरती ने सोला सिंगार
आज फिर सावन आयो रे ...[2]

<u>प्रकृति के माध्यम से जीवन दृष्टि :</u> ....

कवियों एवं लेखकों के प्रकृति के व्यापार के माध्यम से मानव जीवन चक्र की तुलना की है और उस प्रकृति चक्र में ही जीवन दृष्टि देखने का प्रयत्न भी :

क्या धरती क्या सूरज चंदा
जग मोह माया का एक फंदा ...[3]

---

*	राजा और रंक	:	आनंद
2	बंधन	:	इंदीवर
3	मनचली	:	आनंद बक्षी

इस विश्व रूपी सरिता के दो किनारे सुख-दुख है और मानव बहती हुई जल की धारा है पता नहीं इसे कब सुख मिले कब दु:ख बादल से जैसे बरसी बूंद सरिता में बहकर सागर में जा मिलती है पुन: बादल बन जाती है इसी तरह मनुष्य भी जन्म और मृत्यु के चक्र में चलता है ।

संसार है एक नदिया, दुख सुख दो किनारे है
ना जाने कहाँ जाए हम, बहते धारे हैं
धरती पे अम्बर की, आँखों से बरसती है
एक रोज यही बूंद, फिर बादल बनती है
इस बनने बिगड़ने के, दस्तूर में सारे है ..... *

गुलाब जैसे सुन्दर पुष्पों के साथ जिस तरह पीड़ा पहुँचाने वाले काँटे है उसी तरह दुखों के बीच सुख सदैव उपस्थित रहेगा ।

जो भी दे दे मालिक तू कर ले कबूल
कभी कभी काटों में भी खिलते हैं फूल
वहाँ देर भले है अंधेर नहीं
घबरा के यूं गिला मत कीजे
देखें दुख कब तक भरम के ये चोर
ढलेगी ये रात प्यारे फिर होगी भोर....[2]

प्रकृति के माध्यम से प्रणय विरह की अनुभूति :

साहित्य में प्रकृति के माध्यम से प्रणय एवं विरह की अनुभूति की परम्परा रही है । छायावादी सम्पूर्ण काव्य इसी पर आधारित

---

* रफ्तार : आनंद बक्षी 2 कन्यादान : नीरज

है । सिने गीतकारों ने भी इसका सुन्दर प्रयोग किया है ।

लिखे जो खत तुझे वो तेरी याद में
हजारों रंग के नजारे बन गये
सवेरा जब हुआ तो फूल खिल गये
जो रात आई तो सितारे बन गये .... *

प्रिय अपनी प्रेयसी के सुन्दर नेत्रों में किरणों का ओजस्व उसके शरीर सौष्ठव में सुबह का ताजापन देखता है । वह यह समझता है कि यह नियति चक्र उसकी प्रेयसी के इर्द गिर्द घूम रहा है

नैनों में है तेरे जैसे किरणों का बसेरा
बिखरा तेरा यौवन जैसे बिखरा हो सवेरा
सूरज तेरे दर्शन को हर दिन आये जाए
मोती जैसा रंग अंग में रस का सागर लहराये ...[2]

नायक को नायिका से यह शिकायत है कि वह सम्पूर्ण सृष्टि को तो देख रही है किन्तु उसे नहीं ।

सूरज को पहली किरणों को देखा तूने अलसते हुए
रातों में तारों को देखा खो जाते हुए -
यूं किसी न किसी बहाने, तूने देखा सब संसार
एक बदनसीब हूं मैं मुझे नहीं देखा एक बार....[3]

प्रकृति के उपादानों में उत्कृष्ट प्रेम को परिभाषित करने की कल्पना नायक कर रहा है ।

---

*	आंसू और मुस्कान	:	इंदीवर	2	- वही
3	उपासना	:	इंदीवर		

मेरा प्रेम हिमालय से ऊंचा
सागर से गहरा प्यार मेरा
अपना कर दे एक बार मुझे
होगा मुझ पर उपकार तेरा.... *

<u>प्रकृति और प्रिया का द्वन्द :</u> .. .. ..

ईश्वर की प्रकृति की सुन्दरता अनुपम है रंग-रंग के पुष्प, चन्द्रमा-सितारे, सागर सब बड़े मनमोहक है किन्तु नायक को नायिका की सुन्दरता के आगे यह सब फीका लगता है ।

मैने पूछा चांद से के देखा है कहीं
मेरे यार सा हंसी, चांद ने कहा
चांदनी की कसम, नहीं, नहीं.....[2]

नायक प्रकृति के व्यापार को नायिकाश्रित बतलाता है । इस तरह उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करता है ।

कोई फूल न खिलता, ये कली भी न होती
जिंदगी भी न होती, अगर तू न होती
न होता उजाला और यह रात भी न होती
कोई बात हो न होती, अगर तू न होती ....[3]

महर्षि वात्सायायन ने स्त्री को प्रसन्न करने के लिए जिन कलाओं के बारे में, लिखा है उनमें यह भी एक है - नायिका की सुन्दरता की प्रशंसा ।

---

* पुजारिन : मदन 2 अब्दुला : आनंद
3 पैसे की गुड़िया : वर्मा मलिक

तेरी बिखरी जुल्फें देख देख यह मस्त घटा शरमाई
तेरा रूप जो देख झूम झूम ली बिजली ने अंगड़ाई
काले बाल गोरे रूप जैसे साये में हो धूप
तुझे देख जिया भरमाया ही गया .... *

<u>प्रकृति का मानवीकरण :</u> ....

प्रकृति की छाया को नायिका के रूप में देखा गया है ।

गोरे तन से चमके बिजुरिया
आग न लग जाए .....[2]

.. ..

राहों में, जीवन की राहों में
दो खिले हैं फूल, फूल मुस्कुरा के
कौन सा फूल चुरा के
रख लूँ मन में सजा के .....[3]

.. .. ..

बरखा रानी जरा जम के बरसो
मेरा दिलबर जा ना पाए झूमकर बरसो....[4]

.. .. ..

तू सूरज मैं सूरजमुखी हूँ पिया
न देखूँ तुझे तो न लागे जिया
तेरे रंग में रंगी तेरे दिल की कली...[5]

---

* जोहर महमूद इन गोवा : कमर जलालाबादी 2 मेरा नाम जोकर :
3 रजनीगंधा : योगेश 4 सबक : सावनकुमार 5 हिमालय की गोद में : हसरत / इंदीवर

प्राकृतिक उपमानों एवं प्रतीकों का प्रयोग : . . . . . .

सिने गीतों में प्रकृति से सम्बन्धित बिम्बों अलंकारों एवं प्रतीकों का प्रयोग किया गया है ।

बिम्ब :

लहराये तेरा आँचल सावन के फूलों जैसा
दिल मेरा ले गया है ये तेरा रूप गोरी
सरसों के फूलों जैसा ...... *

प्रतीक :

चाहे कोई मुझे जंगली कहे, कहने दो जो कहता रहे
हम प्यार के तूफानों में घिरे हम क्या करें
मेरे सिने में भी दिल है मेरे भी कुछ अरमान
मुझे पत्थर तो न समझो मैं हूँ आखिर एक इन्सान...[2]

जंगली असभ्यता का प्रतीक है और पत्थर हृदय-हीनता का

प्रतीक :

अब कोई गुलशन ना उजड़े अब वतन आजाद है
रूह गंगा की हिमालय की बदन आज़ाद है
खेतियाँ सोना उगाये, वादियाँ मोती लुटायें
आज गौतम की जमीं तुलसी का बन आज़ाद है ।[3]

सोना उगाना अच्छी फसल का प्रतीक है ।

---

* राजा और रंक : आनंद बक्षी 3 मुझे जीने दो
2 जंगली : हसरत जयपुरी साहिर

सागर :

साहित्य में अनन्त काल से सागर की उपमायें दी जाती है रही हैं । सागर की विराटता उसकी गहराई एवं उसकी लहरें सदैव कवि हृदय को आलोकित करती रही हैं ।

लाख गहरा हो, सागर तो क्या
प्यार से कुछ भी गहरा नहीं
दिल की दीवानी हर मौज पर
आसमानों का पहरा नहीं .... *

प्रकृति का अनवरत चक्र घूम रहा है । पंचतत्व से बना शरीर पुनः पंचतत्व में मिल जाता है । समुद्र से उठता हुआ वाष्प उसका मेघ वर्षा और सरिता रूप और अंततः सागर में समा जाना इसी चक्र की कड़ी है ।

सागर की ओर ढले, नदिया घूंघट खोले
भंवरा भी कलियों के आगे पीछे डोले
फासले कम हुए प्यार हो गया ....[2]

पशु-जगत :

अनेक सिने गीतों में पशु-पक्षी आदि का प्रयोग गीत को प्रभावपूर्ण बनाने एवं शैली में नवीनता एवं सजीवता उत्पन्न करने के लिये किया गया है । नायिका की वेदना को बुलबुल के उपमान में रखा गया है ।

---

* क्रान्ति : संतोष आनंद

2 बीवी और बीवी :

बाबुल तेरे बागां दी मैं बुलबुल
तुझे कौन सा गीत सुनाऊं
मैं रोऊ या मुस्काऊ ... *

निम्न गीत में नायक का बुलबुल की तरह मस्त गाना व्याकरण की दृष्टि से दोषपूर्ण हो सकता है किन्तु उसके हृदय की पीड़ा को अवश्य चिन्हित करता है ।

तू हंसती एक गुल की तरह
मैं गाता बुल बुल की तरह ...[2]

भंवरों का प्रयोग अधिकतर ऐसे नायकों के लिए हुआ है एक नायिका से संतुष्ट नहीं हो पाते । निम्न गीत में भंवरों का अर्थ उनसे है जिनका कोई ठौर ठिकाना नहीं है और भटक रहे हैं ।

ले ले भौरों का प्यार
जिनका कोई नहीं है उनका जीवन संवार
हिम्मत ना हार .....[3]

अन्य उपादान :

नूपुर (पायल, पैजनियां) :

नायिका की पायजेब सदैव नायक के मन में हलचल पैदा कर देती है । नूपुर की ध्वनि नायिका के आगमन एवं उसकी स्वीकृति का

---

*	झील के उस पार	:	आनंद बक्षी
2	सोना चांदी	:	मजरूह
3	फकीरा	:	रविन्द्र जैन

परिचायिका है । मात्र इसकी ध्वनि से नायिका अपनी भावनाएं प्रकट कर सकती है ।

पग घुंघरू बांध मीरा नाची थी
और हम नाचे बिन घुंघरू के .... *

..   ..   ..

छम छम जो बाजी मेरी पायल
दिल दुश्मनों के हुए घायल ...[2]

नृत्य में पायल का विशेष महत्व है । इसकी थाप पर नृत्यांगना अपने विशेष हाव-भाव प्रदर्शित कर सकती है ।

गोरी गोरी पैजनियां
मन के खोले भेद सजनियां...[3]

सिने गीतों में घुंघरू की आवाज को विचार सम्प्रेषण का माध्यम माना गया है ।

जब तक है जां ए जाने जां मैं नाचूंगी .... मैं नाचूंगी

..   ..

टूट जाए ये पायल तो क्या, पांव हो जाए घायल तो क्या
दिल दिया है दिल लिया है, प्यार किया है तो
देना पड़ेगा मुहब्बत का इम्तहां वो .....[4]

---

*	नमक हलाल		
2	अपना देश	:	आनंद
3	महबूबा	:	आनंद
4	शोले	:	आनंद

सिने जगत में सौन्दर्य व्यापार अत्यंत प्रगाढ़ है । सौन्दर्य की जितनी भी छवियाँ हो सकती हैं - मानवीय स्तर पर भी, प्राकृतिक स्तर पर भी उन सभी को सिने गीतकारों ने उकेरा है । प्रेम और सौन्दर्य का जो मूलाधार है मानव-जीवन को अनादि काल से प्राप्त हुआ है उसका अनेक दृष्टियों से रूपायन सिने गीतों में हुआ है । इनके सम्बन्ध में जो रूढ़ियाँ साहित्य में चली आई है उनका प्रयोग ही सिने गीतकारों ने किया है । उनके साथ-साथ कुछ नवीन प्रयोग भी करने की चेष्टा भी की गई । किन्तु नवीन प्रयोग इसलिये सीमित हुए हैं क्योंकि नितान्त नवीन प्रयोगों के साथ सामान्य जनमानस का तादात्म्य होना कठिन होता है । सौन्दर्य सम्बन्धी संस्कृति में संस्कृत, हिन्दी, उर्दू-फारसी के सूत्रों का समन्वय उसके फलक का बोधित विस्तार करता है ।

....

अध्याय : 3

:

:

:

:

:

:

समाज-जीवन

३. समाज और जीवन : ....

०. प्रास्ताविक : संसार के उदय से मनुष्य समूहों - कबीलों एवं कुटुम्बों के रूप में रहा और आज उसने बृहत् मानव समाज का रूप धारण कर लिया है । इस समाज की विविध समस्याएं है और मनुष्य किसी न किसी माध्यम से उसका हल ढूंढता रहा है ।

हिन्दी चलचित्र के गीतों में समाज को यथा सम्भव उसके मूल रूप में दिखाने के स्थान पर उसको आदर्श रूप में प्रतिष्ठित करने की प्रवृत्ति रही है । कुछ साहित्यकार इसे गलत समझते हैं । श्री महेन्द्र मित्तल का मत द्रष्टव्य है -

"सामाजिक समस्याओं का किया गया निदान निराशा ही उत्पन्न करता है । अधिकांशतः वह सब जो वहां दिखाया जाता रहा है

वहाँ अत्याधिक हास्यास्पद है । यह निदान प्रमुख रूप से त्याग, आत्म बलिदान, सेवा भाव तथा विभिन्न अव्यावहारिक आदर्शों की स्थापना के रूप में कुछ इस ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि वह चिह्न भी प्रभावित नहीं करता । इसका मूल कारण यही है कि अधिकांश हिन्दी निर्माताओं का लक्ष्य, इन समस्याओं को यथा-तथ्य और पूर्ण ईमानदारी से प्रस्तुत करके, उनका उचित समाधान ढूंढना न होकर, यौन विकृतियों के प्रदर्शन की ओट में केवल अर्थ-संचय करना ही है ।" *

करीब करीब सभी बुद्धिजीवी यही आरोप सिनेमा पर लगाते देखें गये हैं । इसका कारण हमारी समझ में यह आता है कि सिनेमा देखने वालों का एक बड़ा प्रतिशत शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर पर भी नहीं पहुंच पाया है । आज के समकालीन साहित्य का शतांश भी उनकी समझ के बाहर है । जिस साहित्य को बुद्धि जीवि उत्कृष्ट साहित्य का दर्जा देता है वो कितने लोग समझेंगे ।

हिन्दी निर्माता यह बात अच्छी तरह जानते हैं और यह उनकी मजबूरी है क्योंकि करोड़ों रूपयों की लागत से बनी फिल्म में अगर वो ऐसी चीज प्रस्तुत करेंगे जो लोगों की समझ से ऊपर निकल जाये तो निश्चय ही फिल्म असफल होगा । निर्माता समाज के ही एक अंग है वे समाज की उन बातों को ही फिल्म में स्थान देते हैं जो एक बड़े वर्ग के साथ घट रही है और जिनका प्रस्तुतीकरण सेंसर की कैंची में कटनेवाला नहीं ।

---

* महेन्द्र मित्तल : भारतीय चलचित्र : पृ.314-315

समाज की एक समसामायिक तस्वीर तो इन गीतों में मिलती है साथ-साथ कवि गीतकार ने अपने तरफ से सामाजिक उन्नयन इन गीतों के माध्यम से करने का सराहनीय प्रयास किया है और यह किसी सीमा तक संभव भी हो सका है क्योंकि सिनेमा आज जन-सम्पर्क का सबसे सशक्त माध्यम होने के कारण और सिनेगीत अपनी सरल एवं लोकप्रिय शैली के कारण समाज के एक बड़े वर्ग में गाये और सुने जाते हैं । इसलिये इनके प्रभाव के बारे में कोई शंका नहीं है ।

1.1 राष्ट्र और राष्ट्रीयता : ....

विकास-पथ यद्यपि भारतीय चलचित्र का इतिहास कभी कभी उन्नीसवीं शताब्दी के अंत से मान लिया जाता है तथापि उसकी स्पष्ट प्रतिष्ठा 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही हुई । उन्नीसवी शताब्दी का उत्तरार्ध वह भाग जिसमें आधुनिकता की जड़े भारत में जमीं । इस आधुनिकता का आरम्भ दो प्रमुख भागों से हुआ - सुधारवाद और पुनर्जागरण तथा राष्ट्रवाद । छायावाद से पहले का समग्र साहित्य । छायावाद से पहल का समग्र साहित्य । इन्हीं दो भाव वस्तुओं को लेकर चला है । छायावाद युगतक आते आते सुधारवाद और पुनर्जागरण की शक्तियाँ शिथिल होती गई किन्तु राष्ट्रीय भावना का विकास छायावाद के साथ साथ चलता रहा और उसका चरम बिन्दु आजादी के पहले घटित हुआ । आजादी के बाद या तो यह भाव-वस्तु शिथिल हो गयी थी ~~अथवा~~ रूपान्तरित हो गयी ।

साहित्यिक वस्तु की ये प्रवृत्तियाँ सिने साहित्य में भी परिलक्षित होती है । सिने गीतों ने सुधारवाद और पुनर्जागरण के स्वर भी है और राष्ट्रीय भावना के भी । राष्ट्रीय भावना का आरम्भिक बिन्दु 1857 की जन-क्रान्ति है जिसे अब भारतीय स्वातंत्र्य क

पहला युद्ध कहा जाता है । इस स्वाधीनता संग्राम की संकृति कुछ सिने गीतों में मिल जाती है । इसके लिये "क्रान्ति" नामक चलचित्र को देखा जा सकता है । "क्रान्ति" के गीतों में राष्ट्रीयता की अनुगूंज स्पष्ट है । यह "क्रान्ति" अंग्रेज जाति के विरोध में हुई थी जिन्होंने भारत को गुलाम बनाया था "चना जोर गरम" गीत में संतोषानंद ने इसी भाव की अभिव्यंजना की है :

> मेरा चना खा गये गोरे
> जो गिनती में है थोड़े
> फिर भी मारे हमको कोड़े
> लाखों कोड़े खाये फिर भी निकला न दम-खम
> जना जोर गरम ।

इस गीत में चना भारतीय सम्पत्ति का प्रतीक है जिसको अंग्रेजों ने हड़प लिया और भारत को दरिद्र बना दिया । फिर भी भारत ने साहस नहीं छोड़ा और आजादी के लिये तड़पता रहा ।

1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ उसने 1857 की पराजय के बाद शक्ति संग्रहित की । राष्ट्रीय स्तर पर नेतृत्व विकसित हुआ । कांग्रेस कभी ठंडी रही कभी गरम । गरम दल और नरम दल जैसे विभाग भी सामने आये । इसकी सुनिश्चित बागडोर बीसवी शताब्दी के आरम्भ में गांधीजी के हाथ में आई । गांधीजी देश के राष्ट्रीय नेता बन गये । सिने गीतों से गांधी जी नेतृत्व का राष्ट्रीय चरित्र प्रकट हुआ है । एक पुराना गीत प्रसिद्ध हुआ - "साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल" ।

साठोत्तर गीतों में गान्धी जी के आदर्शों पर अधिक बल मिलता है । उदाहरण के लिये कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

सत्य अहिंसा और शान्ति से प्यार की
एक तस्वीर बनी
इसी तिरंगे के नीचे भारत की तकदीर बनी । *

राजनीति के साथ उदात्त जीवन मूल्यों का समावेश करके गान्धी जी राजनीति और राष्ट्रीयता को मानवतावादी रूप दिया । गौतम की परम्परा सजीव हो उठी :-

प्यार की राह दिखा दुनिया को
रोके जो नफरत की आंधी
तुम में ही कोई गौतम होगा
तुम में हो कोई होगा गांधी ।[2]

स्वतन्त्रता के अभियान में गान्धीवादी राष्ट्रीय चेतना प्रमुख धारा के रूप में मिलती है किन्तु इसके साथ-साथ क्रान्तिकारियों की चेतना को भी भुलाया नहीं जा सकता । इसका उल्लेख भी कुछ गीतों में हुआ है :

बापू के सपनों का भारत है,
नेहरू की अभिलाषा,
आज़ाद, भगतसिंह की कुर्बानी
बिस्मिल सुभाष की आशा ।[3]

इस प्रकार राष्ट्रीय धारा एक सहयोगी अभियान रहा जिसमें गांधी का मानवतावाद क्रान्तिकारियों की उग्र चेतना, सुभाष का त्याग और बलिदान - सभी कुछ सम्मीलित है ।

---

* फरिश्ता या कातिल : अनजान
2 लम्बे हाथ : अनजान
3 माटी मेरे देश की : दिनेश

इसी प्रकार गान्धी जी के सत्य और अहिंसा को भी गीतों में याद किया गया है :-

जहाँ सत्य अहिंसा और धर्म का
पग पग लगता डेरा ।*

अहिंसा भारत की आत्मा में धुली हुई है । इसके सम्बन्ध में शैलेश मटियानी ने अपना अभिमत इस प्रकार दिया गया है ।

"भारत वर्ष का इतिहास अहिंसा को हिंसा के ऊपर रखने के कठिनतम संघर्ष के उदाहरणों से भरा पड़ा है । अहिंसा के बूते पर हिंसावादी सत्ताओं से मुक्ति खोजने का इतना लम्बा संघर्ष शायद ही किसी अन्य देश ने किया हो । यह वास्तव में कितनी विचित्र चीज़ है कि हिंसा की विकराल शक्ति के सामने तात्कालिक स्वरूप में कायरता, कारुणिकता और हास्यास्पदता तक की सतहों पर निष्क्रिय दिखते हुए इस हिंसा विरतता के विचार दर्शन ने भारतीय मानस और मेधा को बाहरी तौर पर भले ही अनाक्रमक बना दिया लेकिन अपनी आंतरिक संरचना में प्रतिरोधी मानसिकता के लिए दीक्षित किया है । इस आमने सामने की क्रान्ति के आवाहन की उतावली बरतने से पहले इस सचाई को हमें समझना चाहिए कि भारतीय मानस हिंसा की गुहार से आन्दोलित नहीं होता । वह सिर्फ अहिंसा की गुहार पर ही आगे आता है और प्राणोत्सर्ग की हद तक आगे आता है ।"[2]

---

* राजेन्द्रकृष्ण : सिकन्दरे आज़म

2 जनता और साहित्य : शैलेश मटियानी : पृ.सं. 69

1.2 देश की धरती : ....

राष्ट्रीय भावना देश के भूगोल के प्रति प्रेम को जगाती है । देश के धरती के कण कण से राष्ट्रीय जन सा रागात्मक सम्बन्ध जुड़ता है । देश के नदी, पहाड़, जंगल, देश की धरती ये सब - राष्ट्रीय स्फूर्ति का संचार करते हैं । अनेक सिने गीतों में देश की धरती के प्रति प्रेम प्रकट हुआ है । उदाहरण के लिये कुछ गीत प्रस्तुत हैं । सबसे पहले देश की मिट्टी के प्रेम के गीत लिये जा सकते हैं :

माटी का प्रेम :

माटी मेरे देश की चंदन और गुलाल है
मेरे देश का हर एक बच्चा इस माटी का लाल है । *

.. .. ..

अब के बरस तुझे धरती को रानी कर देंगे
अब के बरस तेरी चूनर को धानी कर देंगे ।[2]

.. .. ..

मेरे देश की धरती सोना उगले, उगले हीरे मोती
जब चलते हैं इस धरती पर हल, ममता अंगड़ाइयाँ लेती है ।
क्यों न पूजे इस माटी को जो जीवन का सुख देती है ।[3]

इस प्रकार वंदे मातरम् गीत की आत्मा अनेक गीतों में उतर आई है - "सुजलां सफलां" ।

---

* माटी मेरे देश की : दिनेश
2 क्रान्ति : संतोषानंद
3 उपकार : गुलशन बावरा

गंगा राष्ट्र की गरिमा का प्रतीक है । पानी की विशेषता के कारण गंगा को संसार की नदियों की रानी कहा जा सकता है । गंगा के प्रति राष्ट्र प्रेमी के मन में एक सात्विक गर्व होता है । "गंगा जमुना" जैसे राष्ट्रीय चलचित्र बनते हैं और बड़े गर्व के साथ यह गाया जाता है - "हम उस देश के वासी है जिस देश में गंगा बहती है ।" *

इसी प्रकार हिमालय भी राष्ट्रीय ऊँचाई का प्रतीक बन गया है । अनेक गीतों में यह बार बार कहा जाता है -

"यह है हिमालय की जमी ।"[2]

है हिमालय का बदन आजाद है ।" [3]

हिमालय के साथ साथ विन्ध्याचल का नाम भी आया है -

"तन में विन्ध्याचल का बल है ।"[4]

यह धरती शस्य-श्यामला है । यहाँ की हर डाल पर सोने की चिड़ियाँ बैठी है अर्थात् भारत को प्रकृति ने समृद्ध बनाया है किन्तु लुटेरे ने उसे लूट लिया है ।

जहाँ डाल डाल पर सोने की चिड़िया करती है बसेरा
वो भारत देश है मेरा ।[5]

---

*	जिस देश में गंगा बहती है	:	शैलेश
2	हम एक है	:	जाँ निसार अख़्तर
3	मुझे जीने दो	:	साहिर
4	प्रेम पुजारी	:	नीरज
5	सिकन्दरे आज़म	:	राजेन्द्र कृष्ण

भारत की धरती पर सबसे पहले उषा किरणों का विलास होता है और आकाश सिन्दूरी हो जाता है ।

पूरब में सूरज ने छेड़ी जब किरणों की शहनाई
चमक उठा सिन्दूर गगन पर पश्चिम तक छाई लाली । *

जहाँ तक भौगोलिक दृष्टि से राष्ट्र भक्त को प्रेम होता है वहाँ भूगोल और इतिहास दोनों मिलकर जमीन को गौरव प्रदान करते हैं । इसी गरिमामय धरती पर देश के लिये एकता का नायल गाते हैं ।

आवाज दो हम एक है.. ..
यह है हिमालय की जमी, ताजो अजंता की जमीं
संगम हमारी आन है चितौड़ अपनी शान
पंजाब के दिल से उठो, सतलुज के साहिल से उठो
महाराष्ट्र की खाक से दिल्ली की अर्जे पाक से
बंगाल से गुजरात से कुछ आके हिन्दुस्तान से
कह दो कि हम तैयार हैं । आवाज दो हम एक है ।[2]

अंग्रेजों ने भारत को लूटा और उसको गुलाम बनाया । उसकी नीति "फूट डालो और राज्य करो" की थी इस नीति से राष्ट्रीयता का सबसे बड़ा स्तम्भ एकता - ध्वस्त हो जाता है । इसलिये देशवासियों को जोर से दोहराना पड़ता है कि हम सब एक है । एकता को समाप्त करने के लिये अंग्रेजों ने धर्म के नाम पर अलगाव पैदा किया । गान्धी जी इस सांप्रदायिक विद्रोह के विरुद्ध आजीवन लड़ते रहे और अंत में अपने प्राणों की आहुति दे दी । इस सांप्रदायिक विद्वेष की निस्सारता का कथन कई सिने गीतों में हुआ है । कुछ गीतों की

---

* पूर्व पश्चिम : इन्दीवर 2. हम एक है : जाँ निसार अख्तर

पंक्तियाँ नीचे प्रस्तुत हैं :

क्या डालेगा तू फूट यह घर है कबीर का
झगड़ा नहीं हो सकता है तुलसी से मीर का ।*

..   ..   ..

मजहब जुदा सही वतन तो एक है
है फूल रंग रंग के चमन तो एक है ।[2]

..   ..   ..

हम पहले भारतवासी फिर हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई
नाम जुदा है तो क्या भारत माँ के सब बेटे हैं भाई ।[3]

धर्म के अतिरिक्त भाषा के नाम पर भी भारत के खंडित होने की आशंका जग उठी है । इसकी ओर भी एक सिने गीत में संकेत किया गया है :

प्रान्त प्रान्त से टकराता है, भाषा पर भाषा की लात
मैं पंजाबी तू बंगाली कौन करे भारत की बात ।[4]

1.3 अतीत का गौरव :   ....

जब कोई राष्ट्र जागरण का उपक्रम करता है और राष्ट्र एवं जाति को जागृत रखने एवं सजीव रखने के लिये अतीत के गौरव का

---

*	जौहर इन कश्मीर	:	इन्दीवर
2	हम एक है	:	आनंद बक्षी
3	आक्रमण	:	आनंद बक्षी
4	बालक	:	भरत व्यास

गायन बहुत महत्त्वपूर्ण होता है । इसके साथ ही महान उत्सर्ग की गाथाओं से कौम में नयी शक्ति का संचार होता है । ऐतिहासिक अतीत के गौरव का एक गीत इस प्रकार है :

सिकन्दर को पोरस की ताकत ने रोका
गौरी को पृथ्वी की हिम्मत ने रोका
जब खूनी नादर ने छेड़ी लड़ाई
तो दिल्ली की गलियों से आवाज आई
लगा ले तू जितना जोर सितमगर
मेरा देश आजाद होके रहेगा ..... *

1.4 संकल्प, चेतावनी और प्रतिज्ञा : ....

राष्ट्र की जनता में राष्ट्र प्रेम राष्ट्र रक्षण और राष्ट्रीय आदर्शों के प्रति प्रतिबद्धता के स्वर जगत हुए मिलते हैं । बच्चों को एक राष्ट्रीय उपदेश इस देश में दिया गया है जिसमें राष्ट्रीय जीवन मूल्यों पर अडे रहने का संदेश है ।

इन्साफ की डगर पर बच्चों द दिखाओ चलके
ये देश है तुम्हारा नेता तुम्ही हो कलके
इंसानियत के सिर पर इज्जत का ताज रखना
तन मन की भेंट देकर भारत को लाज रखना ।[2]

राष्ट्र के सर्वांगीन विकास के लिये आवश्यक है देशवासी आराम के क्षणों को परिश्रम में बदल दें । परिश्रम की प्रेरणा गीत भी

---

*	जौहर महमूद इन गोवा	:	इन्दीवर
2	गंगा जमुना	:	शकील

निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है :

आराम है हराम
भारत के नौजवानों हरामी के दीवानो
तुम देश के कोने कोने में पहुंचा दो ये पैगाम । *

मानसिकता की दृष्टि से नौजवानों को ■ आशावादी होना चाहिये जिससे की राष्ट्रीय प्रगति प्रशस्त हो सके । साथ ही पस्ती के स्थान पर हौसलों की ऊंचाई भी आवश्यक है ।

तू निराशा में आशा के दीपक जला
हो हिमालय से ऊंचा तेरा हौसला ।[2]

राष्ट्र की उद्यान की रक्षा का भार भी नौजवानों के कंधों पर है । हमें संकल्प लेना चाहिये कि विघटन और विनाश की शक्तियों को नहीं पनपने देंगे । आजादी अपने आप में सुरक्षा के संकल्प के बिना अधूरी और निर्जीव हो रहती है :

अब कोई गुलशन ना उजड़े, अब वतन आजाद है
रूह गंगा की हिमालय की बदन आजाद है
खेतियां सोना उगायें, वादियां मोती लुटाए
आज गौतम की जमी तुलसी का बन आजाद है ...[3]

संकल्प के स्वरों में सैनिक संकल्प भी सिनेगीतों में एक महत्वपूर्ण अभिप्राय बना है । भारतीय सैनिक यह संकल्प लेता है कि उसके आगे बढ़े हुए कदम कभी पीछे नहीं हटेंगे ।

---

*	अपना घर	:	प्रेम धवन
2	हिमालय से ऊंचा	:	इन्दीवर
3	मुझे जीने दो	:	साहिर

वरदी है भगवान फौजी मेरा नाम
गोलियां खाके गर्दन झुकाता नहीं
कदम को बढ़ा के हटाता नहीं । *

सैनिक का ये विश्वास है कि वह देश का पहरेदार है और इस कार्य में वह पूर्णता सुदृढ़ भी है ।

ताकत वतन की हमसे है, हिम्मत वतन की हमसे है
पहरेदार हिमालय के हम झोकें है तूफान के
सुनकर गरज हमारी सीने फट जाये चट्टान के
सीना है फौलाद का अपना फूलों जैसा दिल है
तन में विन्ध्याचल का बल है मन में ताजमहल है ।[2]

साथ ही भारतीय सैनिक के भीतर अडिग आत्मविश्वास और स्वाभिमान भरा हुआ है । इसकी अभिव्यक्ति एक सिने गीत में इस प्रकार की गयी है :

हमसा दिलवाला कोई मिले न हजारों में
मरें चाहे जियें रहें अगली कतारों में
छलके हमारा लहू कलकी बहारों में
अश्कों का तोहफा होके बह जायें यारों में ।[3]

देश की रक्षा और देश के गौरव का उन्नयन बलिदान की भावना से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है । भारत देश उसका है जो अपने को शहीद करने की शक्ति रखता है । यह हिन्दु का है, ना मुसलमान का बल्कि जो देश के लिये शहीद हो गये उन्हीं का यह देश है :

---

* फौजी : एम.जी. हसरत

2 प्रेम पुजारी : नीरज

3 आदमी और इन्सान : साहिर

हिन्दु कोम नहीं है किसी मुस्लिम की नहीं है
हैं हिन्द जिसका नाम शहीदों की जमी है । *

इसीलिये देश के नौजवानों को ओष बलिदान के लिये पुकारा जाता है ।

न जाने और कितनी ही अर्थ छायाएं राष्ट्रीय सिने गीतों में आई है ।

" इस प्रकार के गीतों का अंचल बहुत विस्तृत है । एक और यदि उनमें देश-प्रेम की गूंज रहती है तो दूसरी ओर अतीत के गौरव-पूर्ण इतिहास का अंकन । कभी उनमें मातृभूमि का अपमान करनेवाले शत्रु को पीस डालने का संकल्प होता है तो कभी देश की स्वाधीनता के लिए प्राणों का निछावर करने वाले अमर शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि । "2

देश के स्वातन्त्र्य संग्राम, जन-जागरण और राष्ट्रीय आन्दोलनों के विषयों को लेकर अनेकै फिल्मों का निर्माण हुआ है । इन फिल्मों के गीतों में राष्ट्रीय चेतना, देशभक्ति, अतीत गौरव गायन, महापुरूष स्तुति आदि की प्रस्तुती है ।

राष्ट्रीय सिने गीतों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है -

1. सांस्कृतिक राष्ट्रवादी सिने गीत
2. राजनैतिक राष्ट्रवादी सिने गीत ।

1. सांस्कृतिक राष्ट्रवादी गीतों में अतीत के गौरव में आस्था, वर्तमान के प्रति असंतोष, विषण्न जनता को प्राचीन सांस्कृतिक उत्कर्ष के गायन द्वारा स्फूर्ति एवं उत्साह देने की चेष्टा की गई है ।

---

* हम एक है : इन्दीवर 2. हिन्दी चित्रपट : डा.ओंकार प्रसा
पृ.71

2. राजनैतिक राष्ट्रवादी गीतों में उद्बोधन, जनऐक्य राष्ट्रीय प्रतीकों, महापुरूषों और नेताओं की स्तुति एवं विदेशी शासकों के विरोध की भावना रही है ।

2. <u>स्वतन्त्रता और स्वप्न-भंग :</u> ....

देश ने स्वतन्त्रता के पहले अनगिनत सपने सजाये थे । देश में रामराज्य होगा । सब खुशहाल होंगे । शोषण समाप्त हो जायेगा । सर्वत्र न्याय की दुन्दुभी बजेगी । जातिगत और आर्थिक विषमता समाप्त हो जायेगी पर, यह सपने एक एक करके चरमराकर टूटते गये । राम राज्य का सपना देश में कभी नहीं उतर पाया सभी जगह आपा धापी, भाई भतीजावाद, भ्रष्टाचार और गलाघोंट प्रतियोगिता, पहरेदार लूटेरे बन गये । राष्ट्रीय प्रतीक धुंधले और औंधे पड़ गये । आम आदमी दैनिक जीवन की लड़ाई में लहुलुहान हो गया । युग मुखौटों का आ गया कि असली नकली की पहचान खो गयी । यह सब देश की जनता ने दिल पर पत्थर रख कर देखा और भोगा । यह आशय भी बहुत से सिने गीतों में मुखरित हुए ।

" स्वतन्त्रता के बाद का इतिहास विदेशी शासकों की जगह स्वदेशी शासकों का इतिहास है और इसलिए पिछले वर्षों की सारी राजनीति पूँजीवादी सूत्रधारों के द्वारा दिखाए जा रहे प्रजातान्त्रिक कठपुतली के खेल की क्रूर और हास्यास्पद नियति में बदलती गई ।" *

बाकी जो बचा तो महंगाई मार गई ....[2]

शताब्दियों की पराधीनता के बाद जब हमें स्वतन्त्रता मिली

---

* जनता और साहित्य : शैलेश मटियानी : पृ. 135

2 रोटी, कपड़ा और मकान :

तो संसार को इस बात का विश्वास कम था कि भारतीय स्वराज्य को ठीक ढंग से चला पाएंगे लेकिन भारत के जन जन में एक आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया ।

विश्व की महानतम रक्तहीन क्रान्ति के बाद हमने स्वतन्त्रता का वरण किया । एक अटूट आस्था देश के भावी जीवन के प्रति हर व्यक्ति में उत्पन्न हुई । कुछ सिने गीतों में, जो उस समय की स्थिति और जन भावना का प्रतिबिम्बित करने के लिए लिखे गए है यही भावना दिखाई देती है :

दिलवाले, दिलवाले तेरा नाम क्या है
नाम क्या है ? पैगाम क्या है ?. क्रांति क्रांति
अब किसी की मांग ना उजडे, अब बच्चों से मां ना बिछडे
देश की खातिर काम आएंगे, गोद में इसकी सो जाएंगे ...
एक ही मिट्टी एक ही पूजा, इसके सिवा ना भाए दूजा..*

... ...

आओ मेहनत को अपना ईमान बनाए
अपने हाथों से अपना भगवान बनाए
राम की धरती को गौतम की भूमि को
सपनों से भी प्यारा हिन्दुस्तान बनाए .....[2]

"गांधी के रामराज्य का सपना संजोया था । ऐसा राम राज्य जहां साम्प्रदायिकता ना हो, जहां वर्ण भेद, रंग भेद, आंचलिकता भाषा एवं भ्रष्टाचार न हो ।

---

* क्रान्ति : संतोष आनंद
2 हम हिन्दुस्तानी : प्रेमधवन

गांधी - दर्शन को सिने गीतकारों ने समय समय पर गीतों के माध्यम से कहने का प्रयत्न किया है ।

चमका है इन्साफ का सूरज, फैला है उजाला
नई उमंगे संग लाएगा, हर दिन आनेवाला ....*

....

अब न कोई भूखा होगा, और ना कोई प्यासा,
अब ना कोई नोकर होगा, और ना कोई आका ...[2]

किन्तु धीरे-धीरे ये सारे स्वर फीके ■ और निरर्थक हो गये और सिने गीतकार भी स्वप्न भंग की दर्दनाक स्थितियों के प्रति उदासीन न रह सके । स्वप्न भंग के स्वर इस प्रकार सजोये गये । पहले गांधीवाद को संबोधन कर के कहा गया :

राम राज की तेरी कल्पना उड़ी हवा में बनके कपूर
बच्चों ने पढ़ना लिखना छोड़ा तोड़ फोड में है मगरूर
नेता हो गये दलबदलू - देश की पगड़ी रहे उछाल ।[3]

जब नेता दलबदलू और भ्रष्ट हो जाये तो देश का क्या हाल हो जायेगा - इसकी कल्पना मात्र से सिद्ध होता है । नेताओं का गठबन्धन एक ओर नोकरशाही से और दूसरी ओर पूंजीपतियों से । जनता का जीवन पूंजीपतियों के हाथों में खेलने लगा -

आजादी आई भी तो क्या
कायम है गुलामी की रस्में
जनता का जीवन आज भी है
सरमाया दारों के बस में ।[4]

---

* राम और रहीम श्याम : शकील 3.■. गोल्डमेडल : इन्दरजीत सिंह तुलसी

■ बालक : भरत व्यास

चारों ओर काला धन और काला बाजार उमड़ पड़ा रिश्वत का बाजार गर्म हो गया । सत्य और अहिंसा व्यंग बन उठे और चरखे का तार टूट गया :

> काला धन काला व्यापार, रिश्वत का है गरम बाजार
> सत्य अहिंसा करे पुकार, टूट गया चरखे का तार ।*

चारों ओर भुखमरी फैल गयी और यह भुखमरी कोई यथार्थ स्थिति नहीं थी । यह सब पेट परस्ती का परिणाम थी । पेट की समस्या इतनी बढ़ गयी कि उसके लिये हस्तियाँ बिकने लगी ।

> इतना भूखा देश नहीं है जितनी पेट परस्ती है
> पेट के खातिर सस्ते दामों बिक जाती हर हस्ती है ।[2]

3. विदेशी आक्रमण :

स्वप्न भंग की स्थिति उस समय और भी कटु हो गयी । जब चीन और पाकिस्तान का आक्रमण हुआ । यहाँ भी सीने गीतकार चुप नहीं रहा । इस परिस्थिति को लेकर कई चलचित्रों का निर्माण हुआ । "आस का पक्षी", "हकीकत", "हिन्दुस्तान की कसम" आदि गीत भी साथ साथ चले । एक गीतकार ने चीनी फासीज्म का पर्दा फास किया है :

> फिर बरसों के बाद चीन में इक और हिटलर जागा
> चाहता है जुल्म से काटे पंचशील का धागा
> बुद्ध के पैगामों को बोलो किसने हंसी उड़ाई
> भाई कहकर भाई की गरदन पर छुरी चलाई ।[3]

---

* चलो सिपाही चलो : ए. शमशीर 2. गोल्डमेडल : इंदरजीत सिंह बालक : भरत व्यास तुलसी

3 चलो सिपाही चलो : ए.शमशीर

दूसरी ओर बलिदान के आवाह्न का गीत बना ।

वतन पे जो फिदा होगा अमर वो नौजवां होगा
रहेगी जब तक तलक दुनिया ये अफसाना बयां होगा
सिपाही देते है आवाज माताओं से बहनों से
हमें हथियार ले दो बेच डालो अपने गहनों को । *

चीन पाकिस्तान आक्रमण के समय सिने उद्योग के कलाकारों, गीतकारों, संगीतकारों, नायकों, गायिकाओं, ने सरहदों पर जा जाकर फौजी भाइयों का मनोरंजन किया और राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व को निभाया :

हिन्दुस्तान की कसम, हिन्दुस्तान की कसम
ना झुकेगा सरवतन का, हर जवान की कसम...[2]

..   ..   ..

वतन की आबरू में साहिर ने एक चिंगारी भरा सम्बोधन दिया :

वतन की आबरू खतरे में है तैयार हो जाओ
हमारे इम्तहां की वक्त है तैयार हो जाओ
उठो रुख फेर दो दुश्मन की तोपों के दहानों का
वतन की सरहदों पर आहनी दीवार हो जाओ ।[3]

और यह प्रतिज्ञा भी सुनाई पड़ने लगी :

---

* फूल बने अंगारे : आनंद बक्षी

2 हिन्दुस्तान की कसम : कैफी आजमी

3 वतन की आबरू : साहिर

उस मूल्क की सरहद को कोई छू नहीं सकता
जिस मूल्क की सरहद की निगाहबान है आखें । *

इस प्रकार आजादी के बाद देश के स्वप्न टूटे और टूटते ही चले गये । सामाजिक यथार्थ भी कटु होता चला गया । राजनीतिक विश्वासघात ने आस्था के मूल हिला दिये । अपने ही अपने शत्रु बने । फिर भी सिने गीतकार ने हिम्मत नहीं तोड़ी । देश के युवकों को उसने पुकारा । लौह संकल्पों को उसने जन-मन में भरने की चेष्टा की । वास्तव में स्वप्न भंग का अंत जिस संघर्ष में हुआ उस संघर्ष ने देश को एक और शक्तिशाली बनाया ।

5. सामाजिक चेतना

4.। <u>समकालीन जीवन दर्शन :</u> ....

मानव और पशु में यही अंतर है कि पशु बुद्धि एक सीमा में बंधी हुई चलती है । उस सीमा से इतर वैचारिक शक्ति उसके पास नहीं है जब कि मानव ने सृष्टि के या स्वयं के प्रारम्भ के साथ ही चिंतन करना प्रारम्भ कर दिया । दर्शन का जीवन से गहरा सम्बन्ध है । दर्शन का विकास मानव संस्कृति का विकास है । काव्य का इसीलिये दर्शन से संबंध है । प्राचीन साहित्य का सिंहावलोकन इसे और भी स्पष्ट कर देता है । काव्यशास्त्र में दर्शन की मान्यता भाव पक्ष के माध्यम से हुई है । हिन्दी काव्य में मध्यकालीन दर्शनों का प्रभाव संतवाणी में दिखाई देता है ।[2]

---

* आखें : साहिर

2 आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली
रांगेय राघव : पृ. 75
राजपाल एण्ड सन्स : 1962

इतिहास साक्षी है कि आज तक उसने किसी एक स्थिति में किसी एक ही सामाजिक धार्मिक या राजनैतिक धारा में बहना स्वीकार नहीं किया उसकी चेतन तरंगों ने सदैव उसे इस बात के लिए झकझोरा है कि जो होता आया है वो तो है इसके आगे क्या अपनी ऐन्द्रियों के पार जो कल्पनाएं या अनदेखी शक्तियां है उनके बारे में उसने हमेशा सोचा है ।

अंतत: इस अनंत विश्व का सृजन किसने, कब और क्यों किया" वो कौन है जो इस सधे हुए और त्रुटि रहित विराट नियत चक्र का संचालन कर रहा है ।

अनेक ईश्वरों की, अनेक पैगम्बरों, देवी देवताओं की कल्पनाएं मानव ने की, उन्हें मानव का स्वरूप देकर पूजता भी रहा किन्तु उसकी जिज्ञासा शांत नहीं हुई । वह अब भी उस अज्ञात के दर्शन के लिए लालायित है ।

ये दिन क्यों निकलता है, ये रात क्यों होती है ... *

वह कौन अज्ञात है जो अदृश्य रूप में सारी सृष्टि का संचालन कर रहा है ।

परदे के पीछे बैठी, सांवल गोरी
थामके तेरे मेरे, मन की डोरी ....[2]

मानव ने एक असीम अलख परमात्मा की कल्पना की है और उसकी आत्मा सदैव उस परमात्मा में आत्मसात होने की झलक

---

*	प्रेम रोग	:	संतोष आनंद
2	धरम करम	:	मजरूह

रखती है । उस मिलन के बीच जो व्यवधान है वही दार्शनिक दृष्टिकोण से विरह रात्रि है । और आत्मा इस रात्रि के समाप्त होने की प्रतीक्षा करती है ताकि भोर के प्रकाश में वह परमात्मा से एकाकार हो जाए । सिने गीतकारों ने इस मिलन की ललक को बड़ी गहराई से पकड़ा है :

पोखरों रे ताल मिले नदी के जल में,
नदी मिले सागर में,
सागर मिले कौन से जल में, कोई जाने ना .... *

इस परम मिलन की प्यास से प्रकृति का कण कण तृषित है - पर्वत से सागर तक बहती हुई सरिता, पूर्णमासी को चन्द्रमा को छूने का प्रयत्न करती हुई सागर की उद्दाम लहरें, उपवन में रात इत्र शत शत रंगों सुगन्धों को लेकर नित्य चटकती हुई कलियां इसी महाप्यास का गीत गाती है -

क्या धरती और क्या आकास,
सबको प्यार की प्यास
सरिता को सागर की प्यास
लहरें उठ उठ जाना चाहें, पूनम के चंदा के पास ....[2]
... ...
मानव मन भी इसी "प्यास" से, अभिशप्त है
परमात्मा से मिलन की ललक लिए जीता है, ललक लेकर ही मरता है - ओ मांझी रे, अपना किनारा
नदिया की धारा है ।...[3]

---

* अनोखी रात : इंदीवर 2 प्यार की प्यास : भरत व्यास

3 खुशबू : गुलजार

पूरे विश्व की प्यास को देखकर सिने गीतकार ने पूरी दुनिया को ही मदिरालय कह दिया है -

नशे में हूँ लेकिन मुझे यह खबर है
कि इस जिन्दगी में सभी पी रहे हैं ..... *

सम्पूर्ण दर्शन की तो समाप्ति है । इस प्यास तृप्ति, श्वेत श्याम, सांवल गोरी के खेल से चलता हुआ ये संसार कितना अनोखा है । यदि सब स्पष्ट हो जाए तो महाकवि दिनकर ने उर्वशी पर इस "तो" को स्पष्ट किया है :

ड्रामा का वरदान सभी कुछ अर्द्ध स्पष्ट झिलमिल है
स्वप्न से स्वप्न, हृदय से हृदय मिलकर सुख पाते हैं ...
यदि प्रकाश हो जाए सामने खड़े नग्न रूपों में
कौन सहेगा वह भीषण आघात भेद-विघटन का ....[2]

मन मंथन से निकले हुए सत्य "दर्शन" की थाती है । सिने-गीतकारों ने इन्हीं सत्यों को उजागर किया है । यथा -

कई सदियों से कई जन्मों से
तेरे प्यार को तरसे मेरा मन
आजा के अधूरा है अपना मिलन ...[3]

---

*	लोफर	:	शकील
2	उर्वशी	:	रामधारी सिंह दिनकर : पृ.सं. 89
3	मिलाप	:	नक्श लायलपुरी

4.1.1 आस्तिकता : ....

ईश्वर की आवश्यकता प्रकृति से एकरूपता स्थापित करने का प्रयत्न है । मानव प्रकृति व्यापार एवं उसकी अनियमितता को किसी अदृश्य शक्ति से चालित होने की कल्पना करता आया है और उसे ही ईश्वर की संज्ञा दी है ।

मनुष्य आदिकाल से किसी ना किसी दैविक-शक्ति की सत्ता अवश्य मानता रहा है । "प्रकृति-पूजन", अवतारवाद, पैगम्बरवाद आदि इसी की कड़ियां है । जब मनुष्य को चारों तरफ अन्धेरा नजर आता है और उसे लगता है कि भौतिक जगत में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो उसके दुखों का निवारण कर सके तो वह एक अज्ञात - परम पिता परमेश्वर की प्रार्थना करता है और उससे सहायता की भीख मांगता है -

दिया ना बुझा मेरे घर का
मेरी तकदीर के मालिक
सुन ले पुकार आई आज तेरे द्वार
लेके आसुओं की धारमेरे सांवरे .... *

विपत्तियों में फंसा हुआ मनुष्य ईश्वर से प्रार्थना करता है कि मैंने तो अपना सर्वस्व तेरे हवाले कर दिया है । मेरा सुख दुख तू है, मेरी नैया और पतवार भी तू ही है । ये जीवन तेरा दिया है और मृत्यु भी तेरे ही इशारे पर होगी :

तू ही नदिया तू ही नैया
तू ही मेरी पतवार
.. .. ..

* फूल और पत्थर : शकील बदायूनी

तेरे सहारे कर जाएंगे
जीवन के दिन चार .... *

ईश्वर को सम्पूर्ण समर्पण करके निश्चित आनंदमय जीवन यात्रा करने की प्रेरणा सिने गीतों में दी गयी है :

तेरी रहमत बिना ये जमाना कहाँ
तुझसे होके अलग है ठिकाना कहाँ
मेरा मांझी है तू और ये कश्ती तेरी
तेरी ही है समंदर की हरेक लहर ....[2]

" एक ही परमात्मा के अनेक दिव्य प्रकाशमय स्वरूप है । इन उनमें से किसी एक स्वरूप का आश्रय लेकर परमात्मा को पा सकते हैं ।" [3]

हिन्दू धर्म में बहुदेवता-देवी की उपासना स्वीकार की गई है । सिने गीतों में प्राय: सभी मुख्यत: देवी-देवताओं की प्रार्थना की गई है । भारतीयों में ईश्वर और धर्म के लिए अटूट और अगाध श्रद्धा है । इसलिए सिने कहानीकार एवं पटकथाकार फिल्म की कहानी के किसी ना किसी मोड़ पर ईश्वर का आश्रय अवश्य लेते हैं जिससे जन-मानस के चेतन/अवचेतन से पात्र की मनोदशा का सीधा संपर्क जोड़ा जा सके ।

कुछ निर्माता निर्देशक एवं संगीत/गीतकार किसी विशेष धर्म, देवता, देवी पीर-औलिया, पैगम्बर आदि में अगर विशेष आस्था

---

* सास भी कभी बहू थी : राजेन्द्र कृष्ण
2 रजिया : डी.के. गोयल
3 ध्यान और मानसिक पूजा : जयदयाल गोयन्का : पृ.3

रखते हैं तो वे भी अपना श्रद्धा सुमन समझकर इसी आशा का एक गीत सिनेमा की कहानी में अवश्य जोड़ देते हैं ।

<u>हिन्दू धर्म : देवी : देवता :</u> ....

हिन्दू धर्म के मूल में तीन मुख्य देवी देवताओं की स्थापना की गई है :

1. सरस्वती - ब्रह्मा
2. लक्ष्मी - विष्णु
3. पार्वती - शंकर ।

इनके कार्यक्षेत्र भी विभाजित है :-

सरस्वती ब्रह्मा - सृजन कार्य
लक्ष्मी विष्णु - पालक कार्य
शिव-पार्वती - संहार कार्य ।

"सृजन-पालन-संहार" की इस त्रिवेणी पर आधारित हिन्दू धर्म ने युगों-युगों से भारतीय जन-मानस को जीवन मार्ग दिखाया है । सिने गीतकारों ने जनमानस की इस धड़कन को बखूबी पकड़ा है और स्तुती/प्रार्थना के रूप में हिन्दू धर्म के प्रचार कार्य को चेतन स्तर पर अंजाम दिया है :

ओउम् जय जगदीश हरे ......
तुम करुणा के सागर तुम पालनकर्ता
मै मुरख खल कामी, मैं सेवक तुम स्वामी
कृपा करो भर्ता .....*

---

* पूरब पश्चिम : शिवानन्द स्वामी

साकार रूप उपासना :   ....

1. शंकर   2. विष्णु   3. राम

शंकर : संहार के देवता शंकर की स्तुति या उपासना करने से संकट काल के भीषण आघात कम हो जाते हैं । महामृत्युंजय मृत्यु को भी रोकने में समर्थ है ।

जीवन पथ पर शाम सवेरे
छाए है घनघोर अंधेरे
ओ शंकर मेरे कब होंगे दर्शन तेरे ..... *

विष्णु : भगवान विष्णु के साकार रूप की कल्पना में वे चतुर्भुज शंख गदा एवं सुदर्शन चक्रधारी है ।

मैने सुना है तुमने जहाँ में, लाखों के दुख टाले
मेरा भी दुख: टालो तो जानू ....
चक्र सुदर्शनवाले .....[2]

राम : रामावतार त्याग की मूर्ति है । जीवन पर्यन्त उन्होंने जीवन के आदर्शों की स्थापना हर मूल्य पर की । आज के युग में भी जब कोई उन आदर्शों पर चलता है तो उन्हें यही सब झेलना पड़ता है ।

काम क्रोध और लोभ का मारा
जगत ना आया रास
जब जब राम ने जनम लिया
तब तब पाया बनवास

---

* वैराग : आनंद बक्षी   2. हरिश्चन्द्र तारामती : प्रदीप

कल जुग तक चलती आई
सतजुग की यह रीत
सब कुछ हार चुके जब आना
तब हो राम की जीत .... *

देवी उपासना : ....

पुराणों में आधाशक्ति को ही चरम शक्ति माना गया है । दुर्गा-काली भवानी इन्हीं परम शक्ति के अवतार है । धार्मिक फिल्मों में दुर्गा उपासना के गीत बड़े भावनात्मक होते हैं ।

दुर्गा है मेरी मां अम्बे है मेरी मां
बोलो जय माता की
जै हो जै हो .....[2]

मां का रूप अनुपम है उसकी ज्योति अनवरत प्रकाशित है । उसके सम्पूर्ण शक्ति रूप के सम्मुख पापियों के कलेजे कांप उठते हैं ।

मांत अंग चोला साजे, हरेक रंग चोला साजे
मात की महिमा देखो, ज्योति दिन रैना जागे
तू ओढ़े लाल चुनरिया, गहनों से करे सिंगार
शेरों पे करे सवारी, तू शक्ति का अवतार ....[3]

कृष्ण : योगी-राज कृष्ण जिनके लिए कुछ भी असंभव नहीं था । हिन्दू समाज के आदर्श रहे हैं । उनकी उपासना गीत सदा से

---

* बहुरानी : साहिर लुधियानवी
2 क्रान्ति
3 आलिंगन : नक्श लायलपुरी

दर्शकों को बांध कर रखने में सक्षम रही है ।

मेरी पत राखो गिरधारी
मैं आई शरण तिहारी .... *

मीरा कृष्ण की दीवानी होकर कह उठी थी - "शाम म्हाने चाकर राखो जी" आज की बेबस नायिका भी कृष्ण की चाकर बनने की इच्छुक है । अपने दुखों का निवारण करने के लिये :

कान्हा आन पडी मैं तेरे द्वार
मोहे चाकर समझ निहार
तू जिसे चाहे ऐसी नहीं मैं
हां तेरी राधा - जैसी नहीं मैं ....
फिर भी हूँ कैसो कैसी नहीं मैं
कृष्ण मोहे देख तो ले एक बार ..... [2]

एकेश्वरवाद : ....

सिने गीतों में एकेश्वरवाद का स्वर बड़ी गूंज से मिलता है चूंकि सिनेमा बहु-धर्मावलम्बी दर्शकों को दृष्टि में रखकर बनाया जाता है और इसके निर्माण में भी विभिन्न धर्म एवं संप्रदाय के लोग कार्यरत होते हैं इसलिए सिने गीतों में एक ऐसे ईश स्वरूप की झांकी मिलती है जो इन घेरों एवं दायरों के ऊपर है और सबकी है । इसके लिए सिने गीतकारों ने "ए उपर वाले", "एक तकदीर के मालिक", "रब",

---

* घूंघट	:	शकील बदायूनी
2 शागिर्द	:	नीरज

"सबका भगवान," "साइयां", "तू" आदि विशेषणों से इस स्वरूप को सम्बोधित किया है ।

बनाके क्यूं बिगाड़ा रे -
नसीबा ऊपरवाले ऊपरवाले ... *

ईश्वर में आस्था बढ़ाने वाले अनेक सिने गीत लिखे गये जिनमें लोकोक्तियों का भी प्रचुर प्रयोग है । जैसे - अंधेर नहीं है, देरी है एवं जाको राखे साइयां ....

कल तक रब को भूला था
अब नाम लगा है रटने
जब माल लगा है घटने .....[2]

....

होनी तो होकर रहे
अनहोनी न होए
जाको राखे साइयां
मार सके ना कोई ....[3]

मजहब की दीवारों से हटकर देखने पर ईश्वरीय सत्ता हर जगह एक ही है । नाम अलग अलग हो सकते हैं ।

अल्लाह तेरो नाम ईश्वर तेरो नाम
सब को सन्मति दे भगवान
निर्बल को बल देनेवाले
बलवानों को दे दे ज्ञान ....[4]

---

* जंजीर : गुलशन बावरा 2 हेराफेरी : इंदीवर
3 सूरज और चंदा : आनंद बक्षी 4 हम दोनों : साहिर

ये अनन्त सौर मंडल और पृथ्वी वन उपवन लाखों करोड़ों तरह के जीवन जन्तु एवं वनस्पति जब इतनी सुन्दर है तो इसको जन्म देनेवाला ईश्वर कितना सुन्दर होगा ।

तुझे देखकर जग वाले पर
यकीन ही क्यूं कर होगा
जिसकी रचना इतनी सुन्दर
वो कितना सुंदर होगा .... *

ईश्वर को उलाहना : ....

ईश्वर की माया बड़ी विचित्र है । मानव को जब कथित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है तो वह अप्रसन्न हो जाता है । और इस स्थिति से उसका उलाहना देना उसका एक नैसर्गिक गुण है ।

तूने जो मेरे दिल की ज्योति बुझाई
ओ दुनिया वाले होगी तेरी हँसाई
ऐसा भलाई का जो बदला मिलेगा
कभी ना मिटेगी, तेरे जग से बुराई ....[2]

जब ईश्वर की शरण में समर्पित व्यक्ति को न्याय नहीं मिलता है तो वह उसे भी अपशब्द कहने को हिचकिचाता नहीं ।

पाप करे इन्सान अगर तो, वो पापी कहलाता है
तूने भी ये पाप किया है, फिर कैसे कहूँ तू दाता है ..[3]

---

*	सावन को आने दो	:	इंदीवर
2	फूल और पत्थर	:	शकील बदायुनी
3	जंजीर	:	गुलशन बावरा

संसार में विषमतायें और विडम्बनायें भरी पड़ी हैं । कोई अंधा है । उसको आँखें मिली तो उसकी राह छीन ली और जिसे चलने के लिये राह दी तो उसके नेत्रों की ज्योति छीन ली ।

ये कैसा न्याय तेरा, दीपक तले अन्धेरा
जिसको दी निगाह राह छीन ली
किसी को राह दी निगाह छीन ली ... *

प्रार्थना : ....

रचना शैली के आधार पर ईश्वरीय भक्ति के विभिन्न रूप बनते हैं । प्रार्थना भक्ति का वह रूप है जिसमें भक्त एक प्रार्थी के रूप में ईश्वर को सम्बोधित करता है ।

मेरी सुन ले अरज बनवारी
तेरे द्वार खड़ी दुखियारी .....[2]

वन्दना : .. ..

वन्दना में ईश्वर की महिमा का गुणगान किया जाता है

साँचा नाम तेरा, तू श्याम मेरा
सारा जगत है झूठा साथी
टूटे दीपक बुझ जाए बाती
चाहे साँझ हो चाहे सवेरा ...[3]

---

*	जंजीर	:	गुलशन बावरा
2	आँखें	:	साहिर
3	जूली	:	आनंद बक्षी

तू ओढ़े लाल चुनरिया, गहनों से करे सिंगार
शेरों पर करे सवारी, तू शक्ति का अवतार .... *

भजन : ....

भजन का रूप अब भक्ति के उस रूप से है जहाँ भक्त ईश्वर का स्मरण एवं जाप करता है ।

प्रभु तेरा नाम ....
जो ध्यावे, फल पावे सुख जाए तेरा नाम ....[2]

स्मरण भजन करते करते बहुत समय हो गया । ईश्वर प्रकट नहीं हो रहा है । भक्त की आर्त्त पुकार और निरन्तर खोज जारी है ।

बड़ी देर गई नंद लाला
तेरी राह तके ब्रज बाला
ग्वाल बाल इक इक से पूछे
कहाँ है मुरली वाला .....[3]

ईश्वर में अनास्था : ....

हमारे प्रजातंत्र में बहुत अधिक प्रशासनिक अव्यवस्था धोखाधड़ी बेईमानी- लूटखसोट आदि ही दिखाई पड़ते हैं । पहले धर्म और नीति ईश्वर और परलोक की व्यवस्थायें एक सीमा तक मनुष्य की वृत्तियों को नियंत्रित रखती थी । नई आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों में ईश्वर की आस्था समाप्त हो गई ।

---

* आलिंगन : नक्श लायलपुरी 2 हम दोनों : जयदेव
3 खानदान : राजेन्द्र कृष्ण
4 ईश्वर की मृत्यु शैय्या को घेर कर पूरा भारत खड़ा है : कमलेश्वर
नई कहानी की भूमिका : पृ.160

हर दुआ मेरी किसी दीवार से टकरा गई
इस जमी से आत्मा शायद बहुत ही दूर है .... *

4.1.2 क्षणवाद : ....

अतीत जड़ है और भविष्य आशाओं के कल्पना लोक पर टिकी हुई एक आस्था । सत्य केवल वर्तमान है और यह वर्तमान भी हर क्षण अतीत के गर्त में समाता चला जा रहा है । एक पल से दूसरे पलका मध्यांतर ही शाश्वता है । इसे ही जीने की ललक सदैव मनुष्य में रही है । विश्व के अनेक दार्शनिकों ने इसी पल को जीवन का केन्द्र माना है । इसे इस तरह से ठीक से समझा जा सकता है कि मनुष्य जब श्वास लेता है और श्वास का विसर्जन करता है तो श्वास के विसर्जन और श्वास के लेने की प्रक्रिया के बीच का पल ही जीवनदाता है - बिना उस पल के मनुष्य मृत है ।

"यह एक पल का चिन्तन है या यही कवि के व्यक्तित्व की समग्रता है । मैं समझता हूँ कि जीवन में अनेक पक्ष होने के कारण अनुभूति समय समय पर विभिन्न रूप से अपने को व्यक्त करती है ।"[2]

ताल संगीत में ताली के बाद अगर खाली न हो तो संगीत एक शोर के सिवा कुछ ना रह जाए ।

कितने गीतकारों ने कितने गीतों में इस पल को जीने का प्रयत्न किया है । यथा -

---

* अब्दुला : आनंद बक्षी

2 आधुनिक हिन्दी कविता में
विषय और शैली : रांगेय राघव, पृ. 73
राजपाल एण्ड सन्स, 1972

पल पल दिल के पास, तुम रहती हो
जीवन मीठी प्यास, यह कहती हो ... *

पल का अर्थ है वर्तमान का वह क्षण जो गतिशील है । पीड़ा एवं संत्रास से दबे हुए जीवन को भोगती हुई, कराहती हुई मानवीय चेतना को जीने के लिए आधार की खोज है । हर पल को जीने के अदम्य इच्छा सहज मानवीय इच्छा है । संत्रास से मुक्ति का एक रास्ता हर पल को पूरी चेतना से भाग लेना भी है । इसी जीवन पथ को पलवाद की संज्ञा दी गई है ।

आगे भी जाने न तू, पीछे भी जाने न तू,
जो भी है, यही एक पल है ....[2]

साहित्य में पलवाद को पूरी तरह मान्यता प्राप्त हो चुकी है । यथा :

"केवल वर्तमान में जीते है अब समस्त प्रजानन"....[3]

"मैं खोया हुआ वर्तमान हूँ - शिशु हूँ - ...[4]

जिन्दगी हँसने गाने के लिए है
पल दो पल
उसे खोना नहीं खोके रोना नहीं ....[5]

---

* ब्लैकमेल : राजेन्द्र कृष्ण 2 वक्त : साहिर

3 मुक्ति प्रसंग : राजकमल चौधरी : समकालीन कविता
डॉ. विश्वम्भर उपाध्याय - पृ. 124

4 मुक्ति प्रसंग : राजकमल चौधरी : समकालीन कविता
डॉ. विश्वम्भर उपाध्याय - पृ. 126

5 अमीर : साहिर

राजीव सक्सेना के अपने अस्तित्व गीत में वर्तमान पल को कुछ यूं पकड़ने का प्रयत्न किया है :

टन - टन - टन - टन - टन - टन
घड़ियाँ और कैलेंडर के पृष्ठ
वर्तमान को बांधोगे कहाँ ....
वह आने से पहले ही अतीत बन जाता है .... *

"जैसे गंगा बह रही है आपका चित्त भी बह रहा है । सतत प्रति क्षण बहा जा रहा है । कुछ भी ठहराव नहीं है उस चित्त में जो हो गया उसे जाने दो, बह जाने दो, जो है उसमें जागो । अतीत को मर जाने दें तो जीवन प्रकट हो जाएगा । हर क्षण नया हो जाएगा - सूरज हर क्षण नया है - फूल हर क्षण नया है, हर कण हर क्षण नया है ।"[2]

सिने गीतकारों ने इसी "पलवाद" को सिने गीतों द्वारा व्यक्त किया है :

मैं एक पल का शायर हूं
हर एक पल मेरी कहानी है
हर एक पल मेरी हस्ती है
हर एक पल मेरी जवानी है .....[3]
...   .
हरेक पल को ढूंढता
हरेक पल चला गया ....[4]

---

* राजीव सक्सेना : अस्तित्व गीत : समकालीन गीत :
डॉ. विश्वम्भर उपाध्याय : पृ. 170-72

2 रजनीश : आठों पहर यूं झूमते : पृ. 117   3 कभी कभी : साहिर
4 निकाह

यह जीवन क्षण भंगुर है और ये सारे रिश्ते-नाते भी पल दो पल के -

पल दो पल का साथ हमारा
पल दो पल के याराने हैं .... *

वर्तमान काल का महत्त्व तो हमेशा ही होता है । वह भूतकाल का फल और भविष्य का बीज होता है । दोनों ओर से उसका महत्त्व अद्वितीय है :

भूत और भविष्य के संधिस्थान पर होने
के कारण स्वभावत: वो भ्रान्ति का काल
सिद्ध होता है - फिर वो क्रान्ति जन्मदात्री
हो या मरनदात्री, वृद्धिकारिणी हो या
क्षयकारणी, वर्तमान क्षण हमेशा क्रान्ति का
क्षण होता । इतना ही नहीं वह ना भूतों ना
भविष्यति होता है .....[2]

....

पल पल बदले जग ये सारा
जैसे ढलेगी रात अंधेरी
मुस्कुरायेगा सूरज प्यारा ....[3]

---

* बर्निंग ट्रेन : साहिर

2 तीसरी शक्ति : विनोबा भावे : पृ. ।

3 आंगन की कली : शैलेन्द्र

4.1.3 मृत्यु बोध : ....

जीवन नश्वर है और मृत्यु शाश्वत । मृत्यु की शाश्वतता और जीवन की नश्वरता के आत्म स्वीकार के लिए अपने मानवीय पौरुष के बावजूद लाचार हो जाने के असामर्थ्य बोध की यंत्रणाओं को भोक्ता ही जानते रहे होंगे कि मृत्यु उनकी - मनुष्य की कितनी बड़ी पराजय है ।" *

मृत्यु की अविजित शक्ति को स्वीकारते हुए सिने गीतकारों ने भी पराजय मानी है :

दे दे के ये आवाज, कोई हर घड़ी बुलाए
जाए जो उस पार फिर, लौट के ना आए ....[2]

इक दिन बिक जाएगा, माटी के मोल ...[3]

मृत्यु का पर्यायवाची "वक्त" या काल भी है जो किसी को नहीं छोड़ता । इस नश्वर संसार का हर स्वरूप "वक्त" बदल कर रख देता है ।

जाने चले जाते हैं कहाँ दुनिया वाले पुष्पांजलि
सजन रे झूठ मत बोलो खुदा के पास जाना है ।
.. .. ..
वक्त से दिन और रात, वक्त से कल और आज
वक्त की हर शै गुलाम, वक्त का हर शै पे राज
वक्त की गर्दिश में है चांद तारों का निजाम ....[4]

---

* जनता और साहित्य : शैलेश मटियानी : पृ. 128

2 बंदिनी : शैलेन्द्र 3 धरम करम : मजरूह

4 वक्त : साहिर

मृत्युपरान्त, मानव की चेतना के साथ इस नश्वर संसार से कुछ जाता है। गीतकारों ने इस "कुछ" को "नेकी" कहा है :

नेकी तेरे साथ चलेगी बाबा
साथ यही इक बात चलेगी बाबा ....*

जन्म मरण का यह चक्र अनवरत और शाश्वत है :

आते है लोग जाते हैं लोग,
पानी के जैसे रेले .... .[2]

गीतकार मृत्यु रूपी नारी को सती और जिन्दगी को कुलटा की उपमा दे रहा है :

जिन्दगी तो बेवफा है एक दिन ठुकराएगी।
मौत महबूबा है अपने साथ लेकर जाएगी।[3]

मृत्यु अंतिम सत्य है। सबको एक न एक दिन इसके आगोश में समा जाना है फिर इसके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है।

मौत आनी है, आएगी एक दिन
जान जानी है, जाएगी एक दिन
ऐसी बातों से, क्या घबराना ....[4]

प्रिय अपने प्रियतम से बिछुड़ कर जीवन से मृत्यु को अधिक प्रिय समझता है।

---

*	आंसू और मुस्कान	:	इंदीवर
2	दोस्त	:	आनंद बक्षी
3	मुकद्दर का सिकंदर	:	अनजान
4	अंदाज	:	हसरत

ओ साथी रे, तेरे बिना भी क्या जीना
कांटों में, कलियों में, फूलों की गलियों में
तेरे बिना कुछ कहीं ना .... *

सारा संसार नश्वर है । केवल ईश्वर का नाम ही परम सत्य है और अकाल है ।

सारा जगत है झूठा साथी
टूटे दीपक बुझ जाए बाती
चाहे सांझ हो चाहे सवेरा,
ओ साथी नाम तेरा
तू श्याम मेरा .....[2]

मृत्यु सब समाज धर्म गत दायरों से परे है और वह बिना किसी हिचकिचाहट से सबका वरण कर लेती है ।

रंग और नस्ल नाम और दौलत
जिन्दगी कितने फर्क मानती है
मौत हद-बन्दियों से ऊँची है
सारी दुनिया को एक जानती है ...[3]

4.1.4 गीत प्रगति : ....

बीसवीं सदी के इस उत्तरार्द्ध तक की यात्रा मानव चेतना ने विचार करने और विचार किए हुए पर निरन्तर विचार करते रहने की

---

*	मुकद्दर का सिकन्दर	:	अनजान
2	जूली	:	आनंद बक्षी
3	आज का महात्मा	:	मजरूह

जिजिविषा के बल पर ही तय की है । यहाँ कहना आवश्यक नहीं होना चाहिए कि ये विचार की जिजिविषा ही मनुष्य के उत्कर्ष कामी होने की पहचान रही है और मनुष्य की उत्कर्ष-कामीता का क्षेत्र यदि रोटी कपड़ा और मकान तक ही सीमित रह गया होता तो यह संसार एक कपड़ा पहनने, रोटी खाने और मकानों में रहनेवाले पशुओं के संसार से भिन्न और कुछ न हुआ होता । .... *

चल रे मुसाफिर जब तक साँस चले
सूरज चले बदन झुलसा कर
चाँद चले आँसु ढुलकाकर .....[2]

यात्रा ही संपूर्ण और मंडल का एकमात्र उद्देश्य है । हर क्षण, हर रात, हर ग्रह अपनी धुरी के साथ साथ और मंडल की विशेष कक्षाओं में निरन्तर यात्रा कर रहा है । साथ ही सम्पूर्ण और मंडल भी सामूहिक रूप से अनन्त व्योम में यात्रा कर रहा है जिसकी मंजिल अज्ञात है । प्रकृति का दैन्यनदिन व्यापार - जल, वाष्प, मेघ, वर्षा, पदार्थों के बदलते हुए स्वरूप, वनस्पति, पशु जगत में रक्त की धमनियों में अनवरत यात्रा ही शाश्वत सत्य है ।

सिने गीतों में यात्रा के इस आयाम पर बहुविध प्रकाश डाला गया है । यथा :-

जीवन चलने का नाम,
चलते रहो सुबह शाम ।[3]

---

* जनता और साहित्य : शैलेश मटियानी : पृ. 60
2 मंझली दीदी : नीरज
3 शोर : इन्द्रजीत सिंह तुलसी

चलती हुई रेल अनवरत गति की प्रेरणा देती है :-

गाड़ी बुला रही है सीटी बजा रही है,
चलना ही जिन्दगी है,
चलती ही जा रही है ....*

आत्मा रूपी यात्रा को, परमात्मा तक पहुँचने में जो वाहन है वह है - मानव शरीर :-

आत्मा की अनन्त यात्रा में
यह तन तो इक रथ है .....[2]

किन्तु इस यात्रा को आज तक कोई समझ नहीं पाया क्योंकि मृत्युपरान्त मृतक की जीवात्मा का क्या होता है यह एक अनबूझी पहेली है ।

जिन्दगी का सफर है ये कैसा सफर
कोई समझा नहीं कोई जाना नहीं
है ये कैसी डगर, चलते है सब मगर
कोई समझा नहीं कोई जाना नहीं ...[3]

इस जीवन यात्रा में किस क्षण क्या हो जाये कोई नहीं जानता ।

जिन्दगी एक सफर है सुहाना
यहाँ कल क्या हो किसने जाना ....[4]

---

*	दोस्त	:	आनंद बक्षी
2	संत ज्ञानेश्वर	:	भरत व्यास
3	सफर	:	इंदीवर
4	अंदाज	:	हसरत

गीतकार यह प्रेरणा देता है मानव ने जो भी मंजिल सोची है एवं जो भी राह चुनी है उस पर वह निरन्तर चलता रहे तभी उसकी विजय है ।

जो राह चुनी तूने
 उसी राह पे चलते जाना रे
  हो कितनी भी लंबी रात
   दिया बन जलते जाना रे ....*

यह अनंत यात्रा अकेले ही तय करनी पड़ती है । मानव निर्मित सारे झमेले पीछे छूट जाते हैं ।

चल अकेला चल अकेला चल अकेला
तेरा मेरा पीछे छूटा राही चल अकेला ....[2]

प्रेम यात्रा एकांगी नहीं हो सकती उसमें मंजिल तभी मिल सकती है जब प्रेम यात्रा के दोनों यात्री नारी एवं पुरुष साथ साथ चले ।

दो कदम तुम भी चलो दो कदम हम भी चले
मंजिले फिर प्यार की आएगी चलते चलते ....[3]

....

सजन रे झूठ मत बोलो
खुदा के पास जाना है
ना हाथी है ना घोड़ा है
वहां पैदल ही जाना है ....[4]

---

* तपस्या : एम.जी. हशमत   2. सम्बन्ध : प्रदीप
3. एक हसीना दो दिवाने : शैलेन्द्र   4. तीसरी कसम : शैलेन्द्र

अपनी सामर्थ्य से परे की नियतियों, व्यवस्थाओं, शक्तियों और सत्ताओं ने मानवीय चेतना को सदैव ही प्रश्न हत किया है और उसे शक्तिशाली के आगे आत्म-समर्पण की नियति या शक्तिशाली के साथ संघर्ष की चुनौती इन दो में से किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बाध्य किया है ।

शक्तिशाली नियतियों व्यवस्थाओं और सत्ताओं के तात्कालिक दबाओं के आगे अपने असामर्थ्य की अनुभूति प्रत्येक व्यक्ति को होती है और मानवीय चेतना इनसे निरंतर आहत होती रहती है । नियति अथवा व्यक्ति अथवा व्यवस्था की शक्तिमत्ता यदि मनुष्य के लिए आत्मसम्मत नहीं हो तो उसके आगे अपने असमर्थ होने के निष्कर्ष पर पहुँच जाने के बाद भी मनुष्य की प्रश्नाहत चेतना की फिर एक और महत्वपूर्ण यात्रा प्रारम्भ होती है । पराजय और निरुपायता का बोध देनेवाली नियति और निष्कर्षों से मुक्ति की खोज की यात्रा । *

जाने चले जाते है कहाँ
दुनिया से जाने वाले,
कैसे ढूँढे कोई उनको,
नहीं कदमों के भी निशाँ
जाने हैं वह कौन नगरिया,
आए जाए खत ना खबरियाँ ....[2]

---

* जनता और साहित्य : शैलेश मटियानी : पृ. 101

2 पुष्पांजलि : आनंद बक्षी

4.1.5 संत्रास : ....

आज का युग संत्रास, संघर्षों, अन्तर्विरोधों, तनावों, अनिश्चय, सन्देहशीलता का युग है । इस परिस्थिति ने मानव-मन को जटिल बना दिया है । आज का आदमी यौन वर्जनाओं का पुंज है । उसकी अवचेतनगत काम सम्बन्धी कुंठाओं और उलझी हुई संविदनों ने उसमें अनेक मानसिक विकार एवं रोग उत्पन्न कर दिये हैं । उसका अस्तित्व बोझिल और विकृत हो गया है । आज ऐन्द्रियता ही उसके लिये मुख्य हो गयी है । ऐसी अवस्था में उसमें संत्रास एवं मृत्युबोध के अलावा और क्या व्याप्त हो सकता है ।

सिने गीतों में इसी मानसिक स्थिति को लेकर अनेक गीतों की रचना होती रही है जिनमें गहरी मानसिक चेतना, एवं सूक्ष्म मानवीय प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति की गई है ।

समाज के नैतिक मूल्यों के संदर्भ बदल चुके हैं । प्रशासन, शासन, शिक्षा, संस्कृति, सब भ्रष्ट हो गए हैं । दोष किसका है और कहाँ है - नहीं दिखता । जीवनधारा अवरुद्ध हो गई है । नैसर्गिक प्रेम स्नेह छुप गए है .;.... *

जाऊं कहाँ बताए दिल, दुनिया बड़ी है संगदिल
कहती है जिन्दगी, इस जहाँ से निकल... *

इस प्रेम शून्य संत्रास युक्त और विषाक्त वातावरण में जीता हुआ मानव यह सोचने को विवश है : -

---

* छोटी बहन : शैलेन्द्र

शायद मेरे हाथ में जीत की रेखा नहीं
जो भी मैंने चाहा, उसे होते हुए देखा नहीं
पा सका ना मै कुछ, जो जी में प्यार हुआ
आज मैं अकेला हूँ, एक बेसहारा हुआ .... *

संत्रास जन्य मनोस्थितिवाला आदमी जिन्दगी से विद्रोह करने को तत्पर है :

एक हसरत थी कि आंचल का मुझे प्यार मिले
मैने मंजिल को तलाशा मुझे बाजार मिले
जिन्दगी और बता तेरा इरादा क्या है ....[2]

वह नकारता है सारे संबंधों को, सारे रिश्तों को और जी भर के कोसता है सारी व्यवस्थाओं को :

मुझको पैदा किया, संसार में दो लाशों ने
और बरबाद किया, कौम के ऐयाशों ने .....[3]

और उसकी सारी आशाएं, सारी कल्पनाएं, मुट्ठी में रेत की तरह फिसल जाती है - उसके हर कदम पर परिवेशजन्य अवरोध उसे नेस्ताबूद करने के लिए मुंह बाए खड़े रहते हैं ।

आज का मध्यमवर्ग इस संत्रास से सर्वाधिक पीड़ित है । भौतिक साधनों की होड़ में वह अपने आय स्तर को अनदेखा कर ऋणों से

---

* क्रान्ति : संतोष आनंद
2 जिन्दगी और तूफान : रामावतार त्यागी
3 जिन्दगी और तूफान : रामावतार त्यागी

उन्नयन भी संत्रास से मुक्ति का रास्ता बन सकता है :

हूँ बहुत नादान करता हूँ ये नादानी
बेचकर खुशियाँ खरीदूँ आँख का पानी ....*

संत्रास बोध की छटपटाहट से मुक्ति का एक उपाय ये भी है कि मनुष्य अतीत की कालिमा पर वर्तमान की आशा ज्योति प्रकाशित कर लें :-

छोड़ो कल की बातें - कल की बात पुरानी
नए खून से लिखेंगे हम, मिलकर नई कहानी ...[2]

संत्रास से मुक्ति के लिए रास्ता तो है अगर कोई व्यक्ति इस बात के लिए उत्सुक है कि दुनिया में शांति हो और युद्ध न हो हिंसा ना हो, तो सबसे पहले उसे इस बात पर विचार करना होगा कि उसके स्वयं के जीवन में दुख ना हो । अगर आप अपने जीवन में चौबीस - घंटे खुशी बिखेर रहे है, खुशबू और सुगन्धि बिखेर रहे हैं तो आप युद्ध के खिलाफ काम कर रहे हैं । आप ऐसी दुनिया के बनाने के काम में लगे हुए हैं जहाँ युद्ध नहीं हो सकेंगे .....[3]

निश्चय हो ऐसी स्थिति में मानव संत्रास रहित जीवन व्यतीत कर सकता है :

प्यार बाँटते चलो प्यार बाँटते चलो
क्या हिन्दू क्या मुसलमान हम सब है भाई भाई .. [4]

---

* पहचान : धर्मा मलिक

2 हम हिन्दुस्तानी : प्रेम धवन

3 आठों पहर यूं झूमते : रजनीश : पृ.55-56

4 उपकार/? (एकामंद)

5.2 सामयिक

4.2.1 आवारापन : ....

भारत वर्ष के महान स्वतन्त्रता संग्राम के बाद की जो पीढ़ी युवा हुई उस पीढ़ी के सम्मुख कोई ठोस उद्देश्य नहीं था और सदियों बाद की जो स्वतन्त्रता उन्हें मिली उसने उन्हें स्वच्छन्द बना दिया यही स्वच्छन्द धारा जो भारत के युवा मन में बह रही थी उसे सिने निर्माताओं ने समझा और व्यवसायी तौर पर उसे बधिर माना । राजकपूर ने तो इसी आशय की एक फिल्म बना डाली -

आवारा हूँ,
या गर्दिश में हूँ आस्मान का तारा हूँ । *

हालांकि परोक्ष में इस गीत के पीछे यह भावना है कि जो भारत विकासोन्मुख है वह अकेला है गर्दिश में है, लेकिन एक समय था जब भी विश्व का नेतृत्व किया करता था अर्थात् आस्मान का नक्षत्र था । किन्तु वास्तव में 1950 के बाद की फिल्में एक गैर जिम्मेदाराना अंदाज जो युवावर्ग में जड़े जमा चुका था उससे अछूती नहीं रह सकी और 1960 के बाद तो जो नायक सिने में प्रस्तुत किया गया उसका रूप एक उदंड, उच्छृंखल, कामातुर एवं भ्रामरी प्रवृत्तिवाला रहा । इसके साथ साथ फिल्मकार उसे आदर्शवादी का मुखौटा देते रहे -

मैं तो चला, जिधर चले रस्ता,
मुझे क्या खबर है, कहाँ मेरी मंजिल ।[2]

---

* आवारा

2 धड़कन : प्रेम धवन

अनेक फिल्मों में ये आवारा नायक सड़कों, गलियों, कालेजों में लड़कियों को छेड़ता फिरता रहा है ।

तेरी वो चाल है कि तौबा, ऐसा कमाल है कि तौबा
मेरा वो हाल है कि तौबा ....*

इश्क मोहब्बत की बातों के सिवा उसके पास न कोई लक्ष्य था ना कोई मंजिल :

गेसुओं में रात खोई, दिन भी मेरा खोया ।[2]
.. .. ..
गुजर गए दिन दिन दिन
कि हर पल गिन गिन गिन
किसी की हाय यादों में
किसी की हाय बातों में .....[3]

सिनेमा का नायक रीतिकालीन कवियों के नायक की याद ताजा करा देता है । जहाँ वह नायिका की तस्वीर या उसकी स्मृति में सुधबुध गंवा बैठता है :-

तस्वीरों से मरता हूँ, वक्त गुजरा करता हूँ,[4]
....
रूप तेरा मस्ताना, प्यारा तेरा दीवाना
भूल न हमसे कोई हो जाए . ...[5]

---

* आज का महात्मा : मजरूह सुलतानपुरी
2 पतंगा : इंदीवर 3 अन्नदाता : योगेश
4 जाने मन : आनंद बक्षी 5 आराधना : आनंद बक्षी

आज का युवा वर्ग आवारा एवं दिशाहारा हो गया है तथा चारवाक के सिद्धान्त को अपनाना चाहता है :

बम्बई से आया मेरा दोस्त,
दोस्त को सलाम करो
रात को खाओ पियो
दिन में आराम करो .....*

....　　　　....　　　　....

खातून की खिदमत में, सलाम आपुन का
पोट्टी पटाना है फक्त काम अपुनका ....[2]

नायक की तरह नायिका भी वाचाल और आवारगी को तरफ झुकती नजर आती है :

ओ लड़के मक्खन से, झगड़ मत आपनसे
हंसकर कर ले प्यार, तेरा क्या बिगड़ेगा
मैं तुम पर मरती हूँ, तेरा दम भरती हूँ ....[3]

वह अपने यौवन का प्रदर्शन करती हुई नायक को उकसाती है :

मेरे इश्क में लाखों लुटके, बलम जरा हटके
मारूंगी आँख तो, नील पड़ जाएगा
बलम जरा हटके ....[4]

---

* आपके खातिर　　　2 देश प्रेमी : आनंद बक्षी

3 गंगा तेरा पानी अमृत

4 मौसम

4.2.2 नशा : ... .

शराब आत्मा और शरीर दोनों को कमजोर बनाती है । शराबी व्यक्ति अच्छे बुरे के अन्तर को भूल जाता है ।

दो घूंट मुझको पिला दे शराब
देख फिर होता है क्या .... *

....

इक बोतल हो बगल में और हाथ में हो एक जाम
मैं खाने में आ बैठो और अपनी प्यास बुझा लो
देखो जन्नत मिल रही है कितने सस्ते दाम ...[2]

पूंजीवादी सामाजिक ढांचे से शोषित व्यक्ति उस ढांचे को तो नहीं बदल सकता है किन्तु शराब पोकर अपने दुख भुलाने की नाकाम कोशिश में तबाह होता है ।

मैंने पी शराब, तुमने क्या पिया ?
आदमी का खून ....
मैं जलील हूँ - तुमको क्या कहूँ ....[3]

पीने वालों को उपदेश बहुत बुरा लगता है । मरने के समय भी शराबी गंगाजल की जगह मदिरा की दो बूंदे ही पीना चाहता है :

---

*	झील के उस पार	:	आनंद
2	सास भी कभी बहू थी	:	राजेन्द्र कृष्ण
3	नया रास्ता	:	साहिर

पीनेवाला मरते मरते
बस करता यही वसीयत
पंडित जो मेरे मरने के बाद इतना कष्ट उठा लेना
मेरे मुंह में गंगा जल की जगह थोड़ी मदिरा टपका देना..*

मदिरा प्याले को लेकर भी कई गीत लिखे गये है । शंकर के नाम पर भंगोड़ियों के जमघट में भी पीकर मदहोश होती हुई नारी अपने प्रेमी को :

जय जय शिवशंकर कांटा लगे न कंकर
कि प्याला तेरे नाम का पिया ....[2]

बिना मदिरा पान के पीने वाला कोई हरकत नहीं कर सकता । पीने के बाद ही वह अपनी हरकत पर उतरता है ।

मेरे प्याले में शराब डाल दे फिर देख तमाशा ....[3]

सिने गीतों में नायक प्रेम के असफल होने के बाद मदिरा पान शुरू कर देता है । देवदास प्रकृति वाला नायक सिनेमा में अधिकतर चित्रित किया जाता रहा है ।

जिन्दगी का गम भुलाने के लिये
शराब का सहारा मैंने लिया .....[4]

मदिरा से भी प्यास न बुझे तो क्या किया जाय ।

---

*	रोटी, कपड़ा और मकान	:	वर्मा मलिक
2	आपकी कसम	:	आनंद
3	अमीर गरीब	:	आनंद
4	दिल की राहें	:	नक्श लायलपुरी

शून्य में भटकता हुआ संत्रस्त मानव मन उत्तर की खोज में ।

ना जाने क्या हो जाता
ना जाने क्या कर जाते
पीते हैं तो जिन्दा हैं
न पीते तो मर जाते ..... *

पिछले कुछ दशकों से पश्चिम की देखा देखी {एल.एस.डी.} चरस, अफीम, आदि मादक द्रव्यों का सेवन भी युवा-संत्रास ग्रस्त वर्ग में बढ़ गया है ।

दम मारो दम मिट जाए गम
बोलो सुबह शाम
हरे कृष्णा हरे राम ....[2]

4.2.3 <u>जुआ और सट्टा</u> : ....

जुए को किसी देश, किसी धर्म और किसी काल में भी अच्छा नहीं माना गया । फिर भी इसका अस्तित्व ज्यों का त्यों विद्यमान है । पहले ये चौसर था तो आज ताश है । पहले रथ दौड़ था तो अब घुड़दौड़ :

ताश के बावन पत्ते, पंजे छक्के सत्ते
अरे सब के सब हरजाई, मैं लुट गया राम दुहाई
राजा नल और पांडव हारे, पर हिम्मत न हारे
अरे जाते जाते हो जाये इक बाजी प्यारे ...[3]

---

* अमर प्रेमम : आनंद 2 हरे कृष्ण हरे राम : आनंद
3 तमन्ना : आनंद बक्षी

काटन एक्सचेंज में रूई के खुले एवं बंद भाव पर करोड़ों का सट्टा खेला जाता था अब उसी का एक रूप मटका भी है। 0 से 9 तक के अंकों पर यह जुआ खुला बाजार एवं बंद बाजार के नाम से होता है। इस के प्रणेता बम्बई के श्री रतनलाल खत्री है। इनके जीवन पर "रंगीला रतन" नामक फिल्म भी बनी थी।

मटका बेटा खेल मत मटका
मटके में जो दिल अटका तो पड़ जाएगा झट का
बेच के अपना सब कुछ एक दिन घर कर देगा खाली
फिर न मिलेगा मटका तुझको और न लोटा थाली..*

जुआरी को समाज ने कभी आदरपूर्ण दृष्टि से नहीं देखा। और उसका सदैव तिरस्कार किया गया।

मैं हूँ बदनाम जुआरी, मैं हूँ बदनाम जुआरी
हर दाव ज़माना जीता, हर बाजी मैंने हारी...[2]

जुए को अवैध करार करनेवाली सरकार ने जो लाटरी चला रखी है वह जुआ नहीं तो क्या है।

रोजी के लिये पहले बहाते थे पसीना
अब लखपति होने लगे एक महीना
सरकार ने खोला है जो ये लाटरी सिस्टम
नम्बर कहीं लग जाये तो फिर जीना ही जीना...[3]

---

*	अन्जान है कोई	:	असद भोपाली
2	जुआरी	:	आनंद बक्षी
3	प्रीतम	:	हसरत

4.2.4 पैसा : ... .

एक विद्वान के अनुसार - "पूंजीवादी व्यवस्था जिन्हें आर्थिक सुविधाएं देती है, उनके लिए निजी स्वार्थों का दलदल तैयार किए रहती है और जिन्हें आर्थिक विपन्नता के बीच जीवित रहने के दारूण संघर्ष में जकड़ती है उनके लिए आर्थिक शोषण का एक अंतहीन रेगिस्तान पसारती चली जाती है ।

पूंजीवादी व्यवस्था के भीतर उसके आर्थिक ढांचे की जकड़ से बचना किसी भी व्यक्ति के लिए संभव नहीं है । वह चाहे प्रशासनिक अथवा आर्थिक प्रतिष्ठानों के भीतर हो या उनसे बाहर । पूंजीवादी व्यवस्था को विषैली संक्रामकता से मुक्ति नहीं होती - ना भीतर और ना बाहर । यह अमानवीय व्यवस्था मानव समाज का सिर्फ आर्थिक शोषण ही नहीं करती, बल्कि नैतिक और बौद्धिक स्तर पर भी दूषित करती है । *

इस व्यवस्था में पैसे का मूल्य बढ़ता गया है और आदमी का मूल्य घट गया है :

ला ला ला, पैसा ये पैसा, पैसा है कैसा
नहीं कोई ऐसा, जैसा ये पैसा ....
प्रेम देखा, प्यार देखा, यारी देखी, यार देखा,
दिल के आरपार देखा - ये सारा संसार देखा
ऊपर नीचे अन्दर बाहर दूर पास मौसम इक जैसा ।[2]

---

* जनता और साहित्य - शैलेश मटियानी : पृ. 138-138

2 कर्ज : आनंद बक्षी

जहाँ धन का अभाव मनुष्य में हीन भावना भर देता है वहीं उसकी अधिकता उसमें अहंकार को जागृत कर देती है :

चार पैसे क्या मिले खुद को समझ बैठे खुदा
खुदा ही जाने अब होगा तेरा अंजाम क्या
काहे पैसे पे इतना गरूर करे है
यही पैसा तो अपने से दूर करे है । *

इस धन का प्रयोग सिने गीतों में अनेक रूप में हुआ है । कहीं ये धन धरती का तो कहीं ये प्रेमियों के बीच चाँदी की दीवार है तो कहीं कुछ और :

अब कोई गुलशन न उजड़े
अब वतन आजाद है
आज सबके वास्ते धरती का
धन आजाद है ....[2]

सिने गीतकार किस्मत को खुली चुनौती दे रहा है । पैसा ही देवता है और यह देवता कुछ चंद नर-पिशाचों के यहाँ कैद है :

किस्मत भी चल रही है हमसे चाल हर कदम
इक चाल हम भी चल दिए तो हो गया सितम
अब तो चलेंगे चाल हम किस्मत के साथ भी
पैसा बना संसार की बाहों का देवता ....[3]

---

*	लावारिस	:	अनजान
2	मुझे जीने दो	:	साहिर
3	गुनाहों का देवता	:	शैलेन्द्र

जब प्रेम मात्र धन के लिये पढ़ाया हो जाता है तो पीड़ा असह्य हो उठती है :

चाँदी की दीवार ना तोड़ी
प्यार भरा दिल तोड़ दिया
इक धनवान की बेटी ने
निर्धन का दामन छोड़ दिया ... *

4.2.5 <u>जनसंख्या</u> : ....

भारत वर्ष की मूल समस्या बढ़ती हुई जनसंख्या है । सरकार की अनेक कोशिशों के बब बावजूद धर्मान्धता एवं निरक्षरता एवं पारिवारिक कारणों की वजह से जनसंख्या पर अंकुश कम ही लग पा रहा है । सिने गीतकारों ने इसे अपना विषय बनाया है ।

कुछ ऐसे लोग भी होते हैं
अपनी गलती पर रोते हैं
अपना तो पेट नहीं भरता
पर दस दस बच्चे होते हैं ... [2]

गणित सिद्धान्त के अनुसार 1 + 1 = 2 होते हैं किन्तु जीवन में 1 + 1 = 3 भी हो सकते हैं और 13 भी ।

जब दो जवाँ दिल मिल जायेंगे
तब कुछ न कुछ तो होगा
दो से चार हो सकते हैं । चार से आठ हो सकते हैं ।
आठ से साठ हो सकते हैं ।[3]

---

* गायक मुकेश 2 यादगार : इंदीवर 3 कसौटी : वर्मा मलिक

अधिक संतान की निरर्थकता का अहसास होने पर भी संतानों का जन्म क्यों, क्या आर्थिक विषमता एवं संत्रास इसका कारण है - संतान ईश्वरीय वरदान है फिर अभिशाप क्यों बन गई ।

पप्पू के पापा तू मुन्ना के दादा
ये लाइन लगा दी बच्चों की,
क्या मिला है फायदा .... *

..   ..

ए सुन वो फैमिली प्लानिंगवाला चिल्लारिया है
हम दो और हमारे दो का नारा लगा रिया है
और तू बच्चे पैदा किए जा रिया है ....[2]

4.2.6 भ्रष्टाचार :   ....

आज के समाज में हर श्रेणी का व्यक्ति भ्रष्टाचार एवं स्वार्थ में लिप्त है । हर व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये दूसरे का अहित करने को पीछे नहीं हटता है :

रघुपति राघव राजाराम
भर दे भर दे मेरे गोदाम
भूखा मर जाये देश तमाम
सब कुछ लिख दे मेरे नाम ...[3]

ये युग नकली चहरों का युग है । अपने मतलब की सुनना बाकी

---

*	संतान	:	वर्मा मलिक
2	कैद	:	माया गोविंद
3	दो मासूम	:	हसरत

[illegible]
गया है :

जो मालिक है वह बहरा है
जो नौकर है वह बहरा है
जो बाबू है वह बहरा है ..... *

सामाजिक ढांचे से दुखी नारी मन विद्रोह कर उठता है । दहेज की कुप्रथा से तंग आकर वह आत्महत्या या अनमेल विवाह के बारे में भी सोचती हैं :

फूंक लूंगी मैं बदन, आग लेके चूल्हे से
कर लूं-गी मैं निकाह, किसी भंगडे लूले से ...[2]

भ्रष्टाचार, बेईमानी, धोखा इस युग का युग-धर्म बन गये हैं । समाज के साथ साथ मिलावट खाने-पीने की चीजों में बहुत बढ़ गया है जिससे भयंकर रोग जन्म ले रहे हैं ।

दूध में पानी घी में मैदा, आटे में भी मिलावट है
दाम अगर दो चावल के, तो पत्थर हाथ में आता है
हल्दी में है पीली मिट्टी, घास मिली है धनिया में...[3]
....

आज हर वस्तु में मिलावट है । यहाँ तक की जहर में भी मिलावट हो गई है ।

---

*   कैद   :   माया गोविंद
2   दुनिया का मेला : आनंद
3   बिरादरी   :   राजेन्द्र कृष्ण

प्यास लगे तो दूध पियो, दूध में पानी मिलता है,
मावा हैं सिंघाडे का क्या जालिम हलवाई है
आटे में मिट्टी चावल में कंकर बेहिसाब है
जहर दवा में शामिल है, जहर दवा से बेहतर है ... *

..   ..   ..

तम्बाकू में घास का खतरा
सेंट में झूठी बास का खतरा
मक्खन में चरबी की मिलावट
केसर में कागज की मिलावट ....[2]

4.2.6 विद्यार्थी :   ....

देश की शिक्षा प्रणाली और छात्र समस्या विकरात रूप धारण कर चुकी है । छात्र दिशाहीन शिक्षा प्रणाली के शिकार बन चुके हैं । शिक्षा-व्यापार बनी है । छात्र इस विडंबना को समझ चुका है । अतः अपना शिक्षा का समय स्वतन्त्र एवं उन्मुक्त जीवन बिताने में लगाता है - सिग्रेट, सिनेमा, श्रृंगार, हड़ताल आदि में उसे अधिक रस आता है ।

ये आज कल के लड़के, लिखतें ना पढ़ते हैं
फैशन फिर देखो, बे पर के उड़ते हैं
बाल इनके देखो, फिर गाल इनके देखो
ये चाल इनकी देखों, कबूतर कबूतर ....[3]

---

*	दो जासूस	:	हसरत
2	नीलकमल	:	साहिर
3	दिल्लगी	:	मजरूह

आज का युवा वर्ग दुर्व्यसनों में पड़कर अपना स्वास्थ्य भी नष्ट कर रहा है और संस्कृति भी :

अरे हत्त तेरी ऐसी तैसी, सूरत है लड़की जैसी ।
तंग पैंट पतला टागें, लगती है सिगरेट जैसी
देश का यही जवान है तो, देश की यही संतान है तो
फिर उसके बाद ..... *

....

5.3 वर्तमान समाज में नारी :

समकालीन लेखकों ने पुरुष के अत्याचार सहती हुई नारी के प्रति जागरूकता दिखाई है :

"मैं तुम्हें युगों युगों से जानती हूँ, लेकिन तुम मुझे हर बार भूल जाते हो । मैं एक प्रवंचिता उपेक्षिता बुभुक्षिता नारी हूँ । इस संसार ने मुझे सदैव छला है । अनवरत मेरा शोषण किया है और मैं धरती की तरह सारे कष्टों को सहन करती जा रही हूँ ।"[2]

कुछ आलोचक वेश्या समस्याओं को लेकर लिखे गए गीतों एवं उनकी समस्याओं को मात्र एक ढकोसला मानते हैं और उनका ये विचार है कि सिनेमा उन समस्याओं को विकृत रूप ही प्रस्तुत कर रहा है ।

धनार्जन के लिए :

"हिन्दी फिल्मों की सबसे बड़ी त्रासदी ये रही है कि वह समस्याओं के विकृत रूप को अपने सतरंगी परदे पर प्रस्तुत करके यह

---

* यादगार : इंदीवर

2 पुनरागमन : ओमप्रकाश निर्मल : साप्ताहिक हिन्दुस्तान 5-11 दिसम्बर, 1982

हिसाब किताब जोड़ने में व्यस्त रही है कि उसके माध्यम से वह कितना अधिक से अधिक धनोपार्जन कर सकती है । भारत जैसे निर्धन देश में जहाँ समस्याओं के अथाह बदसूरत चेहरे खड़े हों उनमें से किसी एक को भी लेकर सतही तौर पर फिल्मों में पेश कर दिया जाए तो दर्शक अपनी ही बिरादरी में पलते रोग को देखकर विचलित होने के बजाए झूम उठता है । ताली पीटने लगता है, दाद देने लगता है । यह है आज के कुंद होते माहौल की विडम्बना जिसे व्यावसायिकता की पोशाक पहनाकर हमारा फिल्मकार जम कर भुना रहा है ।" *

उपरोक्त कथन एवं एक बुद्धिजीवी के चश्में को पहनकर फिल्म माध्यम को परखने का एक पक्षी प्रयत्न है । फिल्मकार समस्याओं को कुनैन की गोली की तरह नहीं अपितु उस पर एक शक्कर की केप्सूल सी पहनाकर प्रेक्षक के सामने इस तरह प्रस्तुत करता है कि बात पहुंच भी जाए और प्रेक्षक के सर पर उपदेशिता का वजन भी न लादे ।

लकड़ी जल कोयला बनी, कोयला बना है धूल
मैं पापन ऐसो जली कोयला बनी न धूल ...[2]

चित्रपट में नारी के विविध रूपों का चित्रण किया जाता रहा है । कहीं वह बेटी है, कहीं बहन, कहीं प्रेमिका, कहीं माँ, कहीं पत्नी, कहीं सेविका, कहीं कलाकार, कहीं कर्मकार, (नौकर) कहीं वेश्या तो कहीं जोगन, कहीं शहरी आधुनिका तो कहीं ग्रामीण बाला ।

---

* अतुल कुमार : धर्मयुग : 26 दिसम्बर, 1982
पृ. 11

2 छुपा रूस्तम : नीरज

नारी को पुरूष की अर्द्धांगिनी कहा गया है इसलिए जहाँ भी पुरूष है नारी किसी न किसी रूप में उससे जुड़ी हुई है । भारतवर्ष में नारी को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है । वह जननी है । पिछली कुछ शताब्दियों में नारी का यह गौरवशाली रूप विकृत कर दिया गया था और उसका अत्याधिक शोषण अनगिनित रजवाड़ों और रियासतों में होता रहा ।

विवेकानन्द एवं अन्य समाज सुधारकों ने नारी शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई और नारी को समानता का दर्जा देने के बारे में समाज सोचने लगा । घर की चार-दिवारियों के बाहर भी नारी का कार्य-क्षेत्र विस्तृत हुआ ।

युगों युगों से नारी देह नीलाम की जा रही है । खुले आम बोली लग रही है, जैसे नारी पशु या कोई उपयोगी की वस्तु है । नारीत्व की महानता और आदर्शवाद को खंडित करता हुआ एक नग्न सत्य .....

परदा नशी हसीना, नीलाम हो रही है
गलियों में अब उसका, दीदार बिक रहा है ....*

नारी-पुरुष के अत्याचार से विद्रोहिणी होकर स्वयं को आवारा और उच्छृंखल घोषित कर देती है और झोपड़ी का बम बन जाती है जो विस्फोट को सदा तत्पर है ।

पटाखा फुलझड़ी - ना - ना
पटाखा फुलझड़ी न मैं हूँ बाबू झोपड़ी का बम,
खुली सड़कों पे पली, खिली गलियों में कली....[2]

---

* अलीबाबा और चालीस चोर : आनंद बक्षी 2 स्वामी दादा : अनजान

पुरुष के आश्रय को ललकती हुई नारी उसके नाकारने पर उसे स्त्री वेश पहनने का ताना देती है और उसकी रक्षा न कर सकने पर उसे हिजड़ा करार देती है :

जाते हो तो जाओ पर इतना सुनलो
थोड़ी चूड़ियाँ पहन लो एक घघरा सिलवा लो
औरत की हिफाजत जो कर न पाए
उस मर्द को क्या कहते है, ये तो बताओ.... *

वर्षा के मादक वातावरण में सरेआम गुहार लगाती हुई नव यौवना काम-पीड़ा से व्याकुल है :

सांवली घटा से शराब बरसे
दिल से राज खुले, फिजां में रंग घुले
जवां दिल खुल के निकले रे, आज बहक जाए तो
हमें ना बचइयों ।[2]

नारी द्वारा पुरुष प्रेम शिक्षा युगों से दी जा रही है । पुरुष को प्रेम करना नहीं आता - प्रेम केवल वासना नहीं उपासना है ।

प्यार नहीं कोई वासना, ये तो एक उपासना
समझे नहीं समझे, आओ तुम्हें मैं समझा दूं
आओ तुम्हें मैं प्यार सिखा दूं ....[3]

शारीरिक आयाम पर रति सुख के लिए तरसती नारी मन्तर-जन्तर की शरण को भी तैयार है । रति सुख एक प्राकृतिक

---

* देश प्रेमी : आनंद बक्षी 2 नमक हलाल 3 उपासना

आवश्यकता है :

कोई मन्तर मार दे ऐसा
कोई जन्तर कर दे ऐसा
मेरा दर्द मिट जाए
मुझे चैन आ जाए ...... *

अनुभव द्वारा पिया मिलन के रस को जानने को आतुर एक नवयौवना सखि विवाहिता से अपनी सुहागरात का ब्यौरा बताने को कहती है :

दुल्हनिया बता दे री, घूंघटा हटा के
आ बतिया सुना देरी सजना के संग में
कैसे कैसे ढंग में काटी तूने रतिया ....
घूंघटा हटाके ...[2]

नारी स्वभाव एकाधिकार चाहता है । सौत से भयभीत नारी पति से विनंती करती कि तुम्हें जहाँ जाना है जाओ पर सौतन के साथ नहीं जाना ।

नदी नारे न जाओ श्याम पैंया पडूं
उस पारे जो जाओ तो जइबे करो
संग सवतिया न लाओ,
श्याम पैयां पडूं ....[3]

नारी जब व्यापार विक्रय पर निकलती है तो उसको अपनी

---

*	निर्दोष :	असद भोपाली
2	छोटी बहू :	उद्धव कुमार
3	मुझे जीने दो :	साहिर

ही छटा होती है । बेचने को अंदाज निराला होता है जो पुरुष विक्रेता में नहीं मिलता - नारी सुलभ - नाजो अंदाज नखरे अदाये सब एक दूसरे में गड्मड हो जाते हैं और नारी विक्रेता सफल हो जाती है :

बेर ल्यों बेर ल्यों बेर ल्यों
रख मेरे बेर अरे तू तो बड़ा तेज है
पैसे ले चला है जैसे जोरू का दहेज .... *

कटवाली अपने आप में जन संगीत की एक मुख्य मनोरंजक विधा है । जब कटवाली कोई नारी गाये तो रंग और ही हो जाता है :

बिजली थी इक जो हमने छुपा ली नकाब में
अरे लग जाती वरना आग तुम्हारे शबाब में ...[2]

बिदाई के समय बेटी जो माँ से बिछुड़ रही होती है उसके उद्गार माँ के सीने को चीर डालते हैं । इन्हीं क्षणों में बेटी एक दम से बड़ी हो जाती है और बचपन को विसर्जित कर देती हैं :

आ माँ ए मिल ले गले, चले हम सुसराल चले
तेरे आँगन में अपना बस, बचपन छोड़ चले
कल भी सूरज निकलेगा, कल भी पंछी गाएंगे
सब तुमको दिखाई देंगे, पर हम नजर ना आएंगे ...[3]

प्रेमिका यदि रूप गर्विता हो तो वह सदैव अपने रूप से नायक

---

* पैसा या प्यार : साहिर

2 निकाह

3 प्रेम रोग : संतोष आनंद

पर अधिकार जमाना चाहती है । प्रेम मानसिक है । रूप का गर्व शारीरिक सुन्दरता पर आधारित है । केवल सुन्दर ही प्रेम कर सके ऐसा प्राकृतिक नियम नहीं है :

मुझे प्यार में खत किसी ने लिखा है,
हसीनों से यूं शर्म आती हो जिसको
मुहब्बत का दावा करें वो तो कैसे
ये क्या खूब महबूब मुझ को मिला है
बहुत कम जमाने में आशिक है ऐसे ..... *

गौरवर्णा नवयौवना नायक की ललचाई नजरों से भयभीत है :

अभी बचपना अभी लड़कपन, और नादान उमरियां
गोरे बदन को छू न जाये, काली तेरी नजरियां
ये अंखियां ना मार मुड़िया, मेरी जान निकलती जाये..[2]

बंजारा समाज स्वभाव से घुमक्कड़ और संसार को तमाशे के रूप में जीने वाला होता है । उसका जीवन दर्शन है कि इस तमाशे या मेले में कुछ प्यार से कुछ प्यार दे प्रेम की भाषा का मोहताज नहीं, उकार-ईकार सीत्कार ही प्रेम की सहज भाषा है :

उऊ तमासा उई उई तमाशा
ले जा प्यार जरा सा
दे जा प्यार जरा सा
प्रेम की भाषा उई उई .....[3]

---

* हेरा फेरी : अनजान 2 सावन भादो : वर्मा मलिक
3 क्रान्ति :

विदा होती हुई दुल्हन के मन के अंतरंग भाव सबसे एक अलगाव का अहसास भूतकाल से वर्तमान के पुल द्वारा भविष्य में पदार्पण करने का क्रम एक अनजाने पति के प्यार में बंधने का आदर्शवादी संकल्प :

मेरे गुन अवगुन बिसरा दो जो
जाती बार गले से लगा ली जो
मैं लाज का घुंघटा ओढ़े हुए
पग चूम चली हैंठ छोड़ चली ... *

प्रेम में प्रतीक्षा बड़ी पीड़ा जनक स्थिति होती है और जब ये प्रतीक्षा लम्बी हो जाये तो प्राण त्याग की अवस्था आ जाती है ।

प्रिय की स्मृति में विरहिण को प्राणों के क्लेश के समान पीड़ा होती है और सम्पूर्ण एवं प्रकृति रूदन करती जान पड़ती है :

याद आ रही है, तेरी याद आ रही है
याद आने से तेरे जाने से, जान जा रही है
ये रूत ये रंगरलियाँ, ये फूलों की कलिया रो पड़ी...[2]

प्रेम पाश में बंधने के बाद प्रेमी युगल विशेषकर नारी को अपना घर बसाने की चिन्ता हो जाती है । वे दिन रात अपने घर की मधुर कल्पना में खोई रहती है :

देखो मैंने देखा है इक सपना
फूलों के शहर में घर अपना
क्या समाँ है, तू कहाँ है
मैं आई आई आई आई आ जा ....[3]

---

* प्यार का बन्धन : साहिर 2. लव स्टोरी 3 लव स्टोरी

प्रेमिका का प्रेमी मन प्रेम के नैसर्गिक गुण के कारण सारी प्रकृति में अपना हम जोली देखता है । कोयल का पंचम स्वर उसकी दुनिया को डोलायमन कर देता है ।

कोयल बोली दुनिया डोली, समझो दिल की बोली
फूल पवन बादल पंछी, सब है अपने हम जोली.... *

रूपगर्विता नायिका अपने अंग प्रत्यंग की सुन्दरता और भंगिमाओं के साथ नायिका को चुनौती दे रही है ।

कोई आँख मिला के देखे, कोई प्यार जता के देखे
दिल वालों ले के आई हूँ, मैं आँखियों के बान...[2]

माँ का प्रेम निस्पृह निश्छल होता है जो प्रतिदान नहीं माँगता । बेटे को जिन्दगी के सहारे जो जीवन रखना चाहे इससे बड़ी उसकी महानता क्या होगी ।

आ मेरे लाला आ जा, तुझ को गले लगा लूँ
दिल में तुझे छुपा लूँ, आ मेरे दिल के टुकड़े
और ममता के प्यारे, सुन ले कि तेरी माँ है
जिन्दा तेरे सहारे, माँ से तू अलग है आ मैं तुझको मना लूँ[3]

प्रेमी प्रेमी के गुणों पर रीझ कर उसके प्रति पूर्ण समर्पण करने को तत्पर हो जाती है और लोक लाज सब भुलाकर उसे आवाहन करती है :

---

* सरगम

2 ये जिन्दगी कितनी हसीन है : राजेन्द्र कृष्ण

3 मदर इंडिया : शकील

ढपली वाले ढपली बजा
मेरे घुंघरू बुलाते है आ
मैं नाचूं तू नचा..... *

आंखे न रहने पर भी मन के भावों पर कोई अंकुश कैसे रहे सकता है :

ए काश मैं देख सकती, अपने मेहरबानों को
आपको शुक्रिया, शौक बहुत है कि गम सुनाऊं कोई
गीत गाऊं कोई, लेकिन सम्भालू कैसे
बेचैन अरमानों को .....[2]

नारी जब जब संसार से पूर्ण रूप से निराश होकर ईश्वर की शरण में जाती है तो सच्चे मन से प्रार्थना कर उठती है ।

मेरी सुन ले अरज बनवारी
तेरे द्वार खड़ी दुखियारी
आर न सूझे पार न सूझे
अब कोई दूजा द्वार न सूझे
कौन ठिकाने जाऊं प्रभुजी
छोडके शरण तिहारी ....[3]

वेश्या जीवन एक ऐसी विडम्बना है जहाँ नारी को नित्य जन्म लेकर नित्य मृत्यु की वेदना भोगनी पड़ती है ऐसी जीवन यात्रा में भी

---

*	सरगम		
2	ईमान धर्म	:	आनंद बक्षी
3	आंखे	:	साहिर

कही पर एक ठहराव आता है और प्रकाश उत्पन्न होता है ।

चलते चलते यूं ही कोई मिल गया था
स रे राह P चलतें
वहीं थम के रह गई है,
मेरी रात ढलते ढलते .... *

नारी प्रवृत्ति किसी बात को भी गोपनीय नहीं रख सकती । विशेष कर प्रेम-सम्बन्धी रहस्य तो छुपाने बताने के उहापोह से उसे छोडते ही नहीं ।

होठों में ऐसी बात मैं दबा के चली आई,
खुल जाए वही बात तो दुहाई है दुहाई
बात जिसमें प्यार तो है जहर भी है ......[2]

एक आदर्श पत्नी की स्थापना हिन्दी सिने गीतों में की गई हैं जहाँ पत्नो पूर्ण रूप से पति देव को समर्पित हैं :

तुम्ही मेरे माथे की बिंदिया की झिलमिल
तुम्हीं मेरे हाथों के गजरों की मंजिल
मैं हूं एक छोटी-सी माटी की गुडिया
तुम्हीं प्राण मेरे तुम्हीं आत्मा हो .....[3]

नारी जिसे एक बार दिल दे दें उसे वह मृत्यु पर्यन्त भी नहीं

---

* पाकीजा : कैफी आजमी
2 ज्वेल थिफ. : मजरूह
3 दिल एक मन्दिर :

सकती । अपने प्रिय के विश्वास घाती होने पर भी वह उसमें प्रतिशोध नहीं ले सकती है :

मार दिया जाए कि छोड़ दिया जाए
बोल तेरे साथ क्या सलूक किया जाए .....*

कम उम्र के प्रेमी नायक की आतुरता से घबराकर नायिका उसे अनुभव बताती है कि प्यार धीरे-धीरे होता है ।

ये लड़का हाय अल्ला कैसा है दीवाना
कितना मुश्किल है तोबा इसको समझाना...[2]

मांसल आधार पर जो नैसर्गिक सुख मिलता है उसकी ललकती हर प्राणी में है । इसी मांसल मिलने का निमन्त्रण नायक को नायिका दे रही है ।

बाहों में चले आओ, हो सनम क्या परदा
यह आज का नहीं मिलन, यह संग है उमर भर का ...[3]

प्रेमी की रक्षा के लिए जमाने से प्रार्थना करती हुई नारी अपने प्रेमी की रक्षा के लिये हर तरह की मनुहार करती है :

लोगों ना मारो इसे, यही तो दिलदार है
दिल से दिल जो टकराए, नहीं दुश्मन यह प्यार है ...[4]

---

* मेरा गांव मेरा देश :
2 हम किसी से कम नहीं : मजरूह
3 अनामिका : मजरूह
4 अनामिका : मजरूह

प्रेम में असफलता मृत्यु का आवाहन करने पर विवश कर देती है - बिना प्रेम के जीवन से मृत्यु बेहतर है ।

मौत कितनी भी संगदिल हो मगर
जिन्दगी से तो मेहेरबा होगी
नित नए रंज दिल को देती है
जिन्दगी हर खुशी की दुश्मन है ....*

नारी और कुछ न कहे अप्राकृतिक लगता है लेकिन प्रेम बाण से बिंधी नारी खामोशी की आदत स्वीकार कर सकती है :

उनको ये शिकायत है कि हम कुछ नहीं कहते
अपनी तो ये आदत है कि हम कुछ नहीं कहते ...[2]

नारी का बस चले तो चौबीसों घंटे पिया को प्यार में ही डुबाये रखे तो फिर संसार के दूसरे कार्य कैसे हों । इसके विपरीत जिसके पति को प्यार के लिये अवकाश नहीं है ।

सुबह और शाम काम ही काम,
कभी नहीं लेते पिया प्यार का नाम
ऐसे सजना से मेरी कुट्टी कुट्टी कुट्टी ...[3]

विधवा समस्या हिन्दू समाज की सबसे विकृत समस्या है । विधवा होते ही हिन्दू नारी कटी पतंग की भांति हवा के झोंकों पर

---

*आज और कल	:	साहिर
2 अदालत	:	राजा मेहदी अली खां
3 उलझन	:	एम.जी. हशमत

डोलती रहती है । उसकी परिस्थिति पकड भी समाप्त हो जाती है :

न कोई उमंग है, न कोई तरंग है
मेरी जिन्दगी है क्या, इक कटी पतंग है ... *

जीवन में प्रेम किसी से विवाह किसी से ऐसे प्रसंग बहुधा होते हैं । ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर नायिका पूर्व प्रेमी को ठुकराती हुई आदर्शवादी का प्रतिपालन करने का प्रयास करती है :

पराई हूं पराई मेरी आरजू न कर
न मिल सकूंगी तुझको मेरी
जूस्तजू न कर ....[2]

विरह में अनिद्रा रोग हो जाये तो राते बहुत भारी हो जाती हैं । आंसू दिन रात बहने से नींद को स्थान नहीं ह मिलता ।

दो नैनों में आंसू भरे हैं, निंदिया कैसे समाए
रात भर अपने है, दिन में पराए
कैसे नैनों में निंदिया समाए ....[3]

उन्मुक्त जीवन की पुकार मानव मन में सदा से रही है । जिसका टकराव समाज मर्यादित जीवन से होता रहा है । उन्मुक्त

---

*	कटी पंतग	:	आनंद बक्षी
2	कन्यादान		
3	खुशबू	:	गुलजार
४	गुमनाम		

जीवन को प्रेरणा देती हुई नारी संसार को एक उपवन के समान समझती है जहाँ लाखों पक्षी आते हैं लेकिन उनमें से कुछ ही उन्मुक्त मन चाहा जीवन जी पाते हैं :

इस दुनिया में जीना हो, तो सुन लो मेरी बात
गम छोड़ के मनाओ रंग रेलो .... *

एक बार प्रेम में धोखा खा जाने पर दुबारा फिर प्रेम की संभावना रखती है और इस प्रेम का दायरा बड़ा होता है :

काँटों से खींच के ये पायल, तोड़ के बंधन बांध पायल
कोई न रोको दिल को उड़ान को
दिल वो चला ...[2]

नारी स्वयं उत्तेजक है । यदि नारी दूसरी उत्तेजना शराब का सेवन भी कर ले तो उसकी हरकतें पुरुष को उत्तेजित कर देगी - वह पथ भ्रष्ट हो जायेगी और बदनाम :

शराबी शराबी मेरा नाम हो गया
मेरा नाम काहे को बदनाम हो गया ....[3]

पुरुष की अधिकार भावना एवं उसके अत्याचार के प्रति नारी शिकायत करती है और उसे बहुरूपिया बताती है :

---

*	गुमनाम	:	शैलेन्द्र
2	गाइड	:	"
3	चन्दन का पलना	:	आनंद बक्षी

जब भी जी चाहे नई दुनिया बसा लेते हैं लोग
एक चेहरे पे कई चेहरे लगा लेते हैं लोग ..... *

नारी से यारी बड़ी पुरानी विडम्बना है । "यार" शब्द बड़ा गुप्त है जिसकी सहज परिभाषा नहीं । प्रेम के पूर्ण परिपक्व होने के बाद ही यारी की अवस्था आती है :

यारी हो गई यार से लक टुनक टुनक
प्यार को काम क्या झूठे संसार से ....[2]

सावन यादों की तरह बरसते हुए नयन भी मन की प्यास नहीं बुझा सकते । इसके लिये तो प्रेमी का मिलन रूपी प्रेम जल ही चाहिये ।

मेरे नयना सावन भादो
फिर भी मेरा मन प्यासा ...[3]

प्रेमी की खोज में प्रेमिका नारी पायल बांध कर हर तरह के कष्ट सहती हुई उसकी तलाश में निकल पड़ती है :

पायल की झंकार रस्ते रस्ते
ढूंढे तेरा प्यार रस्ते रस्ते
करती है फरियाद हंसते हंसते ...[4]

यौवन के आते ही नारी मन में आमूल परिवर्तन हो जाते हैं

---

*	दाग	:	साहिर
2	दो चोर	:	मजरूह
3	महबूब	:	आनंद बक्षी
4	मेरे लाल	:	मजरूह

वो अपने यौवना गमन की उद्घोषणा करती फिरती है :

> आज मैं जवान हो गई हूँ
> गुल से गुलिस्तान हो गई हूँ
> डगमग रहे है पांव ऐसे
> चल रही है हवा में जैसे ... *

आधुनिक युग में नौकरी या कमाई में रात दिन व्यस्त पति से नारी दुखी है उसके तन मन की पुकार अन्दर ही अन्दर घुटी जा रही है । लाखों रुपए देने पर भी बीता यौवन वापस नहीं आता :

> हाय हाय ये मजबूरी, ये मौसम और ये दूरी
> मुझे पल पल है तड़पाए, तेरी दो टकिया की नौकरी में
> मेरा लाखों का सावन जाए ......[2]

अनमेल विवाह बूढ़ा पति, जवान पत्नी समाज की एक और विसंगति जिसकी सारी पीड़ा नारी को ही अकेली झेलनी पड़ती है :

> मैं क्या करूँ राम मुझे बुड्ढा मिल गया
> सब जो गए बाग मेरा बुड्ढा भी मिल चला गया
> सब तो लाए फूल बुड्ढा गोभी लेकर आ गया
> मैं तो हो गयी रे बदनाम ....[3]

---

* मैं सुन्दर हूँ : आनंद बक्षी

2 रोटी, कपड़ा और मकान : वर्मा मलिक

3 संगम : हसरत

4 [illegible]

आज के समाज में पत्नी ~~और~~ अपने पति से सन्तुष्ट नहीं । क्यों ये पतिवाद के टूटते ढांचे की ओर इंगित नहीं करता :

डाक्टर की बीबी न बनिया कभी
  रात मुआ सोने न दे
   इंजेक्शन लगावे घड़ी घड़ी ... *

नारी की ममता ही प्रधान है । चाहे मां, बहन या बीबी कोई भी रूप क्यों न हो । युनिवर्सल मदर की मूर्त कल्पना इसी ममता के उपर आधारित है :

मां का प्यार, बहन का प्यार,
कभी कभी दुल्हन का प्यार
तेरे प्यार के रंग हजार ओ बसंती रानी .....[2]

चरस के दम को प्रेरणा करती हुई स्वयं चरस का शिकार नायिका अपने मन की हर भावना को खुला छोड़ना चाहती है :

नशा पे नशा लगा दे, नशा आंखों पे छाने दे
हर चीज रंगीन नजर आएगी, जरा मस्ती में आने दे...[3]

नारी अपने मित्र के दुखों को बांटती हुई उसे शराब न पीने की सलाह देती है । अपना प्यार उस पर न्योछावर करके ...

गम की दवा तो प्यार
गम की दवा शराब ब नहीं

---

* विधाता

2 खुद्दार : मजरूह

3 नया नशा

ठुकराओ ना हमारा प्यार
इतने तो हम खराब नहीं .... *

पुरुष को जन्मजात पियक्कड़ मानकर उसे पीने को उकसाती हुई मद-मस्त नायिका :

शीशे से पी, या पैमाने से पी
या मेरी आँखों के मयखाने से पी ....[2]

लज्जा ही नारी का आभूषण है । उसका गौरव इसी में है । पुरुष की नज़रों में लाजवन्ती बनी रहे :

नजर में रहना है खुश नसीबी
नजर से गिरना है बेहयाई
हया है औरत का एक गहना
मेरी हया पे यकीन रखना .....[3]

लज्जा नारी का प्राकृतिक गुण है उसका वाचाल और लज्जाहीन रूप शोभनीय नहीं माना जाता । जब भी वह इस दायरे से निकलती है उसे अपयश मिलता है :

एक दिन ख्वाब में वो मुझे मिल गया
देखकर जो मुझे फूलसा खिल गया
शरमा गई मैं हाय हाय,
घबरा गयी मैं हाय हाय ....[4]

---

* अमानुष
2 फूल और पत्थर
3 घटना
4 नसीब : आनंद बख्शी

चिर प्रतीक्षा के बाद जब मिलन हो तो मन की अवस्था विचित्र हो जाती है कभी लाज लगती है, कभी गुदगुदी और कभी आंसू झलक उठते हैं :

बड़ी मुद्दत दिल के सहारे मिले
आज डूबे हुए दिल के किनारे मिले
कभी शरमाये मन कभी मुस्कुराए मन
कभी नयनों को छलके गागरियां .... *

दूसरों को अपनी प्रेम कहानी सुनाते हुए नारी को लज्जा आना स्वाभाविक ही है :

हाय शरमाऊं किस किस को बताऊं
ये अपनी प्रेम कहानियां .. .[2]

समर्पिता नारी अपने प्रियतम के निर्देशानुसार लाज शर्म सब भूल जाने को आतुर है :

तुम्हीं रहनुमा हो मेरी जिन्दगी के
बिगाड़ों मुझे या संवारों मुझे, मुझे शर्म कैसी,
मेरे साथ तुम हो, किसी रास्ते से गुजारों मुझे ...[3]

मीठा उलाहना देती हुई प्रेमिका सहेलियों का डर दिखाकर जल्दी छुटकारा पाने के प्रयत्न में है :

बेदर्दी क्यूं पीछे पड़ा है मेरे
लाज की मारी पैया पड़ूं मैं तेरे...[4]

---

* घूंघट : हकीम 2. मेरा गांव मेरा देश :
3 दो रास्ते : 4. बाबुल की गलिया :

परदेसी से प्रेम हो जाने पर गांव की नायिका का शर्माते हुए घूमती है और परदेसी के निर्लज्ज एवं चिपकू होने की शिकायत भी करती है :

परदेशी आया देश में देश से मेरे गांव में
गांव से मेरी गली में गली से मेरे घर में
घर से औ घर से मेरे दिल में,
अब दिल से जाने का नाम न ले, ऊई मां मैं क्या करूं
बेशर्म शर्म से जरा काम न ले मैं शर्माती फिरूं .... *

प्रेमी का आमंत्रण और इशारे देखकर छत पर खड़ी प्रतीक्षा नायिका लज्जा से पानी पानी हो जाती है :

घर की छत पर मैं खड़ी थी, गली में दिलवर जानी
हंसकर बोले नीचे आ, अब नीचे औ दीवानी
या अंगूठी फेंक दे अपनी, या छल्ला दे निशानी
घर की छत पर खड़े खड़े मैं हुई शरम से पानी ...[2]

..

---

* प्रतीक्षा : आनंद बक्षी
2 मेरा साया : राजा मेहदी अली खां

4.4 मानवीय सम्बन्ध : ....

प्रास्ताविक : मानवीय सम्बन्ध युग परिवेश के अनुसार बदलते चले जाते हैं। विज्ञान के वरदान ने जहाँ विशाल उद्योगों और नये अन्वेषणों को जन्म दिया है वहाँ महानगरीय संस्कृति में मनुष्य के मानवीय सम्बन्ध अपनी पहचान खोने के कगार पर खड़े हैं। नया मनुष्य नयी सामाजिक परिस्थितियों में जीना चाहता है और रूढ़ संस्कार एवं परम्पराएं उसके सामने बाधक है। इस परम्परा और प्रगति के द्वन्द के बीच से गुजरते हुए उसमें विकृतियाँ और विसंगतियाँ जन्म ले रही है। एक सीमा तक उसका अस्तित्व अपने आपको अर्थहीन व्यर्थ और एकाकी अनुभव करने लगा है। इन स्थितियों में फंसा हुआ मनुष्य अपने मानवीय सम्बन्धों के खंडहर को लेकर कबतक गिरता पड़ता चल सकता है। भावना रक्त और वर्ग बोध पर बने मानवीय सम्बन्ध आज टूटने लगे हैं।

कस्में वादे प्यार वफा सब बातें हैं बातों का क्या
कोई किसी का नहीं ये झूठे नाते है ना-तों का क्या।उपकार*

स्वार्थ और धोखे से भरे हुए वातावरण की छाया ने रक्त सम्बन्ध को भी डस लिया है और अति-आत्मीय सम्बन्ध भी केवल औपचारिक और स्वार्थ के दर्द गिर्द घूम रहे हैं।

माँ पुत्र-पुत्री एवं पिता-पुत्र का सम्बन्ध भी विकृत हुआ है। यह शुद्ध प्राकृतिक सम्बन्ध किसी समय पूज्यनीय स्थिति रखता था

---

* उपकार

आज अधिकार, शासन, पुत्र-वधु को प्रतियोगिता से घिर गया है । आज की संतान अपने जन्म को माता-पिता द्वारा कृत कोई "महान कार्य" स्वीकारने को तैयार नहीं है अपितु अपनी हीन परिस्थितियों के लिये उन्हें ही उत्तरदायी ठहराती है :

मुझको पैदा किया संसार में दो लाशों ने
और बर्बाद किया कौम के अगुयाशों ने । *

दांपत्य जीवन को परिवेश ने सर्वाधिक प्रभावित किया है । दाम्पत्य के रूढ़ आदर्श एकनिष्ठा पर रति वर्जना पुरूष के अधिकार और नारी के कर्तव्य आज अस्वीकार हो रहे हैं । नारी जो आर्थिक परतन्त्र थी आज स्वतन्त्र होने लगी है और पुरूष जो सदैव स्वच्छन्द था नारी की इस स्वच्छन्दता को स्वीकार नहीं कर पा रहा है । पुरूष को ढ़हते हुए पुराने रूप और नारी के नवोदित स्वच्छन्द रूप के बीच दाम्पत्य जीवन की नींवें हिल रही हैं ।

अन्य मानवीय सम्बन्धों की तरह प्रेम सम्बन्ध भी विकृत हो गये हैं । सच्चे और आध्यात्मिक प्रेम का पुराना रूप खो चुका है और मनोविज्ञान ने प्रेम को "शारीरिक भूख" का दर्जा दे दिया है । प्रेम के शुद्ध रूप को जीवित करने का प्रयास सिनेमा के माध्यम से होता रहा है - लैला मजनू - एक दूजे के लिए आदि चित्रों में प्रेम के रूढ़ रूपों की स्थापना की गई है ।

बदलते हुए मानवीय सम्बन्ध जहाँ घोर अविचारन निराशा के

---

* जिन्दगी और तूफान : रामवतार त्यागी

बादलों से घिरे हुए हैं और दिनोंदिन अपनी मर्यादा खोते जा रहे हैं वहीं सिनेमा अपनी कथाओं एवं गीतों के द्वारा शुद्ध मानवीय सम्बन्धों को पुनर्स्थापित करने को कृत संकल्प सा दीख पड़ता है । कुछ एक प्रयोगात्मक चलचित्रों को छोड़कर ज्यादातर चलचित्रों में मानवीय सम्बन्धों को भारतीय संस्कृति के अनुकूल एवं शुद्ध रूप में स्थापित करने का प्रयास किया जाता है । यह चीज बुद्धिजीवि के गले नहीं उतरती और वह इसे घिसी पिसाई पटकथा का नाम देकर मुंह बिचका लेता है किन्तु आपको आज भी हिन्दी सिनेमा में मां का परम्परागत ममतामय रूप पुत्र की मा-पितृ भक्ति-भाई-बहन प्रेम पति-पत्नी का जन्म जन्मान्तर का बंधन देखने को मिलेगा । पश्चिम के अन्धानुकरण ने आज हिन्दी साहित्य को सर्वाधिक झकझोरा है और कुछ नया प्रस्तुत करने के फेर में हिन्दी का साहित्यकार भारतीय संस्कृति और मानवीय सम्बन्धों के चरमराते अस्तित्व को पुनर्स्थापित करने के बजाय उसे नेस्तनाबूद करने में लगा है । इसलिये सिनेमा साहित्यकार प्रशंसा के पात्र है ।

भाई-बहन : ....

भाई बहन का संबंध भी रक्त सम्बन्ध है । सहोदर का भाव निश्चित रूप से बहुत संवेदनशील होता है । विवाह तक भाई बहन एक साथ पलते बढ़ते हैं उनमें पारस्परिक प्रेम होना सहज है । यह सच है परिवेश जन्य विकृतियों ने इस सम्बन्ध को भी झकझोरा है किन्तु फिर भी सिनेमा में अधिकतर इस सम्बन्ध को परम्परागत रूपों में देखा गया है जहां भाई के लिये उसको बहन सर्वस्व है और उसके लिए वह सर्वस्व न्योछावर कर देना चाहता है :

फूलों का तारों का सबका कहना है
एक हजारों में मेरी बहना है
जब से मेरी आंखों से हो ई तू दूर
तब से सारे जीवन के सपने है चूर
आंखों में नींद, न दिल में चैना है । *

इसी प्रकार बहन बहन रक्षा बंधन के पर्व पर भाई को राखी बांधती है और उसके चिरजीवी होने की कामना करती है उसके लिये भी भाई से अधिक प्रिय संसार में कोई नहीं है :

मेरे भैया, मेरे चंदा मेरे अनमोल रतन
तेरे बदले में जमाने की कोई चीज़ न लूंगी
तेरे सेहरे की महकती हुई लड़ियों के लिये
अनगिनत फूल उम्मीदों के चुने हैं मैने ।[2]

जिस तरह बहन भाई के विवाह के सपने संजोती है उसी तरह भाई भी ।

भाई बहन का यह पवित्र रिश्ता - भाई का कर्तव्य - बहन की शादी, सदैव सिने गीतों का विषय बनता रहा है :

बहना, ओ बहना
तोहरी डोली मैं सजाऊंगा
तोहरी आयेगी बारात ; होगी आंखों में बरसात ।[3]

बहन की शादी भाई को कर्तव्य-मुक्ति का अहसास देती है ।

---

*	हरे राम हरे कृष्ण	:	आनंद बक्षी
2	काजल	:	साहिर
3	अदालत	:	गुलशन बावरा

बहन को अच्छा पति मिलें और उसका जीवन प्रसन्नता से बीते भाई के मन में यही भावना होती है :

मेरी प्यारी बहनिया, बनेगी दुल्हनिया
सज के आयेंगे दूल्हा राजा
भैया राजा बजायेगा बाजा, *

इसी तरह के अनेक गीत सिने गीतों में लिखे गये हैं जहाँ भाई-बहन के पवित्र-प्रेम को आदर्श और परम्परागत रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

माता : ....

मातृत्व मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है । संतान के प्रति ममता एवं उसकी रक्षा की भावना सदैव उसमें रही है । सिने गीतों में माँ के इस त्यागमय और ममतामय रूप को प्रस्तुत किया जाता रहा है और उसके प्रति अनंत करुणा और सहानुभूति उभारी गई है । माँ शैशव में अपनी संतान के दीर्घजीवन के लिये न जाने कितने देवी देवताओं को मनाती है । मन्नते माँगती है । जब पुत्र संकट में होता है तो उसकी ममता विचलित हो उठती है । उसके भविष्य के लिये वह चिंतित होती है वह उसे हालात की आँधियों से बचाये रखना चाहती है :

तेरे बचपन को जवानी की दुआ देती हूँ
और दुआ देके परेशान सी हो जाता हूँ ..[2]

---

* सच्चा झूठा

2 मुझे जीने दो : साहिर

जननी :   ..   ..   ..

मा का यह रूप प्राकृतिक रूप है । यह रूप सरल, भावपूर्ण एवं प्रगाढ है । मा नौ मास तक संतान को गर्भ में धारण करती है उसकी रक्षा के लिये सावधानी बरतती है और उसके जन्म की प्रतीक्षा करती है । प्रसव की भयंकर पीड़ा उसको संतान-सुख भुला देती है :

मेरे घर आई एक नन्हीं परी
चांदनी के हसीन रथ पे सवार । *

शिशु के विकास के लिये मा सदैव चिंतित रहती है उसके खान-पान के साथ-साथ उसके मनोरंजन के लिये वह लोरी भी गाती है :

लल्ला लल्ला लोरी, दूध की कटोरी
दूध में बताशा, मुन्नी करे तमाशा ...[2]

माता-पुत्र : पुत्री :   ....

मा-पुत्र-पुत्री सम्बन्ध शुद्ध प्राकृतिक है । जहा मा को पुत्र-पुत्री सबसे अधिक प्रिय हो जाते हैं । इन्हीं प्राकृतिक गुणों के कारण माता पूज्य और वंदनीया बन जाती है । बेटा प्रारम्भ से ही मा के आंचल की उष्णता में पलता है और ईश्वरीय सुख का दर्शन उसे मा की गोदी में होता है :

उसको नहीं देखा हमने कभी
पर इसकी जरूरत क्या होगी

---

*	कभी कभी	:	साहिर
2	मुक्ति	:	आनंद बक्षी

ऐ मां तेरी सूरत से अलग
भगवान की सूरत क्या होगी .. *

सिने गीतों में माता-पुत्र सम्बन्ध को आदर्श शैली में ही प्रस्तुत किया जाता रहा है जहां पुत्र मां के प्रति अनन्त श्रद्धालु है और अपने प्राणोत्सर्ग को तत्पर है उसे मां की ममतामयी यादें आने लगती है । जब वह दौड़ता हुआ आकर मां की गोद में घुस जाता था उसे ज्वर होता तो मां रात रात भर उसके सिरहाने बैठती थी -

मां मुझे अपने आंचल में छुपा लें
गले से लगा लें
कि आज मेरा कोई नहीं
गोद में तेरी आज तक पला हूं ।[2]

<u>दाम्पत्य</u> : ....

सिने गीतों में दाम्पत्य सम्बन्ध के गीतों की संख्या बहुत कम है इसका कारण चलचित्रों का विषय अधिकतर विवाह-पूर्व के प्रेम-सम्बन्धों को चित्रित किया जाना रहा है । फिर भी पारिवारिक चित्रों में इस सम्बन्ध की स्थापना अधिकतर रूढ़ रूप में की गई है ।

जहां सर्वस्व समर्पण वाली पत्नी और पूर्ण अधिकार प्राप्त एवं अर्थ केन्द्र पुरूष ही है :

तुम्हीं मेरे मंदिर, तुम्हीं मेरी पूजा, तुम्हीं देवता हो
तुम्हीं मेरे माथे की बिंदिया की झिलमिल
... ...

---

* दादी मां
2 छोटा भाई : आनंद बक्षी

तुम्हीं मेरे हाथों के गजरों की गोजिल
मैं हूँ एक छोटी सी माटी की गुड़िया
तुम्हीं प्राण मेरे तुम्हीं आत्मा हो । *

तेरे मेरे सपने दाम्पत्य जीवन पर आधारित देवानंद का एक सुलझा हुआ चित्र था जिसमें नीरज ने दाम्पत्य जीवन से संबंधित सबसे महत्वपूर्ण कल्पना संतान की संभावित आकांक्षा पर बहुत ही सुन्दर गीत लिखा :

जीवन की बगिया महकेगी-चहकेगी
हम और बंधेंगे, हम तुम कुछ बंधेंगे
बांधेगा धागा कच्चा, हम तुम कुछ बंधेंगे ।[2]

पति की अस्वाभाविक स्थिति : ....

पति की यौन अस्वाभाविकता दाम्पत्य सम्बन्ध में विकृति उत्पन्न कर देती है । परिणामस्वरूप पति-पत्नी में एक दूसरे के प्रति उपेक्षा और विरुचि उत्पन्न हो जाती है । पत्नी अपने को अकेली विकल और टूटी हुई पाती है । इस अवस्था में नारी यौन स्वच्छता का भोग करने की इच्छा की ओर झुकती है और किसी अन्य युवक में आसक्त हो जाती है । गाइड फिल्म की नायिका एक वृद्ध से पैसे के लिये विवाह हो जाता है जो नपुंसक है और वह नायक की तरफ आसक्त हो जाती है और उसे राहत मिलती है :

काँटों से खींच के ये आँचल
तोड़के बंधन बाँधी पायल
आज न रोके कोई दिल को उड़ान को

---

* दिल एक मंदिर 2 तेरे मेरे सपने : नीरज

दिल ये चला
आज फिर जीने की तमन्ना है । *

एक अन्य स्थिति में जमीन्दारी प्रवृत्ति का एक फिल्म साहब बीबी गुलाम का नायक पत्नी को घर की सजावट की चीज समझता है और सदैव उसकी अवहेलना करके रातें तवायफों के घर में गुजारता है । नायिका के प्रतिरोध करने पर वह उससे कहता है क्या वह तवायफ की तरह सज संवार सकती है, उसका विविध मनोरंजन कर सकती है तो नायिका इसके लिये तत्पर हो जाती है ।

न जाओ सइयां छुड़ाके बंहियां ।

पत्नी की अस्वाभाविक स्थिति : ....

निम्न गीत में शकील बदायूनी ने रूढ़ ग्रस्त नारी की विवशताओं का काफी मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है ।

न जाओ सइयां छुड़ा के बैयां कसम तुम्हारी मैरी पड़ूंगी
मचल रहा है सुहाग मेरा जो तुम न होगे तो क्या करूंगी
ये बिखरी जुल्फें ये खिलता कजरा
ये महकी जुल्फें ये नैन की मदिरा
ये सब तुम्हारे लिये है प्रीतम
रूढ़ी पत्नी प्रियतम के लिये प्राणोत्सर्ग कर रही है -

जो मुझसे आंखियां चुरा रहे हों
तो मेरी इतनी अर्ज भी सुन लें
तुम्हारे चरणों में आ गई हूँ
यही जिन्दगी यही मरूंगी ...[2]

---

* गाइड 2 साहब बीबी गुलाम : शकील

दाम्पत्य सम्बन्ध की रूढ़ रचना आज अस्वीकार हो चली है। नारी विवाह के पक्ष में तो है किन्तु वह अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता खोना नहीं चाहती। पुरूष भी पत्नी एक सहयोगिनी के रूप में चाहता है जिसके साथ प्रत्येक क्षण बिताने की विवशता न हो और वह काम चेष्टाओं में स्वतन्त्र रहे। इस तरह अधिकारों की एक प्रतियोगिता जन्म ले रही है। आदर्शवादिता सतही रूप से टूटने के कगार पर खड़ी है। इस आशय के अनेक चित्र बनना शुरू हो गये हैं "एक बार फिर" की नायिका अपने अभिनेता पति की उपेक्षा से तंग आकर अन्य पुरूष से सम्पर्क स्थापित करती है। अर्थ की नायिका पति के परस्त्री सम्बन्ध से ऊब कर उसे छोड़ देती है। मासूम के नायक की अवैध संतान उसके दाम्पत्य जीवन में खलबली मचा देती है।

तात्पर्य यह कि चलचित्रों में बदलते हुए दाम्पत्य सम्बन्धों को कहानी में स्थान मिल रहा है किन्तु गीतों की घटती हुई संख्या के कारण इस आशय के गीत कम बन पा रहे हैं।

<u>सन्देह :</u> ... ...

सौतन चलचित्रों में पत्नी को पति एवं सहनायिका के बीच अनैतिक संबंधों का सन्देह हो जाता है। और वह पति को छोड़कर मायके चली जाती है।

जब अपने हो जाये बेवफा दो दिल टूटे।" *

<u>पत्नी पूर्व-प्रेमी :</u> .. .. ..

यह एक स्थिति दाम्पत्य-जीवन में सदैव बनी रही है। जहाँ विवाह पूर्व पति की प्रेमिका अथवा पत्नी का प्रेमी संकट उपस्थित

---

* सौतन

कर देते हैं। आज समाज में प्राय: हर जगह ऐसी विसंगतियाँ पाई जाती है जहाँ प्रेमी किसी से होता है और विवाह किसी से। ऐसी अवस्था में कहीं कहीं विवाह के बाद बीते हुई यादें और पूर्व सम्बन्धों को नया सम्बन्ध धूमिल कर देता है और कहीं नये दाम्पत्य सम्बन्ध की कटुतायें पुराने सम्बन्धों को ताजा कर देती है :

याद ना जाये बीतें दिनों की
जाके ना आये जो दिन दिलक्यों बुलाये उन्हें
तस्वीर उनकी छुपा के रख लूं जहाँ जो चाहे
मन में बसी यह सूरत लेकिन मिटे न मिटाये
कहने को वो पराये ... *

सिने गीत की वस्तु-योजना के सम्बन्ध में जो विवेचन किया गया है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वस्तु क्षेत्र विस्तृत और बहु आयामी है। व्यक्ति और समाज के जीवन का सम्भवत कोई पक्ष ऐसा नहीं है जो सिने गीत में प्रतिष्ठित न हुआ हो। अन्तर केवल बल-निक्षेप का है। परिमाण और बल की दृष्टि से प्रेम और सौन्दर्य परक वस्तु केन्द्रिय स्थान रखती है। इन दोनों ही स्तरों पर वस्तु योजना में किसी विशेष प्रयोग और अन्वेषण का प्रमाण नहीं मिलता है। युग युग की वस्तु को नवीन उक्तियों के साथ गीतबद्ध किया गया है। प्रेम के क्षेत्र का असंतोष और तद्जन्य क्रान्ति को कभी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से और कभी सामाजिक दृष्टि से देख भर लिया गया है। वस्तु योजना की परिधि पर जीवन और समाज की चेतना सक्रिय मिलती है। राष्ट्र और समाज जिन अन्तर्बाह्य संकटों संत्रासों समस्याओं विसंगतियों और तनावों से गुज़र रहा है उनको भी

---

* दिल एक मंदिर : शैलेन्द्र

जिसे गीतकार ने कभी स्पष्ट रूप से और कभी व्यंग शैली में समेटने की चेष्टा की है । सामाजिक वस्तु विस्तार को देखकर इस भ्रम का खंडन हो जाता है कि सिने गीतों में प्रेम और सौन्दर्य की तिलांजलि भूमि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । वस्तु विकास की प्रवृत्ति यह दृष्टिगत होती है कि जीवन के यथार्थ से सम्बन्धित चलचित्रों की संख्या बढ़ती जा रही है और तत्सम्बन्धी अभिरुचि भी पनपने लगी है । इन चलचित्रों में प्राय: गीतों का अभाव होता जा रहा है । जो थोड़े बहुत गीत इनमें आ पाते हैं उनमें सामाजिक यथार्थ का संस्पर्श अवश्य रहता है ।

खण्ड - चार : शिल्प-चेतना

प्रास्ताविक :

अन्य कलाओं की भान्ति सिने गीत स्वयं में सम्पूर्ण एक कला है जो अन्य कला सरिताओं की तरह सिनेमा के समुद्र में समा जाती है ।

कलात्मक आयामों पर कसने से सिने गीत एक विशिष्ट कला सिद्ध हो जाती है । सिने विधा के पितामह सर्जी आइन्सटीन के अनुसार -- "गतिशीलता के दृष्टिकोण से हर कला में यही प्रक्रिया क्रियाशील है । दर्शक को भावनाओं और मस्तिष्क में छवियों का संयोजन"* अर्थात् शब्दाणुओं का चयन, उनको लय और

---

* ए वर्क आफ आर्ट अंडरस्टूड डाइनमिकली इज जस्ट दिस प्रासेस आफ अरेंजिंग इमेजस इन दि फिलिंग्स एण्ड माइंड्स आफ स्पेक्टेटर.

दि फिल्म सेन्स - सर्जिक आइन्सटीन : पृ. 24

वांछित भाव उत्पन्न करने हेतु क्रमबद्ध संरचना । इसी सिद्धान्त पर उत्कृष्ट सिने गीतों की रचना की गई है जिनमें संगीत के योग से और छायांकन की कला द्वारा दर्शक की अंतश्चेतना का सम्मोहन किया जाता है और दर्शक एक लम्बे अंतराल तक उस गीत को गुनगुनाता रहता है ।

भावानुभूति की कलात्मक प्रस्तुति में सुनियोजित शब्द समूह को शिल्प कहते हैं । इस शब्द समूह में भाव सम्प्रेषण के लिए जिन उपादानों को ग्रहण किया जाता है वे ही शिल्प तत्व हैं । शिल्प तत्वों में भाषा, छन्द, संगीत सौन्दर्य, अप्रस्तुत विधान, रसात्मकता, रचना एवं सृजन प्रक्रियाओं पर किया जाता है ।

"जिस तरह एक अच्छी तस्वीर बनाने के लिए एक अच्छा पोस्टर पेंट करने के लिए एक अच्छा चित्रकार होना जरूरी है उसी तरह से फिल्म लेखन या व्यवसायिक लेखन के लिए अच्छा लेखक होना जरूरी है ।"*

अच्छे लेखन का अर्थ है गहरी संवेदना एवं काव्य शिल्प का समुचित प्रयोग । कवि के साधन स्वरूप केवल शब्द होते हैं । कवि इन शब्दों की वास्ता से ही अर्थ विनिमेष द्वारा नवनिर्माण करता है । जिस तरह शब्द गीतकार का माध्यम होते हैं उसी प्रकार नाद संगीतकार का माध्यम है । सिनेमा की पटकथा के अनुसार निर्देशक गीत की रचना प्रक्रिया को निर्देशित करता है और सिने गीत का जन्म होता है । इस प्रकार सिने गीत के शिल्प में मात्र गीत ही नहीं अपितु संगीत शिल्प एवं अन्य सम्बन्धित कला विधाएं भी संगुम्फित रहती है ।

---

* पटकथा लेखक जावेद : माधुरी : 29 अक्तूबर, 11 नवम्बर, 1982 पृ. 11

आज का हिन्दी सिनेमा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों की शैली एवं पारसी थियेटर के गीत-बहुल नाट्य शैली पर आधारित है जो गीति नाट्य शैली के बहुत पास बैठता है । "गीति नाट्य वह मिश्र विधा है जो अनिवार्यत: पद्यबद्ध होती है जिसमें गीत काव्य की आत्माभिव्यंजना, भाव प्रवणता, गीतात्मकता, मानसिक संवेदना, अन्तर्द्वन्द्व और कवि की रसात्मक अनुभूति के साथ नाटकीय विधान दृश्य अभिनेयत्व, रंग निर्देश और कथोपकथनात्मक शैली में मानसिक व्यापार का मणि कांचन सहयोग होता है । भावाभिव्यंजना, संघर्ष, गेयत्व, वृत्तगंधी, कथोपकथन, उसकी अपनी विशेषताएं है ।" *

सिने गीत में नाटकीय गुण अवश्य होते हैं किन्तु नाटक की तरह गद्य का प्रयोग नहीं होता । सिने गीत एक काव्य रचना है क्योंकि काव्य में ही मानव मन की वीणा के तारों को झंकृत करने की अद्भुत क्षमता है ।

सिने विधा की आवश्यकताओं के अनुसार सिने गीत का छायांकन करना आवश्यक होता है अत: इसमें गीत-तत्त्व एवं नाटकीय-तत्त्व दोनों का होना आवश्यक है । सिने गीतकार नाटकीय तत्त्व द्वारा मन के भावों को और अनुभूतियों को पात्रों के माध्यम से दर्शक के हृदय तक पहुंचाता है, अत: सिने-गीत में कायिक व्यापार एवं मानसिक व्यापार दोनों का स्थान बराबर है ।

शुद्ध गीत अनुभूति के स्तर पर रचित अन्तर्मुखी, आत्मकेन्द्रित, वैयक्तिक और भावात्मक होता है जबकि शुद्ध नाटक बहिर्मुखी, वस्तुनिष्ठ एवं सामाजिक होता है । सिने गीत में इन दो विरोधी पृष्ठभूमियों क

---

* गीति नाट्य शिल्प और विवेचन : डा॰ शिवशंकर कटारे : पृ॰ 31

विलयीकरण होता है और एक नवीन रूप जन्म लेता है ।

सिने गीत में इन दो विधाओं के विलीयीकरण से अलग जिस तत्व का महत्वपूर्ण योगदान होता है वह है "संगीत" जो सिनेगीत की संरचना में लगभग पचास प्रतिशत का भागीदार होता है ।" संगीतात्मकता का एकमात्र आशय यही है कि उसका शब्द विन्यास शब्द शब्द के परस्पर योग से एक प्रकार के तादात्मक सौन्दर्य उत्पन्न करें । गेयता हो या ना हो श्रृंखलाबद्ध शब्दों की रमणीयता में अन्तर्तालैक्य की सत्ता यदि है तो काव्य संगीत की आत्मा से अनुप्राणित है । आत्मा ही प्रधान वस्तु है जो शब्द और अर्थ को विस्तार देती है तथा सृष्टा की स्वानुभूति को क्षणों के प्रकाश में गीतात्मक बना देती है ।" *

आज सिने गीत नए आयाम छू रहा है । नए सिने गीतकार की मनोभूमि का फल क्षण है । अनुभूति की इसी क्षणिकता ने गीत को संक्षिप्तता दी है । इसी संक्षिप्तता के कारण गीतों में ना तो दोहराव आता है ना निष्प्रयोजन विस्तार । इसके बजाए एक सहजता आ जाती है जिससे सिने गीत नवीन, आकर्षक और स्वाभाविक लगने लगते हैं ।

"गीतकार भावुकता बौद्धिकता के साथ दर्शक की भूमिका भी निभाता है । गीतों में सहभोक्ता और संवेदनशील मानव के रूप में स्वयं स्थापित रहता है । गीतकार उधार के अनुभव पर नहीं, अनुभूति की ईमानदारी की पूंजी पर अपना व्यवसाय चलाता है ।"2

---

* हिन्दी गीति काव्य : डा. रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी : पृ.23-24

2 छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत : डा. विनोद गोदरे : पृ.276

"लेखक की भाषा की दुनिया सीमित हो सकती है । उसके संवेदन का संसार असीम है । उसके सम्बोधन का लक्ष्य भी मनुष्य मात्र होता है । चाहे वह फिर कोई भी, कहीं भी हो । अपने रचना कर्म के अंतरंग क्षणों में उसे सारे विभेद भूल जाने होते हैं । अपढ़ और पढ़े लिखे का, या कि कोई उसकी अरण्य गुहार को सुननेवाला है भी या नहीं, इस चिंता का बंधन भी उसे त्याग देना होता है । उसकी एक मात्र चिंता यह रह जाती है कि समकालीन अथवा आगत मनुष्य के हित में उसका क्या उपयोग हो सकेगा ।" *

सिने गीत शिल्प में प्रगीतात्मक चेतना लक्षित होती है । इन गीतों की सहजता से यह भ्रम होता है कि शिल्प की उपेक्षा की जा रही है वस्तुत: ये गीत बहुत स्वाभाविक और जन मानस के बहुत निकट है । उनके भाव की क्षति नहीं हुई है । भाषा बोलचाल की भाषा है । छन्द संगीताश्रित और लयाश्रित है । प्रतीकों एवं बिम्बों का परम्परागत निर्वाह अधिक होने से दुरूहता भी नहीं आ पाई है । इसलिये सिने गीत शिल्प की दृष्टि से सुगम भी है और महत्वपूर्ण भी क्योंकि भारत वर्ष का एक बड़ा वर्ग इनसे विश्राम पा रहा है ।

सुविधा के लिये शिल्प को दो अध्यायों में विभक्त किया गया है । पहला अध्याय गीत शिल्प का है जिसके अन्तर्गत गीत रचना के स्वरूप को देखा गया है तथा दूसरे अध्याय में भाषा अलंकार बिम्ब प्रतीक पर विवेचना की गई ।

---

* जनता और साहित्य : शैलेश मटियानी : पृ. 56

अध्याय : ४

गीत-शिल्प

जिस प्रकार साहित्यिक गीतों में अनुभूति के बिना प्राण नहीं उत्पन्न होते उसी प्रकार उत्कृष्ट और जनप्रिय सिने गीतों में भी अनुभूति का संबल लेकर ही सिने गीतकार रचना करता है ।

रचना सम्भवत: किसी साहित्यकार के लिए अपने जिए और सोचे हुए के, मानवीय सौन्दर्य, जिजीविषा और संघर्ष के प्रति अपनी रागात्मकता तथा अपने लगाव को भाषा के माध्यम से दूसरों को अनुभव करा सकने की आकांक्षा में किए गए सृजनात्मक संघर्ष के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । अपने आत्मात्तिक अस्तित्व की सहभागि की तलाश, यह मानव मात्र की प्रवृत्ति है । लेखक होना मनुष्य के इस सर्वाधिक और सार्वभौम स्वभाव को जानना है । इस मानवीय स्वभाव में आस्था के बिना रचना की दिशा में प्रवृत्त होना ही सम्भव नहीं है, क्योंकि सिर्फ अपने लिए अभिव्यक्ति अथवा रचना का कोई अर्थ होता नहीं । अपने समय के सामाजिक, नैतिक और वैचारिक संघर्षों के बीच से एक व्यक्ति की हैसियत से गुजरते हुए अर्जित किए गए अपने अनुभवों को एक लेखक की हैसियत से दूसरों की चेतना और स्मृति से जोड़ने की आकांक्षा से ही रचना सम्भव होती है । इस दृष्टि से देखा जाए तो रचनाकार होना दरअसल एक लेखक होने को अहमन्यत में जीना नहीं, एक मनुष्य की हैसियत से - अपने समय के और कदाचित अपने अतीत तथा भविष्य के भी - मानवीय चिंतन के बीच की अपनी भूमिका को निबाह सकने की चिन्ता में रहना है । *

स्थूल प्रकार से ... सृजन की प्रक्रिया इस प्रकार स्पष्ट की जा सकती है । "हमारे मस्तिष्क पर जगत और जीवन के नाना रूपों और दृश्यों के प्रभाव पड़ते रहते हैं । इनमें से कुछ हमारी चेतना को

---

* जनता और साहित्य : शैलेश मटियानी : पृ. 9-10

अधिक प्रेरित करते हैं - कुछ अनुभूति को जागृत करते हैं और कुछ कल्पना पर गहरा प्रभाव डाल देते हैं । कवि जब ... लिखने बैठता है तब इन विविध प्रभावों से प्रभावित उसके संस्कार, चेतना और कल्पना के संस्पर्श से जाग उठते हैं । .... हमारी चेतना अन्तर्मुखी होकर कल्पना और अनुभूति पर पड़े इन प्रभावों को सहलाकर प्रेरित करती है । यहीं .... सृजन की क्रिया का आरम्भ होता है ।

चेतना के अंतर्मुखी प्रवेश के लिए छान्दसिक साँचों की सृष्टि कवि गुनगुनाकर करता है । जितनी ही कल्पना नव्य {ताजी}, मन स्वस्थ और अविकृत तथा अनुभूति संचरित और समंजस होगी उतनी ही शीघ्रता से ... पंक्तियों की सृष्टि होती जाएगी ।*

"अनुभूति का जो क्षेत्र सजग होता है उसी के अनुसार कल्पन बिंब प्रस्तुत करती है । नाद चेतना उसी के अनुरूप छान्दसिक साँचे ढालती है और स्मृति, बुद्धि, संस्कार आदि उसमें ठीक बैठनेवाले शब्द प्रस्तुत करते हैं .. इस प्रकार लगभग समस्त मानसिक शक्तियाँ .. सृजन में उद्बुद्ध होकर गतिशील हो जाती हैं ।"[2]

"कविता की उत्पत्ति क्यों होती है यह कहना कठिन है । पर इतना तो सहज स्वीकार किया जा सकता है कि वह मनुष्य के भाव संचालित, संवेदना-पूर्ण एवं आवेगयुक्त विशिष्ट क्षणों में ही बीज रूप से जन्म लेती है और बाद में बब बीज का फूलना-फलन विकसना भी प्राय एक प्रवाह के आश्रित रहता है ।[3]

---

*	डा॰ भगीरथ मिश्र	: काव्यशास्त्र	: पृ॰ 30-3
2	- वही -		पृ॰ 3
3	जगदीश गुप्त	: कवितांतर	: पृ॰ 25

सिने-गीत रचना प्रक्रिया :

"सिने-गीत रचना प्रक्रिया" उपरोक्त कथन के विपरीत है सिने गीत की उत्पत्ति का लक्ष्य निर्धारित होता है । उसकी भावसंचालिता संवेदना, आवेग, आदि पूर्व-निर्धारित होते हैं । वो पटकथाकार के मन में बीज रूप में जन्म लेती है और संगीतकार एवं गीतकार के माध्यम से फलती फूलती और विकसित होती है ।

सिनेमा क्योंकि एक व्यवसाय भी है इसलिए हर सिनेगीत बेचा जाता है अर्थात् उसका कुछ न कुछ मूल्य होता है -

जी हाँ हुजूर मैं गीत बेचता हूँ
जो गीत जनम का लिखूं, मरन का लिखूं
जो गीत जीत का लिखूं, शरन का लिखूं
यह गीत रेशमी है, यह खादी का
यह गीत पित्त है, यह बादी का
कुछ और डिजाइन भी हैं, ये इल्मी
यह लीजे चलती चीज, नयी, फिल्मी *

सिने गीत एक डिजाइन है जो सिचुएशन के हिसाब से और कथा के मूड के आधार पर बुनी जाती है । यहीं पर सिने गीत साहित्यिक गति से अलग हो जाता है । सिने गीत की रचना प्रक्रिया से गुजरते हुए गीतकार को यह ध्यान रखना पड़ता है कि उसमें भाव जटिलता या भाषा दुरूहता ना आ सके ।

---

* भवानी प्रसाद मिश्र : गीतफरोश : कवितान्तर : संकलनकर्ता - जगदीश गुप्त : पृ.

फिल्म उद्योग है । कविता या कहानी लिखना नहीं । फिल्म की सार्थकता इसी में है कि वह अधिक से अधिक दर्शकों तक पहुंच सके । हां ये बात पूछी जा सकती है कि अधिक से अधिक दर्शकों किस तरह के लोग आते हैं । मुख्य दर्शक तो वही हैं जिनके पास फिल्मों के अलावा मनोरंजन का कोई दूसरा साधन नहीं होता । हमें उनकी पसंदगी तो देखनी ही पड़ती है । उसे संगीत, नृत्य, कामेडी, मार धाड़ चाहिए । इसलिए हमें उनके साथ समझौता करना पड़ता है और अपनी फिल्मों में उनकी रुचि को ध्यान में देना पड़ता है । * उदाहरण के लिए "लावारिश" फिल्म में अमिताभ बच्चनपर स्त्री वेश में फिल्माने के लिए एक हलकी नौटंकी लिखी गई थी ;

मेरे अंगना में तुम्हारा क्या काम है
जो है नाम वाला वही तो बदनाम है
जिसकी बीबी गोरी ...[2]

यह समाज जहां इन्सान कई दिक्कतों में है परेशानी और मुसीबतों में है, दुखी है, ऐसे में यदि कोई चीज उसे चाहे थोड़ी देर के लिए ही सही उसका ध्यान परेशानियों से हटा देता है और उसे राहत देती है तो ये भी तो एक बहुत बड़ी सामाजिक जिम्मेवारी ही है ।[3] और सिने गीत की रचना में इस बात का ख्याल रखना पड़ता है कि गीत सरल और मर्मस्पर्शी हो तथा मनुष्य की मूल भावनाओं को आंदोलित करें ।

---

* फिल्म निर्देशक रघुनाथ झालानी : माधुरी : 29 अक्तूबर 1982 पृ. 12

2 लावारिश : अन्जान

3 पटकथा लेखक : जावेद : माधुरी 29 अक्तूबर से 11 नवम्बर, 1982 पृ. 11

छू लेने दो नाज़ुक होठों को
कुछ और नहीं हैं जाम है ये
कुदरत ने हमें जो बख्शा है
वो सबसे हसीं इनाम है ये *

यथा -

कोयल बोली दुनिया डोली
समझो दिल की बोली -[2]

समय के बदलते हुए बहाव के साथ सिने गीतकार और संगीतकार ने भी अपने आपको आधुनिकतम रखने का प्रयास किया है । पश्चिम के नवीन इलेक्ट्रानिक संगीत उपकरणों ने गीत संगीत के क्षेत्र में नई संभावनाओं को भेर दिया है । इन इलेक्ट्रानिक संगीत उपकरणों से विचित्र संगीत ध्वनियाँ उत्पन्न की जा रही है और उनकी धुन पर नई नई शैली के गीत लिखे जा रहे हैं । जिन्हें "डिस्को गीत" का नाम दिया गया है । नयी पीढ़ी ने इस संगीत का खुले हृदय से स्वागत किया है ।

आज हिन्दी फिल्मोद्योग के संगीताकाश पर पाश्चात्य हवाओं के साथ उभरे हुए डिस्को के बादल मंडरा रहे हैं जिनकी फुहारे नई पीढ़ी के एक वर्ग विशेष में थिरकन भर देती है ।[3] लंदन के प्रसिद्ध संगीतज्ञ बिड्डु ने अपनी एक पश्चिमी धुन पर एक गीत फिल्मी कुर्बानी में दिया जो अंतत लोकप्रिय हुआ । इस धुन पर शब्दों

---

* काजल : साहिर लुधियानवी
2 सरगम :
3 डा. हरिश्चन्द्र पाठक : माधुरी - 21 अक्तूबर 1982 पृ. ३०

"पिटोंग" इंदीवर ने की ।

आप जैसा कोई
मेरी जिन्दगी में आए
तो बात बन जाए
तो बात बन जाए *

इंदीवर की तरह उर्दू के शायर एवं सिने गीतकार मजरूह ने भी आधुनिकतम रचना-प्रक्रिया से तालमेल बिठलाते हुए फिल्म खुद्दार में इसी तरह की "शब्द पिटोंग" की ।

मैं एक डिस्को
तू है डिस्को
दुनिया है ये डिस्को
डिस्को - 82

सिने गीत की रचना प्रक्रिया में निम्न सोपान तय किए जा सकते हैं -

	सोपान		क्रिया		कर्ता
1.	गीत की पृष्ठभूमि	:	पटकथा के अनुरूप	:	पटकथाकार
2.	संगीत धुन	:	अभिनेता की भावभूमि	:	संगीतकार
3.	धुनाश्रित गीत रचना	:	पात्रानुसार भाषा	:	गीतकार
4.	संगीत गीत संतुलन	:	आर्केस्ट्रा	:	आयोजक/ संगीतकार
5.	कंठ संगीत	:	पात्र के मनोभाव	:	गायक
6.	यान्त्रिक ध्वनि आलेखन (रिकार्डिंग)	:	स्टूडियो	:	रिकार्डिस्ट

---
* कहानी ... वर

सिने गीत शिल्पियों पर यह लांछन लगाया जाता है कि गीत के अन्तिम उपलब्ध रूप में गीतकार का अस्तित्व बहुत कम होता है और रचना के मूल में कहीं निर्देशक, कहीं पटकथाकार, कहीं निर्माता कहीं वितरक तो कहीं संगीतकार तो कहीं गायक निवास करते हैं। ऐसा कहने वाले दरअसल सिने गीत की रचना प्रक्रिया को नहीं समझते। सिनेमा कला सर्व कलाओं को अपने में समो कर चलती है। इसलिए तकनीकी सुझावों और सीमाओं के बीच ही सिनेमा के हर शिल्पी को एक संतुलन बनाकर चलना पड़ता है। अत: सिने गीत-लेखन एक बहुत ही सधे हुए कुशल शिल्पी का कार्य है जो अपने मनोभावों को पात्र के मनोभावों में अवतरित कर दे। उदाहरण के लिये साहिर का यह गीत है जिसमें ?? गहन भावाभिव्यक्ति कितनी सरल बनी हुई है।

किसका रस्ता देखे
ऐ दिल ए सौ दाई
मीलों हैं खामोशी
बरसों है तनहाई। *

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कोई एक स्पष्ट निश्चित तथ्य, लक्ष्य, जीवन-दर्शन अथवा संदेश सिनेगीतकारों के पास नहीं रहा। वे फिल्म दर फिल्म उसी के अनुसार अपने आपको ढालते ही गए। लेकिन केवल इस बात को लेकर उनके महान योगदान को अनदेखा नहीं किया जा सकता। अगर किसी सिने गीतकार की पूरी रचना धर्मिता को आंका जाए तो निश्चित ही यह मिलेगा कि अनगिन तनावों के बीच काम करते हुए भी उसके पास अपनी खुद की एक पहचान बनी हुई है और उसकी रचना का विस्तार आदि से अनन्त तक है।

---

* जोशीला · ---हिर लुधियानवी

संगीत :   ..   ..   ..

प्रास्ताविक : संगीत विश्वात्मा की अभिव्यक्ति का सर्वप्रथम साधन है और भाषा और साहित्य के जन्म और निर्माण से पूर्व ही संगीत अपनी ध्वन्यात्मकता में सजग था । वस्तुत: शब्दों का मूल ध्वनिमय ओंकार है । इसी शब्द-संगीत से स्वर सप्तकों की सृष्टि हुई । समस्त विश्व स्वर का ही पुंजीभूत रूप है । *

संगीत और गीत का नाता चिरकाल से चला आ रहा है । दोनों सहचर और सहधर्मी है ।

---

* निराला : गीतिका : भूमिका : पृ. ।

कई लोगों का कहना है कोहकाफ में एक पंछी है उसे फारसी "अतिशज़न" कहते हैं इस पक्षी की चोंच के सात छिद्रों से सात प्रकार के स्वर निकलते हैं । संगीत में इन्हीं सात स्वरों को मुख्य स्वर मान लिया गया है । *

शिवपुराण के मतानुसार नारदजी ने अनेक वर्षों तक योग साधना की, तब शंकर जी ने उन पर प्रसन्न होकर संगीत कला उन्हें प्रदान की । पार्वती की शयन-मुद्रा देखकर शिवजी ने उनके अंग-प्रतिअंगों के आधार पर वीणा बनाई और अपने पाचों मुखों से पाच रागों की उत्पत्ति की । तत्पश्चात् छठवां राग पार्वती जी के श्रीमुख से उत्पन्न हुआ ।

संगीत दर्पण में दामोधर पंडित ने भी सात-स्वरों का अविर्भाव निम्न रूप से माना है ।

मोर से षड्ज
चातक से ॠषभ
बकरे से गान्धार
क्रोंच से मध्यम
कोयल से पंचम
हाथी से निषाद

किसी सुन्दर विचार की शब्द प्रस्तुति गीत है ।

तो

किसी सुंदर भावना की वाद्य प्रस्तुति संगीत है ।

---

* डॉ॰ लालमणि मिश्र : भारतीय संगीत वाद्य - पृ॰ 5।

संगीत और नाटक का पूरे विश्व में अविच्छिन्न संबंध रहा है । दो हजार साल पहले ग्रीस में जो त्रासद नाटक खेले जाते थे उनमें एक बांसुरी वादक पूरे नाटक के साथ अपने वादन को संजो कर चलता था । धीरे-धीरे नाटकों में संगीत की प्रधानता बढ़ती गई ।

जिस समय सिनेमा अपनी शैशवावस्था पूरी कर रहा था उस समय पश्चिम में महान शेक्सपीयर के नाटकों में भावोत्प्रेरक संगीत का आयोजन होता था । कहीं कहीं तो नाटक के पार्श्व संगीत के लिए एक सौ से भी अधिक वादक संगीत दिया करते थे । सिनेमा ने नाटक की इस संगीत विधा को भी अपने में पूर्ण रूप से समाहित कर लिया है ।

भारतवर्ष में संगीत की जड़ें कुछ विशेष गहरी हैं । जिस समय पश्चिम में संभवतः अपनी प्रारम्भिक अवस्था में होगा उस समय भारत वर्ष में संगीत संबंधी अनुपम संस्कृत के ग्रन्थ लिखे गए ।

यहाँ के मनीषियों ने संगीत को अलग रखकर तो चिंतन ही नहीं किया । संस्कृत भाषा की संगीतात्मकता के कारण आचार्यों ने भाषा के साथ-साथ संगीत को भी समृद्ध किया । संगीत की यह धारा वैदिक संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से भाषाओं एवं उपभाषाओं में विकसित होती हुई लोक जीवन में समा गई । जन्म से मृत्युपर्यन्त तक हमारे जीवन की विभिन्न अवसर इन्हीं संगीत के स्वरों से गूंजते रहते हैं । सावन का दर्दभरा विरहा, मीठी मल्हार तथा फागुन की मस्ती और नाच भरी होली किसने नहीं देखी सुनी होगी । पुत्र-जन्म पर सोहर और बधावे एवं विवाह के मंगल अवसर पर कितने ही प्रकार के गीत गाए जाते हैं ।

"प्राचीन संस्कृत प्रबन्धों के अनुसार - "गीतं वाद्यं तथा नृत्यं संगीत मुच्यते" - संगीत में कंठ संगीत, वाद्य संगीत और नृत्य इन तीनों का समावेश है । इस प्रकार संगीत "म्यूजिक" शब्द का समानार्थ नहीं है । जैसा कि पश्चिम में समझा जाता है क्योंकि संगीत में कंठ एवं वाद्य के अलावा नृत्य भी शामिल है । इस प्रत्येक स्वरूप को स्वतन्त्र रूप से पेश किया जा सकता है किन्तु चूंकि संगीत इन सब में समान रूप से विद्यमान है अतः इसे संगीत कहा जा सकता है ।

यह दो अनिवार्य आधारों - धुन और छंद पर निर्मित है । छंद काव्य में प्रयुक्त होने पर "मीटर" और संगीत तथा नृत्य में प्रयुक्त होने पर "रिद्म" कहलाता है । धुन को जब नियमबद्ध एवं विकसित रूप में ढाला जाए तब उसे "राग" कहा जाता है । इसी प्रकार विभिन्न छंद-बद्ध मात्राओं के छंद को जब नियमबद्ध स्वरूप अथवा छंद में गठित किया जाए तो उसे "ताल" कहा जाता है ।" *

संगीत शुरू से ही हमारी फिल्मों का आवश्यक अंग रहा है । बिना इसके हमारी फिल्मों की कल्पना भी नहीं की जा सकती । लेकिन यह भी सच है कि संगीत हर जगह नहीं खिलता । संगीत सबसे ज्यादा रोमांस में खिलता है लेकिन हर कहानी में रोमांस ही हो कोई जरूरी नहीं । इसीलिए संगीत की स्थिति पैदा करने के लिए कहानी में बदलाव लाना आवश्यक हो जाता है । लड़के को लड़की से मिलाना पड़ता है और लड़की का लड़के से ।"[2] फिल्म में संगीत और गीत का आंतरिक सम्बन्ध फिल्म संगीत का वह रू[illegible] है जहाँ संगीत किसी विशेष "मूड" की स्थापना करता है । संगीतकार

---

* निखिल घोष : राग ताल के मूल तत्व और अभिनव स्वर लिपि पद्धति : पृ.44

2 रघुनाथ [illegible] - पृ.12 अंक 21 अक्तूबर ।। [illegible]

एवं गीतकार की संयुक्त कल्पना इसका सब निर्माण तो करती ही है साथ-साथ परिष्कृत भी करती है ।

"शब्द और अर्थ तत्वतः पृथक सत्ता रखते हैं । संगीत में शुद्ध शब्द ध्वनि एवं नाद रूप में गृहित होता है । अर्थ से असम्पृक्त निरपेक्ष । इसी प्रकार लिपि में तथा अन्य संकेत विधियों में अर्थ शब्द निरपेक्ष होकर अवतरित होता है । शब्द श्रवणीय है । अर्थ बुद्धि-ग्राह्य वाणी एवं साहित्य में ही आकर शब्द और अर्थ दोनों अनन्योनाश्रित असपृक्त तथा अभिन्न अवस्था प्राप्त करते हैं । "

संगीत अवस्थायें : ....

संगीत की दृष्टि से सिने गीतों को चार सोपानों में विभक्त किया जा सकता है :

1. संगीत प्राधान्य अवस्था
2. विषय महत्त्व - उन्मेष अवस्था
3. विषय संगीत - संतुलन अवस्था
4. विषयी - प्राधान्य अवस्था

अंग्रेजी लेखकों ने भी विकास को प्रायः इन्हीं चार सोपानों में बाँटा है । अन्तर केवल इतना ही है कि वे विषय-संगीत-संतुलन अवस्था" को अन्तिम अवस्था मानते हैं तथा विषयी प्रधान अवस्था को उसकी पूर्ववर्ती अवस्था ।[2]

1. संगीत प्रधान अवस्था :

इसमें भाषा का स्वरूप अविकसित तथा अपरिष्कृत है, जिसमें

---

* जगदीश गुप्त - कवितान्तर - पृ. 24

2 दृष्ट———— हैपिल : लिरिक पर्म्स इन इंग्लिश

भावाभिव्यक्ति की स्वत: सामर्थ्य नहीं है । परिणाम स्वरूप गीतिकार बाध्य है कि वह संगीत का सहारा ले । .. श्रोता के निकट प्रभावशाली बनाने के लिए गायक किसी न किसी वाद्य यन्त्र का भी अवलम्ब लेता है ।

2. विषय महत्व : .. .. ..

द्वितीय सोपान में संगीत का स्थान तो पूर्ववत है किन्तु विषय के महत्व पर भी ध्यान दिया गया है । इस अवस्था में गीत और संगीत का अन्तर स्पष्ट होने लगा है । संगीत शास्त्रीय विधान की ओर झुकने लगा है और गीत आत्माभिव्यंजन की ओर ।

3. संतुलन :

तृतीय सोपान में संगीत तथा विषय वस्तु के महत्व समान हो जाते हैं । समानता और संतुलन के इस पारस्परिक मेल में वस्तुत: एक तत्व दूसरे का सहायक एवं पूरक है ।

4. विषय प्राधान्य :

चतुर्थ सोपान में ~~कवि~~ गीति काव्य के शास्त्रीय विधान का सर्वथा परित्याग कर देता है । अब वह संगीत के बाह्य पक्ष को त्याग कर उसके सूक्ष्म ~~रूप~~ तत्व को आत्मसात करता है । अब संगीत अनुभूति का अनुवादक है । उसका नियामक अथवा नियंता नहीं । अब संगीत गीति में जितना न्यून है आत्मानुभूति की मात्रा उसमें उतनी ही अधिक है । यही चरम परिणति है । *

---

* हिन्दी गीति काव्य : डा. रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी : पृ.32-34

शब्द लहर और संगीत लहर जिसे गीत में एक दूसरे को साथ लेकर चलती है । संगीत में उद्भव होता है शब्द का - शब्द विस्तार पाकर मुखर हो उठता है - विकास के बाद संगीत उसे छोड़कर हल्के से अलग हट जाता है । अनुभूति अब "शब्द-संगीतात्मक" हो उठती है और श्रोता के मन में रस पैदा कर देती है ।

हिन्दुस्तानी संगीत में गीत एक विशिष्ट राग और ताल में बंधा रहता है और तबला अथवा परवावज की संगति से गायक, वादक नर्तक की ताल के निश्चित ढांचे में विस्तार करने की सहायता मिलती है । इससे सही गति और समय कायम रखने में भी कलाकार का मार्ग दर्शन होता है । इसके साथ ही लयकारी के विभिन्न स्वरूपों के प्रदर्शन से संगीत का सौन्दर्य बढ़ता है । *

<u>राग :</u> .. ..

"रंजयते इति राग" का शाब्दिक अर्थ है राग मन को रंगीन बना देता है, सप्तरंगी विचारों को जन्म देता है । दूसरे शब्दों में वह मन को प्रफुल्लित करता है । राग के विभिन्न अंग और पहलू है ।"

<u>धुन :</u>

ध्वनियों का एक सम्मिलित रूप है जैसे बिन्दुओं का मिला हुआ रूप एक रेखा है ।

---

* रागताल के मूल तत्व और अभिनव स्वर लिपि पद्धति - निखिल घोष : पृ. 60

राग :

नाद ब्रह्म से उसके विविध स्वरूपों नाद बिन्दु, अनाहत नाद आहत नाद, मधुर नाद, श्रुति, स्वर सप्तक और थाट के जरिए बनता है -

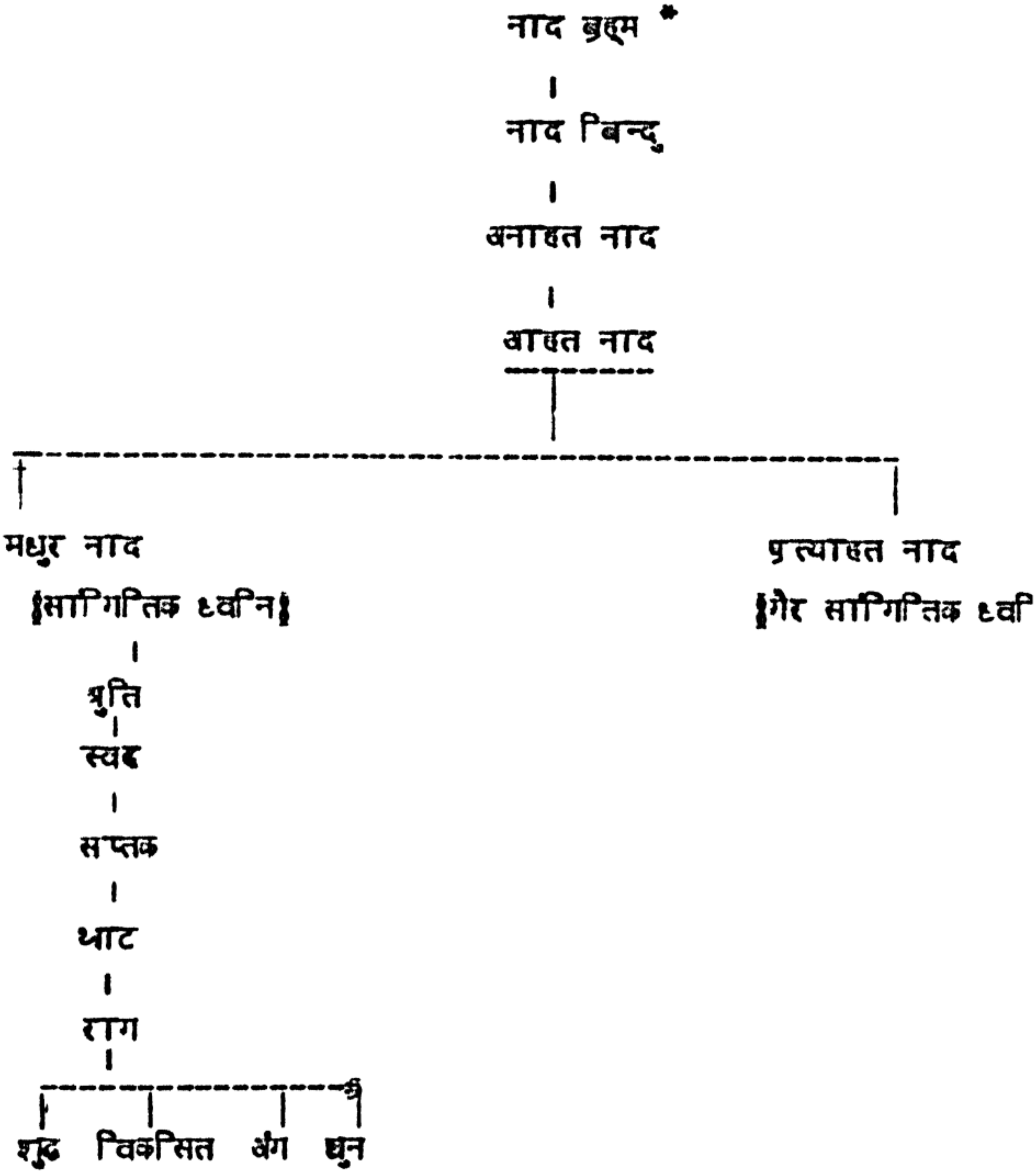

* रागताल के मूलतत्व और अभिनव स्वर लिपि पद्धति : निखिल घोष : पृ.45

राग स्वरों का कलापूर्ण एवं आनन्ददायक मिश्रण है, मात्र धुन नहीं । थाट एक ढांचा है जिसका कलापूर्ण वा रंजक होना आवश्य नहीं किन्तु राग का कलात्मक विवेकपूर्ण और रंजक होना जरूरी है । थाट रेखा है राग आकार ।

राग स्वर समुदाय की विशिष्ट रचना है और इसके महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त और लक्षण इस प्रकार है :

सिद्धान्त :

1. स्वर वर्ण - स्थायी, आरोही, अवरोही, संचारी
2. वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी
3. जाति-संपूर्ण, षाडव, औड़व
4. ग्रह स्वर और न्यास स्वर

लक्षण :

5. पकड राग वाचक स्वर समुदाय
6. समय और मौसम
7. भाव
8. नाम - देवी-देवता, स्त्री पुरूष, रचनाकार के नाम पर, स्थान के नाम पर ।

<u>सिने गीतों में प्रयुक्त कुछ राग :</u>

भैरव, पूर्वी, मालकौंस, जौनपुरी, बिलाल, तोड़ी, काफी, खमाज आदि का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है किन्तु अधिकतर राग के शुद्ध रूप के स्थान पर उसको आधार बनाकर धुन बना ली जाती है

ता ल :   ...   .

" ताल [टाइम मेजर] का संगीत के क्षेत्र में अत्याधिक महत्त्व है । ...... तर्क-संगत और व्यवस्थित तरीके से छंद [रिद्म [छंद काव्य में प्रयुक्त होने पर मीटर और संगीत अथवा नृत्य में प्रयुक्त होने पर रिद्म् कहलाता है ।] को प्रदर्शित करने का एक माध्यम है । ... ताल का मुख्य लक्ष्य और उद्देश्य छंद-प्रकाश है जिसे दूसरे शब्दों में ~~[illegible]~~ नियमबद्ध समय-माप कहा जाता है । विशिष्ट नाम, नियम, और श्रेणी के अंतर्गत प्रत्येक ताल विशिष्ट रखने का साधन मात्र नहीं है ।

जिस प्रकार विभिन्न चरणों से गुजरने के बाद राग का निमा होता है उसी प्रकार ताल भी समय के विभिन्न स्वरूपों- महाकाल क्रिया छंद क्रिया, अव्यक्त छंद क्रिया, व्यक्त छंद क्रिया और ताली से गुजरता है ।

महाकाल
|
क्रिया
|
छंद क्रिया
|
अव्यक्त छंद क्रिया
|
व्यक्त छंद क्रिया
|
ताली
|
ताल [ता - ल] [बीट]

---

* राग ताल के मूल त... ...भिनव स्वरलिपि पद्धति : निखिल घोष

ताल में कई तथ्य शामिल है ...

क) मात्रा

ख) अंग (बार)

ग) लय गति टैंपो

घ) ताली खाली सम

ङ) ठेका

च) जाति

छ) नाम और भाव

प्रत्येक चक्र में ताल के विशिष्ट गठन के अनुसार मात्राओं की व संख्या भिन्न भिन्न होती है जैसे :

त्रिताल	16 मात्रा
एकताल	12 मात्रा
झमताल	19 मात्रा
रूपक	7 मात्रा आदि *

प्रत्येक प्रमाणिक ताल का नाम है, जो उसके ढांचे और उसके भाव के अनुसार रखा गया है ।

तबला तथा पखावज पर ठीक ठीक बजाए गए प्रत्येक ताल से उसी प्रकार का भाव उत्पन्न होता है जैसा कि राग से । उदाहरण के लिए कहरवा, दादरा, खेमटा आदि से रूमानी भाव उत्पन्न होते हैं जब कि चौताल, धमार, तीव्रा, शूल ताल आदि से वीर रस और त्रिताल से शांत रस उत्पन्न होता है ।[2]

---

* रागताल के मूल तत्व और अभिनव स्वर लिपि : निखिल घोष : पृ. 6

2 वही : पृ. :

लय : ....

सूक्ष्म अध्ययन के द्वारा लय तत्त्व का जीवन से बहुत अधिक घनिष्ठ संबंध प्रमाणित होता है । इसकी व्याप्ति चेतना के क्षेत्र में बहुत गहरी है । हृदय, गति, श्वास - प्रश्वास, ऋतु-चक्र, दिन-रात आदि का अनुभव तो क्रमित रूप से होता ही है । जीव विज्ञान में जैविक शक्ति के साधारण क्रिया-कलाप में भी वैज्ञानिकों को लयात्मक रूप पैटर्न की स्थिति परिलक्षित होती है । मानव मस्तिष्क को प्रक्रिया भी लय युक्त सिद्ध हुई है । *

"ताल" की गति को "लय" कहा जाता है । ताल का गति वेग ही "लय" है । पश्चिमी संगीत में लय को टैम्पो {गति} कहा जाता है । सामान्यत: लय मापिनो {मैट्रोनोम} पर गिनी जानेवाली प्रति मिनट अस्सो अथवा उससे कम मात्रा की गति विलम्बित लय {लेन्टो} है । कुछ गायक इससे भी कम लय में गाते हैं जिसे धीमा {ग्रावे} कहा जाता है । अस्सो और एक सौ साठ के बीच की गति को मध्य लय {मादरातो} और एक सौ साठ से अधिक गति द्रुतलय {प्रेस्टो} कहा जाता है ।"[2]

लोक-संगीत :

सिने गीतों में अनेक लोक धुनें और लोक लयों जैसे गुंडानो, बनारसी, खंजरावालों की, ठुनमुनिया की कजली तथा सामान्य लय जिसमें जनता गाता है आदि का प्रयोग किया गया है । इसी प्रकार

---

* जगदीश गुप्त : कवितान्तर : पृ. 24-25

2 निखिल घोष : राग ताल के मूल तत्त्व और अभिनव स्वर लिपि पृ. 70

भैरव, भैरवी, पीलू, पूर्वी, काफी, सारंग, खमाज, कांगड़ा, देश, सोरठ, कलिंगड़ा, झिंझोटी आदि अनेक लोकरागों का जिनका विकास लोक-धुनों के आधार पर हुआ है जो मूलत: देशी राग या जिन्हें शास्त्रीय संगीत में क्षुद्र राग कहा गया है । प्रयोग किया है । उन तालों का भी प्रयोग किया है जो लोकताल है तथा जिनका प्रयोग लोकगीत गायन में होता है जैसे खेमटा, चांचर, रूपक, कहरवा, दादरा, अद्धा, धमार, चर्चरी, झपताल, त्रिताल आदि ।

फिल्मी धुनों का प्रभाव भजन कीर्तन तक पर पड़ा है । फिल्मी गीतों की धुनों पर तैयार किए हुए ऐसे भजन कीर्तनों की छोटी छोटी छपी हुई पुस्तिकाएं मेलों, उत्सवों, बस के अड्डों तथा रेलगाड़ियों में गा गा कर बेची जाती हैं ।

लोक जीवन में सांस्कृतिक एवं मांगलिक अवसरों पर गाये जानेवाले अनेक गीत आजकल लोक-धुनों के साथ-साथ सिने गीतों की धुन पर तैयार किये जा रहे हैं । सिने गीतों की धुन पर आधारित लोक-गीत धीरे-धीरे इतने परिवर्तित हो गये हैं कि लोग उनका लोक-गीत होने का अंदाजा करने लगे हैं ।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भावों के सहज स्फुरण के लिये संगीत आवश्यक है । शब्द अर्थ को एवं संगीत भाव चित्र को स्पष्ट करते हैं । संगीत के बिना सिने गीत की अभिव्यक्ति और अपूर्ण असम्भव है । सिने गीतों में राग रागनियों के साथ-साथ लोक-धुन का भी प्रयोग हुआ है ।

संगीत और गीत का ~~अविच्छिन्न~~ अविच्छिन्न सम्बन्ध है ।

....

गीत रूप :

सिने गीत हिन्दी सिनेमा के मूल प्राण है । अब तक की सफल फिल्मों को लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि इस सफलता के पीछे निश्चित रूप से सिने गीतों की लोकप्रियता रही । इन गीतों के रूप में काफी विविधता है ।

नागिन, अनारकली, आवारा, अलबेला, श्री चार सौ बीस अनमोल घड़ी से लेकर बाबी और नमक हलाल तक की सफलता के पीछे सिने गीत ही है ।

सिने गीतों की रचना कथानक के अनुरूप की जाती है । गीत परिस्थिति के अनुसार नायक नायिका समूह, पार्श्व अथवा किसी और माध्यम या व्यक्ति द्वारा गाया अथवा उस पर फिल्माया जा सकता है । इस रूप में यह एकल, युगल, समूह आदि तरह का हो सकता है ।

सिने गीतों के निम्नतम रूप हो सकते हैं ।

1 एकस्वर गीत {सोलो}
2 युगल गीत {ड्यूट} वार्ता गीत
3 समयुगल गीत
4 समूह गीत
5 शीर्षक गीत एवं कथानक गीत
6 नृत्य गीत

1 एकस्वर गीत :

ये गीत एकस्वर अर्थात् एक गायक द्वारा गाये जाते हैं इसके कई रूप सिने गीतों में आये हैं इन्हें "सोलो" कहा जाता है ।

एकस्वर गीतों के रूप :

अ} गीत　　　　ब} गजल
स} लोरी　　　　द} सम्बोधन
इ} पाश्वगीत ।

गीत :

सिने गीतों का एक बड़ा प्रतिशत इसके अन्तर्गत आत ै ये गीत नायिका अथवा नायक के मनोभावों, अभिव्यक्त्त आदि को दर्शाने के लिये रचे जाते हैं । ये शास्त्रीय छंद सम्मत भी हो सकते हैं और संगीताश्रित भी अथवा किसी पश्चिमी धुन की नकल । इसके माध्यम से नायक नायिका सामान्यत: प्रेम विरह भावों को दर्शाते हैं ।

चंचल शीतल निर्मल कोमल
संगीत की देवी स्वर सजनी
सुंदरता की हर प्रतिमा से
बढ़कर है तू सुन्दर सजनी *

(ब) गजल :

"गजल" की गायकी और रचना शिल्प विशिष्ट होते हैं। साथ ही गजल उर्दू बाहुल्य एवं फारसी साहित्य धारा से प्रभावित होती है।

विरह में तड़पते प्रेमी और मिलनातुर प्रेमी का प्रणय निवेदन आदि अनेक अवस्थाओं का वर्णन बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से गज़ल कर सकती है।

यूं ही कोई मिल गया था
सरे राह चलते चलते
वहीं थम के रह गई है
मेरी रात ढलते ढलते[2]

.. .. ..

जिंदगी जब भी तेरी
बजम में लाती है हमें
ये ज़मीं चांद से बेहर
नजर आती है हमें।[3]

---

* सत्यं शिवं सुन्दरम : आनन्द बक्शी
2 पाकीजा : कैफी आज़मी
3 उमराव जान : शहरयार

॥स॥ लोरी : .. ..

लोरी शिल्प का उद्देश्य माधुर्य पूर्ण शब्द तरंगों पर चेतना को तन्मय करना है । लोरी लोकमानस का गीत है :

मेरे घर आई एक नन्हीं सी परी
चाँदनी के हँसीन रथ पे सवार
उसकी बातों में शहद जैसी मिठास
उसकी साँसों में इतर का महकार *

॥द॥ सम्बोधन गीत :

सम्बोधन गीत विधा में गायक अथवा गायिका किसी व्यक्ति/समूह अथवा समाज विशेष को सम्बोधन करता/करती है :

जो हमने दास्ताँ अपनी सुनाई
आप क्यों रोए [2]

सम्बोधन गीत प्रायः गम्भीर चेतना से सम्बद्ध होते हैं जिनका एक निश्चित उद्देश्य होता है ।

जागो । सोने वालों सुन लो मेरी कहानी
क्या अमीरी क्या गरीबी भूलों बातें पुरानी ।[3]

पार्श्व गीत :

यह गीत अधिक तर कोई पात्र नहीं गाता अपितु एक अदृ गायक हो गाता है । जो कि कहानी की घटनाओं पर अपना दृष्टि

---

* कभी कभी : साहिर 2 वह कौन थी : राजा मेहदी अली खान
३ भूत बंगला

लिये होता है । कभी कभी यह गीत आगामी घटनाओं का संकेत भी करता है ।

उस मुल्क की सरहद को कोई छू नहीं सकता
जिस मुल्क की सरहद को निगहबान है आँखें *

इसी तरह वक्त का यह गीत वक्त की गरदिश को संकेत करता है ।

वक्त से दिन और रात वक्त से कल और आज
वक्त की हर शै गुलाम वक्त का हर शै पर राज साहिर ।

2. युगल गीत ‖डुएट‖ :

दो विषम लिंगी कंठ स्वर जिस गीत को मिलकर गाते हैं उसे शिल्प की दृष्टि से युगल गीत कहते हैं । युगल गीत को वार्ता गीत/संवाद भी कहा जा सकता है ।

नाट्य विधा में पात्रों के बीच कथोपकथन की शैली का प्रयोग होता है । चित्रपट में भी नाट्यशैली का यह रूप समाहित कर लिया सिनेमा में दो पात्रों के बीच भावनात्मक आदान-प्रदान के लिए कथोपकथन की शैली के साथ-साथ गीतों की शैली का भी प्रयोग किया गया है । इसे संवाद वार्तागीत की संज्ञा दी जा सकती है । संवाद गीत में दो पात्र गीत के माध्यम से अपनी अपनी बात कहते हैं । कहीं यह प्रश्नोत्तर शैली के रूप में होता है कहीं एक दूसरे के पूरक के रूप में या कहीं किसी मानवीय संवेदना के रूप में :

---

* आँखें :

प्रश्नोत्तर शैली :

इस विधा में एक प्रश्न पूछता है तो दूसरा उसका उत्तर देता है। इस शैली में उक्ति रहस्य छुपा रहता है।

नायिका : तूने कितने बरस का ?
नायक : तू कितने बरस की ?
नायिका : मैं सोला बरस की
नायक : तो मैं सतरा बरस का *

आनंद बक्षी ने प्रश्नोत्तर शैली के कई सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं।

नायक : सुनो
नायिका : कहो
नायक : कुछ हुआ क्या ?
नायिका : अभी तो नहीं, कुछ भी नहीं।[2]

पूरक-स्वरूप :

इस रूप में नायक एवं नायिका गीत के माध्यम से अपने प्रेम की परिपक्व स्थिति में पहुँचना चाहते हैं।

नायक : क्या खूब लगती हो बड़ी सुन्दर दिखती ह
नायिका : फिर से कहो कहते रहो अच्छा लगता है
जीवन का हर सपना अब अच्छा लगता है

---

* कर्ज : आनंद बक्शी
2 आपकी कसम : *
3 ध——— · इंदीवर

..   ..

नायिका : भंवरे ने खिलाया फूल, फूल को ले गया रा
नायक : भंवरे तू कहना ना भूल - "फूल तुझे - लग
मेरी उमर
नायिका : भंवरे तू कहना ना भूल - फूल तेरी हो गया
इधर उधर ।

वयसन्धि के विषय पर बनी राजकपूर की फिल्म बाबी में भी पूरकस्वरूप का बड़ा चटकीला उदाहरण मिलता है ।

नायक : सोचो कभी ऐसा हो तो क्या हो
हम तुम एक कमरे में बंद हो और चाभी खो
नायिका : तेरे नैनो की भूल भुलैयाा में बाबी खो जाए

<u>वार्ता गीतों में प्रेम के रंग :</u>

<u>रूठना मनाना - छेड़</u>

नायक : मेरा नाम आओ - मेरे पास आओ
नायिका : तेरा नाम आओ - तो मेरा नाम आओ,
तेरा मेरा मिलन बड़ा मुश्किल है [3]

..   ..   ..

नायक : बागों में बहार है
नायिका : है

---

* प्रेम रोग : संतोष आनंद
2 बाबी : आनंद बख्शी
3 ... मारा : आनंद बख्शी

नायक : कलियों मे निखार है

नायिका : है

नायक : कलियों पे निखार है

नायिका : है

नायक : तुमको मुझसे प्यार है

नायिका : न न न न न

छोड़ो हटो, पिया पकड़ों न बैया

आऊं न मैं तेरी बातों में सैया

नायक : तुमने कहा है देखो मुझे सैया

बोलो तुमको इकरार है *

.. .. ..

नायक : पलकों के पीछे से क्या तुमने कह डाला

फिर से तो फरमाया

नायिका : नयनों ने सपनों की महफिल सजाई है

तुम भी जरूर आना [2]

3 समयुगल गीत :

जो गीत दो पुरूष स्वर या दो नारी स्वरों में गाया जाए उसे समयुगल गीत कहा जाता है । यह अधिकतर दो पुरूष मित्र - या दो स्त्री अथवा दो नर्तकियों द्वारा एक साथ गाये जाते है ।

---

* अराधना : आनंद बख्शी

2 तलाश. : मजरूह

जैसे : <u>दो पुरूष स्वर</u>

ये दोस्ती हम नहीं छोड़ेंगे
तोड़ेंगे दम मगर
अपना साथ न छोड़ेंगे *

..   ..   ..

<u>दो नारी स्वर</u> :

हंसता हुआ नूरानी चेहरा
काली जुल्फे रंग सुनहरा
तेरी जवानी तौबा तौबा
दिलरूबा[2]

..   ..   ..

4 <u>समूह गीत</u> :

जब कई कंठ स्वर एक साथ गाते हैं या किसी एक मुख्य स्वर का अनुसरण करते हैं तो ऐसा गीत समूह गीत कहलाता है । यह समूह गीत किसी लोक नृत्य, भजन, कव्वाली, राष्ट्रीय गीत अथवा बालगीत हो सकता ।

<u>समूह गीत के रूप</u> :

{अ} कव्वाली   {ब} भजन
{स} राष्ट्रगीत   {द} बालगीत
{ई} पहेली गीत

---

* शोले : आनंद बक्शी   2   पारसमणि

ब-स-द-ई का विवेचन वस्तु के अन्तर्गत किया गया है ।

क्व्वाली :

.. .. ..

क्व्वाली एक लोक-गायक विधा है । एक प्रमुख क्व्वाल क्व्वाली का गायन करता है और उसके साथ बैठे हुए गायकों का समूह उसे दुहराता है । संगीत उपकरणों के साथ-साथ क्व्वाली में हथेली बजाकर {तालो} ताल देने का चलन होता है । कभी-कभी दो विभिन्न क्व्वालों में स्पर्दा भी होती है और किसी विषय पर शायरी के माध्यम से प्रश्नोत्तर भी किये जाते हैं । जैसे :

पर्दा है पर्दा, पर्दा, पर्दे के पीछे पर्दानशी है
पर्दानशीं को बेपर्दा न कर दूं तो
अकबर मेरा नाम नहीं ।

कोरस : पर्दा है पर्दा है *

.. ..

प्रतिस्पर्धा क्व्वाली :

प्रतिस्पर्धा क्व्वाली में स्त्री क्व्वाल और पुरूष क्व्वाल एक-दूसरे को तर्क को काटते हैं और उत्तर-प्रत्युत्तर करते हैं ।

स्त्री क्व्वाल : ये खुशी, ये महफिल
और ये नया अन्दाज है
समझनेवालों, समझ लो
उसमें भी एक राज है
राज की बात कह दूं तो

---

* अमर अकबर अन्थोनी : आनंद बख्शी

कोरस : राज खुलने का तुम पहले
ओ हो ....
राज खुलने का तुम पहले
जरा अन्जाम सोच लो
इशारों को अगर समझो
राज को राज रहने दो
इशारों को अगर समझो ।*

शीर्षक गीत :

जिस सिने गीत की रचना चलचित्र के "शीर्षक" को लेकर चलती है उसे शीर्षक गीत कहते हैं । अधिकतर चलचित्रों के शीर्षक उनके कथानकों को इंगित करते हैं किन्तु पात्रों के नाम पर या स्थानों के नाम पर भी चल-चित्रों के शीर्षक रक्खे जाते रहे हैं । इस प्रकार शीर्षक गीतों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

1. कथानक शीर्षक गीत
2. पात्र नामाधारित शीर्षक गीत
3. स्थान नामाधारित शीर्षक गीत
4. केवल शीर्षकों द्वारा रचित गीत ।

कथानक शीर्षक गीत :

इन गीतों में फिल्म के कथानक का संकेत गीत में दिया जाता है ।

---

* फकीरा : रविन्द्र जैन

चाँद से देखो दूर चकोरी
धरती दूर गगन से
आँख से दूर है आँख का तारा
बिछड़ा फूल चमन से
ये कैसा दस्तूर है यहाँ
चिराग कहाँ रोशनी कहाँ । *

.. .. ..

कहीं कहीं चलचित्र के शीर्षक के लिए जिस शीर्षक गीत की रचना की जाती है वो त्रुटिपूर्ण हो जाती है और उससे गीत की सार्थकता में कमी आ जाती है । कहीं कहीं तो विरोधाभास भी उत्पन्न हो जाता है । जैसे -

चले जा रहे हैं मोहब्बत के मारे
किनारे-किनारे
ना साहिल की परवाह
ना तूफाँ का डर है
ना जुल्मों का शिकवा
ना गम का असर है
उमीदों के बल पर
दिलों के सहारे - किनारे-किनारे ।[2]

.. ..

उपरोक्त गीत में "किनारे-किनारे का शीर्षक प्रयुक्त करने *मेरिल* गीत की मूल रचना और अंतरे और गीत के मुखड़े में विरोधा

---

* चिराग कहाँ रोशनी कहाँ : प्रेमधन
2 किनारे-किनारे : न्याय शर्मा

उत्पन्न हो गया है । पहली दो पंक्तियों में गीतकार लिखता है कि - "चले जा रहे है मोहब्बत के मारे किनारे किनारे ...." तो अगली पंक्तियों में लिखता है" ना साहिल (किनारा) की परवाह ना तूफां का डर है" अर्थात् जब के किनारे चल रहे हैं जब वे मझधार में नहीं है तो उन्हें साहिल की परवाह और तूफां का डर होने का प्रश्न ही कहाँ उठता है -

2. पात्र-नामाधारित शीर्षक गीत :

पात्र नामाधारित गीतों में फिल्म के चरित्रों के नाम गीतों में जोडे जाते हैं ।

भूल गया सब कुछ
याद नहीं अब कुछ
एक यही बात ना भूली
जूली ... आई लव यू *

जूली की तरह राजकपूर की बाबी फिल्म में इसी प्रकार की रचना गीत में की गई है ।

सोचो कभी ऐसा हो तो क्या हो
हम तुम एक कमरे में बंद हों और चाभी खो जाए
तेरे नैनों की भूल भुलैया में बाबी खो जाए ।[2]

.. .. ..

अमर-अकबर-अंथोनी मनमोहन देसाई की एक फार्मूला फिल्म थी जिसके तीन नायक, क्रमशः "अमर", "अकबर" एवं अंथोनी थे ।

---

* जूली : आनंद बख्शी 2 बाबी : आनंद बख्शी

अनहोनी को होनी कर दें
होनी को अन होनी
एक जगह जब जमा हो तीनों
अमर अकबर - अन्थोनी *

इसी प्रकार नूरी, कालीचरण, फकीरा आदि अनेक फिल्मों में इसी प्रकार के पात्र नामाधारित गीतों की रचना की गई है ।

<u>स्थान नामाधारित शीर्षक गीत :</u>

इन गीतों में किसी स्थान विशेष को गीत की रचना में जोड़ा जाता है । जो फिल्म का शीर्षक होता है ।

छोड़ो कल की बातें कल की बात पुरानी
नये युग से लिखेंगे हम मिल के नयी कहानी
हम हिन्दुस्तानी[2]

फिल्म के शीर्षक के लिये एक शीर्षक गीत की रचना हिन्दी सिनेमा में अनिवार्य सी हो गयी है ।

होठों पे सचाई रहती है, जहां दिल में सफाई रहती है
हम उस देश के वासी है, जिस देश में गंगा बहती है ।[3]

इसी तरह लव इन टोक्यो, अराउण्ड दी वर्ल्ड, आदि अनेक फिल्में हैं जिनमें ये गीत मिलते हैं ।

---

* अमर अकबर अन्थोनी : आनंद बक्शी
2 हम हिन्दुस्तानी :
3 जिस देश में गंगा बहती है : शैलेन्द्र

नृत्य गीत :

नृत्य गीतों का आधार नृत्य की शास्त्रीय अथवा ताल ‖बीट‖ होती है । नृत्य के लयताल के साथ शब्दों का ताल-मेल बैठाना पड़ता है । नृत्य-लोक नृत्य केबरे, मुजरा सब नृत्य गीत की ही शाखायें हैं । सिनेमा में इन नृत्य गीतों का प्रारंभ से ही प्रयोग होता रहा है । सिनेमा से पहले पारसी रंगमंच एवं अन्य नाटकों में नृत्य गीतों की संयोजना मिलती है । व्यवसायिक फिल्मों में नृत्य गीतों का होना सफलता की गारंटी माना जाता है, नीचे हम कुछ नृत्य गीतों के उदाहरण दे रहे हैं :

लोक-नृत्य गीत :

संघर्ष फिल्म में दिलीप कुमार पर एक लोक नृत्य फिल्माया गया था जो काफी लोकप्रिय हुआ ।

मेरे पैरों में घुंघरू बंधा दे तो फिर मेरी चाल देख ले
मोहे लाली चुनरिया उढ़ा दे तो फिर मेरी चाल देख ले *

सांस्कृतिक नृत्य गीत :

ये नृत्य गीत पर्व त्यौहार होली आदि सांस्कृतिक अवसरों पर फिल्म में रखे जाते हैं । जिसमें "होली" का नृत्य-गीत बहुत जनप्रिय है :

होली खेलत नंद लाल बिरज में
बाजत ढोलक झांझ मंजीरा

---

* संघर्ष : शकील

गावत सब मिल आज कबीरा
नाचत दे दे ताल .... *

<u>शास्त्रीय नृत्य गीत</u> :

इन नृत्य गीतों में नृत्य विधा से सम्बन्धित शब्दावली एवं ताल स्वरादि का प्रयोग किया जाता है जिससे नृत्य सजीव हो उठता है ।

छम छम घुंघरु बोले देखो
राधा लाज की मारी डत डत डोले [2]

<u>नृत्य गीत</u> :

<u>मुजरा गीत</u> : सिनेमा में मुजरा गीतों की परम्परा शुरू से है । मनोरंजन की दृष्टि से नृत्य-गीत की संयोजना के लि मुजरा नृत्य फिल्म का एक तरह से आवश्यक अंग बन गया है । परवर्ती फिल्मों में इसी मुजरा शैली पर पाश्चात्य रंग के कैबरे नृत्यों को प्रयोग होने लगा है ।

हिन्दी फिल्मों में मुजरे या तो शुद्ध मनोरंजन की दृष्टि से डाले जाते हैं जहाँ नायक अथवा खलनायक को पटकथा में कोठे पर लाया जाता है और मुजरा होता है अथवा वेश्या जीवन पर आधारित कहानी जैसे "उमरावजान"[3] पाकीजा आदि में जहाँ फिल्म का केन्द्र वेश्या नायिका होती है :

---

* गोदान : अजीन
2 काजल : साहिर
3 दिल चीज क्या है आप मेरी जान लीजिये
= मेरा कहा मान लीजिये उमराव

मुजरों की भरमार होती है
कुछ मुजरा नृत्य शास्त्रीय पद्धति से फिल्माये जाते रहे हैं
जैसे : इन्हीं लोगों ने, इन्हीं लोगों ने
ले लीन्हा दुपट्टा मेरा *

इसी तरह फिल्म उमराव जान के मुजरे भी शास्त्रीय मापदण्ड पर खरे उतरते हैं ।

डिस्को एवं कैबरे :

हिन्दी सिनेमा पर प्रारंभ से ही पश्चिमी सभ्यता एवं उसकी नृत्य शैली की धाक बनी रही है । जहाँ एक तरह निर्माता शुद्ध भारतीय संस्कृति और नृत्य को पोषित करते रहें वहीं दूसरी तरह दूसरे निर्माता व्यवसायिक दृष्टिकोण से उत्तेजनात्मक कैबरे नृत्य आदि को अपने चलचित्रों में जगह देते रहे । पश्चिमी कल्चर का आधुनिकतम रूप है डिस्को - यह शब्द इतना चला है कि चप्पल-जूतों यहाँ तक रेलगाड़ी में चने बेचने वाले भी "डिस्को चने" बेच रहे हैं । हिन्दी सिनेमा में भी इस डिस्को नृत्य का खुलकर प्रयोग हो रहा है ।

---

* जुस्तजू जिसकी थी उसको तो न पाया हमने
- उमराव जान : शहर यार

2 इन आँखों की मस्ती के दीवाने हजारों है
- उमराव जान : शहर यार

लोक गीत और लोक शैलियाँ :   ....

लोकगीत : लोकगीत मानव हृदय से निकले हुए वो सहज भाव है जिसे उसने कहीं लिखा नहीं अपितु वे मनुष्य जाति के कण्ठों में अमर हो गये । इन लोक गीतों में प्रकृति की सुरम्य छटायें, लहलहाते खेत, सरिता का कलह, ग्वालों की ताने, पनघट के गीत गरबा आदि कितने ही प्रसंग आते हैं जो देश की संस्कृति के परिचायक है । "गीतों की यह परम्परा तब तक जीवित है जबतक मानव का अस्तित्व विद्यमान है । आदि मानव के कण्ठ से जो विकृत भाव कभी निकले थे कालान्तर में वे गीत बन गये । गीतों के प्रारम्भ के प्रति एक सम्भावना हमारे पास है पर उसके अंत की कोई कल्पना नहीं । यह वह बड़ी धारा है जिसमें अनेक छोटी धाराओं ने मिलकर उसे सागर की तरह गम्भीर बना दिया है । सदियों की घात-प्रतिघात ने इसमें अपना आश्रय पाया है ।

मन की विभिन्न स्थितियों ने इसमें अपनी थकान मिटाई है । इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानों में प्रेम मस्ती आई है बूढ़ों ने मन बहलायें है, वैरागियों ने उपदेशों का पान कराया है, विरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकांगी जीवन में रस पाया है । पथिकों ने थकावट दूर की है, किसानों ने अपने बड़े-बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाये हैं और मौजियों ने चुटकले छोड़े हैं ।" *

सिने गीतों में लोक गीतों का प्रयोग काफी हुआ है । ये लोक गीत ब्रज, अवधी, भोजपुरी, पंजाब, गोवन बंगाल, महारा आदि लोक अंचलों से सिने गीतों में आये हैं ।

दिल्ली के आस-पास एक लोकगीत प्रचलित है ।

अटरिया में चोर भाभी दियो जलइयो
पलंग नीचे चोर भाभी दियो जलइयों

इस लोकगीत को "मेरा गांव मेरा देश" के एक गीत में आनंद बख्शी ने ज्यों का त्यों ढाल दिया है ।

आया आया अटरिया में कोई चोर
ओ भाभी आना, जरा दिया जलाना

इसी तरह फिल्म बॉबी का एक गीत "ना मांगू सोना चांदी ना मांगू हीरा मोती ये मेरे किस काम के" एक गोवन लोकगीत पर आधारित है ।

---

* श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य" पृ.53

मन का विभिन्न स्थितियां ने इसमें अपनी थकान मिटाई है। इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानों में प्रेम मस्ती आई है बूढ़ों ने मन बहलायें है, वैरागियों ने उपदेशों का पान कराया है, विरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अप एकांगी जीवन में रस पाया है। पथिकों ने थकावट दूर की है, किसानों ने अपने बड़े-बड़े खेत जोतेब हैं, मजदूरों ने विशाल भवन पर पत्थर चढ़ाये हैं और मौजियों ने चुटकुले छोड़े हैं।" *

सिने गीतों में लोक गीतों का प्रयोग काफी हुआ है। ये लोक गीत ब्रज, अवधी, भोजपुरी, पंजाब, गोवन बंगाल, मह आदि लोक अंचलों से सिने गीतों में आये हैं।

दिल्ली के आस-पास एक लोकगीत प्रचलित है।

अटरिया में चोर भाभी दियो जलइयो
पलंग नीचे चोर भाभी दियो जलइयों

इस लोकगीत को "मेरा ब गांव मेरा देश" के एक गीत में आनंद बख्शी ने ज्यों का त्यों डाल दिया है।

आया आया अटरिया में कोई चोर
ओ भाभी आना, ज़रा दिया जलाना

इसी तरह फिल्म बॉबी का एक गीत "ना मांगू सोना चांदी न मांगू हीरा मोती ये मेरे किस काम के" एक गोवन लोकगीत पर आधारित है।

---

* श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य" पृ.53

सिने गीतकारों ने लोकगीतों को थोड़ा बहुत काट छ
अथवा उनकी शैली को अपना कर उसे प्रयोग में ले लिया है ।
इन गीतों का विवरण हम लोक शैलियों के अन्तर्गत दे रहे हैं ।

लोक शैलियाँ : .. ..

जैसा कि सर्व विदित है सिने माध्यम का साहित्य ज
का साहित्य है । शिष्ट साहित्य केवल शिष्ट वर्ग तक ही बंध
है तथा समाज का एक बड़ा प्रतिशत जो ग्रामीण, अशिक्षित, अ
गंवार और कामगार सर्वहारा वर्ग का है उस तक नहीं पहुंच पा

अतः सिने गीतों में अधिकतर लोक शैलियों का प्रयोग
रहा है जो लोक मानस से सम्बन्धित है ।

सिने गीतों में निम्न लोक शैलियाँ अधिकतर प्रयुक्त की
गई है ।

कजली, लावनी, पूर्वी, चैती, दरवेशों-फकीरों की शै
बिरहा, फेरीवालों की शैली, व्यंग्य शैली, लोक शिक्षण शैली,
लोकोक्ति शैली, प्रश्नोत्तर शैली, पहेलियों की शैली ।

1. कजली : कजली उत्तर भारत में स्त्रियों द्वारा गेय अति प्
गायन शैली है । इसका उद्भव, "कज्जल" से है ।
काली-काली घटाओं को भी "कजरी" कहते हैं और काली मा
भी एक नाम कजरी है । श्रावण में जब काली घटाओं के छाने प
प्रवासी प्रियतम के विरह में नवयौवना प्रतीक्षारत नायिका की
की कजरी जब आंसुओं में घुलती है तब अनायास ही जिस गीत
जन्म हुआ होगा संभवतः वही कजरी है :

सावन का जादू, बागया म डाले
कोई मेरे अंगों में, पिउ पिउ बोले
नाचे मयूर बन, अंगना में विरहन
पी को दरस लख, कजरा घोले ..... *

फिल्मी गीतों में यदा-कदा कजरी का बहुत सुन्दर प्रयोग मिलता है।

सज गई बिन्दिया, संवर गया कजरा
घुल गये अँखियों में कारे कारे बदरा ...[2]

सावन का महीना पवन करे सोर
जियरा रे झूमे रे, ऐसे जैसे बन मा नाचे मोर
जिनके बलम बेरी गए है बिदेसवा
लाई है बरखा उसके प्यार का संदेसवा
कारी मतवारी घटाएं घनघोर ......[3]

लावणी : लावणी मुख्य रूप से श्रृंगार रस सम्बन्धी गायन शैली ही है - इस गायकी के ढंग को ही लावणी कहा जाता है और उसे हिन्दुस्तानी संगीत में देसी राग के अन्तर्गत एक उपराग के रूप में माना गया है :-

कच्चे धागे के साथ जिसे, बाँध लिया जाए ...
वो बंदी क्या छूटे, वहीं पे जिए वहीं मर जाए

---

* दया कृष्ण गोयल : अप्रकाशित काव्य संग्रह
2 मन मेरा तन तेरा :
3 मिलन : आनन्द बख्शी
4 कच्चे धागे : "

पूर्वी : पूर्वी बिहार की विशेष लोक गायन शैली है । इसका उद्गम छपरा जिले के आसपास माना जाता है । वि वर्णन और श्रृंगार रस के लिए यह बहुत उपयुक्त है । पूर्वी में ह ईश्वरीय वंदनाएं भी की गई है । पूर्वी फागुन मास के समय भ के पूर्वी समुद्र से उठते हुए पूर्वा [मानसून] के स्वागत के लिए भ गाई जाती है ।

पुरवा सुहानी आई रे, देखो पुरवा
रूतुओं की रानी आई रे, देखो पुरवा .... *

चेती : बसंत रुत में गाई जानेवाली शैली चेती भी है । इसक प्रचलन मिथिला एवं भोजपुर में है । इस शैली में आर या अंत में रामा हो ~~अ~~ रामा, हे रामा आदि का प्रयोग होता है :

राम करे बबुआ हमार फुलुआ को
हमरी उमर लग जाए .....[2]

मैने कहा ना ना ना न
उसने कहा हां हां हां हां
मेरी ना ना ना में उसकी हां हां हा में
ओ रामा .....[3]

दरवेशों - फकीरों की शैली :

सम्पूर्ण भारत में मांगनेवाले कीर्तनिए और फकीरों की

---

*	पूर्व पश्चिम	:	संतोषानंद
2	अनुराग	:	आनंद बक्षी
-	[illegible]	:	[illegible]

एक शैली है । इस गायकी की शैली से ये लोग माँग कर जीविका का निर्वाह करते हैं :

फिल्मी गीतों में इस शैली का प्रयोग भी किया गया है । विशेषकर संगीतकार रवि ने अपनी कई फिल्मों में फकीर शैली के गीत रखे हैं :

गरीबों की सुनो वो तुम्हारी सुनेगा
तुम एक पैसा दोगे वो दस लाख देगा । *

.. .. ..

अल्ला ही अल्ला कर प्यारे भई अल्ला ही अल्ला
मौला ही मौला कर प्यारे ...[2]

<u>बिरहा</u> : बिरहा एक ऐसी प्रचलित लोकगीत शैली है जिसमें संयोग, वियोग, करुणा सभी के प्रसंग व गाए जाते हैं :

मेरे देश की धरती,
सोना उगले उगले हीरे मोती
मेरे देश की धरती .....[3]

<u>फेरीवालों की शैली</u> :

फेरीवालों की गा गा कर अपनी वस्तुएं बेचने की एक विशिष्ट गायन शैली है । ये लोग इस तरह ग्राहकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं । चूरन, चटनी, चना, बेर, फल, चक्कू तेज-धार आदि

---

* दस लाख :

2 पवित्र पापी : प्रेम धवन

3 उपकार :

वस्तुओं को जिने गीतों में फेरी वालों की शैली में ढाला गया है ।

बेर ले लो बेर, बेर ल्यों, बेर ल्यो, बेरल्यो -
हां .... मेवा गरीबों का ...... *

.. .. ..

लेई लो चम्पा चमेली गुलाब लेई लो
सेवरों की लड़िया सेजों की कलियां
फूलों का उठता शबाब लेई लो .....[2]

.. .. ..

चक्कू छुरियां तेज करा लो
मैं तो रक्खू ऐसो धार
के चक्कू बन जाए तलवार ....[3]

.. .. ..

चना जोर गरम बाबू मैं लाया मजेदार
चना जोर गरम ....[4]

व्यंग्य शैली :

लोक व्यंग्य शैली जहां भी लोक मर्यादाओं का हनन होता है उसका विरोध करने के लिए व्यंग्यात्मक ढंग से गाई जानेवाली गायन होती है :

---

*	पैसा या प्यार	:	
2	सोने के हाथ	:	राजेन्द्र कृष्ण
3	जंजीर	:	गुलशन बावरा
4	क्रान्ति	:	संतोष आनंद

धरम भी होगा करम भी होगा
परन्तु शर्म नहीं होगी
बात बात में मात-पिता को
बेटा आँख दिखाएगा .... *

..   ..   ..

आदमी है बन्दर, रोटी उठाके भागे,
कपड़े चुरा के भागे, कहलाए वो सिकन्दर...[2]

लोक-शिक्षण शैली :

लोक जीवन में इस शैली का प्रचलन भी बहुत है । यह लोक शिक्षा सामान्य जीवन से संबंधित होती है और सद्विचारों की तरह समाज को प्रेरित करती है -

माया का आँचल जले, काया का अभिमान
जो आया वो जाएगा, होनी है बलवान
ओ पगले देर न होगी पल भर की
कि जिस दिन चल चल चल होगी ....[3]

..   ..   ..

काबे में रहो या काशी में
निस्बत तो उसी की जात से है
तुम राम कहो या रहीम कहो
मतलब तो उसी की बात से है ...[4]

---

* गोपी : राजेन्द्र कृष्ण   2 सत्यकाम : कैफी आज़मी
3 किनारे किनारे : न्याय शर्मा   4 धर्म पुत्र : साहिर

ना सुन सुन सुन बुरा, ना देख देख देख बुरा
ना बोल बोल बोल बुरा, ना सुन बुरा,
देख बुरा, बोल बुरा .. ... *

लोकोक्ति शैली :

लोक में प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों की गायन शैली बड़ी चुटीली होती है ।

सिने गीतों में लोकोक्तियों का प्रयोग अक्सर पात्र के मनोद्वंद्व को सही रास्ता दिखाने के लिए किया जाता है :

मूरख की प्रीत बुरी, जुए की जीत बुरी
बुरे संग बैठ, चैन भागे ही भागे
काजल की कोठरी में, कैसो ही जतन करो
काजल का दाग भाई लागे ही लागे ......[2]

प्रश्नोत्तर शैली :

इस शैली में प्रथम पंक्ति में प्रश्न होता है । नायक या नायिका प्रश्न पूछता और इसकी पंक्ति में उत्तर दिया जाता है ।

नायिका : दिन है बहार के तेरे मेरे इकरार के
दिल के सहारे आजा प्यार करें

नायक : दुश्मन है प्यार के जब लाखों गम संसार के ..
दिल के सहारे कैसे प्यार करें ....[3]

---

* प्रिया : कमर जलालाबादी
2 गोपी : राजेन्द्र कृष्ण
3 वक्त : साहिर

पहेलियों की शैली :

पहेली एक ऐसा रूप है जिसमें प्रश्न में ही उत्तर निहित रहता है । अथवा सांकेतिक होता है । पहेलियां मनोरंजन के साथ-साथ बुद्धि मापक साधन भी होती है ।

पहेली एक प्रकार की वस्तु को सुझानेवालों उपमानों से निर्मित शब्द चित्रावली होती है ।

ना तो आज बरसात का मौसम
ना कहीं छाई बदरिया ...
फिर भी मोरे जियरा में चमके
छम छम कोई बिजुरिया .... *

.. .. ..

वो कौन है वो कौन है जो ऐसी होती है
दिल तड़पता है उसका और आंख रोती है
हवा नहीं, घटा नहीं, धुआं - नहीं याद -[2]

सिने गीतकारों ने लोकगीत एवं लोक शैलियों के इस विराट भंडार का अपनी रचनाओं में खुलकर प्रयोग किया है । ये लोक शैलियाँ दैनंदिन जीवन की झाकियों से जुड़ी हुई है और व्यक्ति के जीवन को छूकर निकलती है इसलिये इनकी लोकप्रियता में कोई संदेह नहीं होता । और कवि गीतकार इनको अपने गीतों में कुछ इस तरह बांध देता है कि वह मणि-कांचन सा दिखाई देने लगता है ।

---

* बंधन : इंदीवर

2 मेरा घर मेरे बच्चे : हसरत

अध्याय : 5

भाषा-शिल्प

भाषा-शिल्प : ....

भाषा संरचना और भाषा व्यवहार के कई स्तर लक्षित किये जाते रहे हैं । प्रस्तुत संदर्भ में दो स्तरों की चर्चा आवश्यक है । बोलचाल की भाषा तथा कृत्रिम साहित्य की भाषा, एक समय था जब काव्य भाषा एवं सामान्य भाषा में अन्तर किया जाता था । इस अवस्था में साहित्य भाषा को विशेष माना जाता था और ये विशिष्ट भाषा साहित्य को एक विशिष्ट वर्ग से ही जोड़ती थी । आज का युग सामान्य जन पर केन्द्रित साहित्य का है । इसलिए भाषा का वर्गीय वैशिष्ट किसी प्रकार मान्य नहीं हो वो विशिष्ट वर्ग अब समाप्त हो गये हैं जो साहित्य को प्रश्रय और संरक्षण प्रदान करते थे । आज सामान्य जन ही साहित्य को

संरक्षण देनेवाला है । इसलिए सामान्य जन जीवन से वस्तु-ग्रहण आवश्यक हो गया वहाँ उसकी भाषा का प्रयोग भी अनिवार्य-सा हो गया है । यह सिद्धान्त एक प्रकार से सर्वमान्यसा है ।

भाषा प्रेषण का वह माध्यम है जो व्यक्ति और समाज के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है । जहाँ तक साहित्य का सम्बन्ध है साहित्य की भाषा सर्जक और पाठक से, पाठक को सर्जक से जोड़ती है। "प्राथमिक स्थर पर भाषा ही वह माध्यम है जिसके सहारे हम एक पाठक की हैसियत से किसी लेखक के रचना संसार में प्रवेश करते हैं । " *

पाठक से जुड़ने की एक अनिवार्यता सर्जक के सामने होती है । इसलिए उसे एक ऐसी भाषा की खोज रहती है जो उसके और पाठक के बीच सेतु बन सके । भाषा अन्वेषण साहित्यकार के सर्जन व्यापर का ही एक भाग है । जिन्दगी और भाषा को साथ साथ जिया जाता है । भाषा के बिना जिन्दगी, और जिन्दगी के बिना भाषा मानवीय इतिहास में कभी भी सम्भव नहीं हुई है ।

जिस जिन्दगी को जिया जाता है वही साहित्यिक रचना-प्रक्रिया में होती है । सिने-गीतों के साथ यह बात और सही है । किसी भी फिल्म का "हिट" होना या "फ्लाप" होना सामान्य जन के उसके ग्रहण करने पर निर्भर रहता है । जिन फिल्मों की और गीतों की भाषा सामान्य जन भाषा को स्पर्श नहीं करती वेः प्रायः "हिट" नहीं हो सकते इसलिए सिने-गीतों को जन-भाषा के साँचे में ढालना

---

* जनता और साहित्य : शैलेश मटियानी : पृ. 26

पूर्णतः अपेक्षित है ।

> जानेवालों जरा मुड़ के देखो मुझे एक इंसान हूं मैं तुम्हारी तरह
> जिसने सबको रचा अपने ही रूप से उसकी पहचान हूं मैं
> तुम्हारी तरह । *

<u>बोलचाल की भाषा :</u> .. .. .

आजका गीतकार यह अनुभव करने लगा है कि भाषा केवल माध्यम नहीं है अनुभव को व्यक्त करने का बल्कि उसके द्वारा अनुभव की प्रामाणिकता भी सिद्ध होती है और यह भी कि उसमें परिवेशगत सक्रियता कितनी है । सिनेगीत रचना की भाषा एक सतत साधना है, शब्दों को नये लय एवं संवेदनशील अर्थ देने की तथा इस साधना से भाषा नये रूप में ढलती रहती है । सन् 1960 के बाद के सिने-गीतकारों को भाषा का एक नया वातावरण मिला, सिनेमा की बढ़ती हुई लोक-प्रियता ने उनके सामने एक बोलचाल की भाषा की एक ऐसी भूमिका तैयार कर दी थी जो नयी एवं पुरानी पीढ़ी दोनों को स्वीकार थी, इसलिए उन्होंने अपना शब्द भण्डार आम भाषा से जोड़ दिया ।

ऊपर के कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि बोल-चाल की भाषा को गीतकार ज्यों का त्यों ग्रहण कर ले । गीत की भाषा का आधार बोलचाल की भाषा हो सकती है किन्तु उस भाषा में ऐसी वक्रताएं भंगिमाएं एवं नयी संरचनाएं लाना अति आवश्यक है । बिना इसके गीत रचना संभव ही नहीं हो सकती । इस संबंध में डा. सावित्री जी का मत दृष्टव्य है : -- " सामान्यतः साधारण प्रयोग की भाषा तथा काव्य की भाषा में भेद है । साधारण प्रयोग की भाषा रूढ़ अर्थों से

---

* फिल्म दोस्ती : मजरूह सुलतानपुरी

युक्त शब्दोंवाली अभिधात्मक होती है जब कि काव्य भाषा में प्रयुक्त शब्द किसी निश्चित अर्थ की अभिव्यक्ति द्वारा हमारी भावनाओं को संकेत ही नहीं करती प्रत्युत अपने में अर्न्निहित प्रसंग गर्भित, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ अथवा ध्वन्यार्थ के द्वारा एक वातावरण की सृष्टि करके उसका सम्प्रेषण हृदयतक करते हैं । बाह्य जगत के साथ रागात्मक सम्पर्क के फलस्वरूप अनेक चित्र कवि की कल्पना में उद्भूत होकर एक रूप हो जाते हैं और जिन शब्दों द्वारा कवि उनकी अभिव्यक्ति करता है उनमें अर्न्तनिहित भाव जितने प्रभावोत्पादक होते हैं, कोष में दिए गए उन शब्दों के निर्दिष्ट और निश्चित अर्थों में उतनी सामर्थ्य नहीं होती । " *

बोलचाल की भाषा का एक नवीन संस्कार और श्रृंगार गीतकार की सृजन साधना का प्रमुख अंग है, जिनके गीतों की भाषा बोलचाल की भाषा है जिसमें छंद, तुक, अलंकार आदि को सहज रूप में अपनाया गया है किन्तु संगीत की प्रमुखता रहने के कारण शब्द-क्रम एवं पंक्तियों के क्रम में कुछ न कुछ अन्तर आना स्वाभाविक होता है । चिरपरिचित हिन्दी, उर्दू की काव्योचित शब्दावली के साथ-साथ व्यवहारिक जीवन की कहावतें मनोविज्ञान एवं इतर क्षेत्रों के शब्द भी प्रयोग में लाए जाते हैं ।

नाम गुम जाएगा : चेहरा ये बदल जाएगा,
मेरी आवाज ही पहचान है, गर याद रहे ।[2]

---

* डा. सावित्री सिन्हा - युग चारण : दिनकर पृ.214

2 किनारा : गुलजार

फिल्म जनसाधारण को ध्यान में रखकर बनाई जाती है इसलिए प्रयत्न यही होता है कि भाषा का रूप दुरूह ना होने पाए और दर्शकों का एक बड़ा वर्ग उसे आसानी से समझ सके ।

चूंकि सिने गीतों का जन जीवन के साथ सीधा और गहरा संबंध है इसलिए सिने गीतकार बहुधा जनता में बोली और लिखी जानी वाली भाषा का प्रयोग करता है एवं उसे अलंकृत, समर्थ और संगीतात्मक बना देता है ।

"भाषा में आदि से अंत तक कसावट होनी चाहिए । भाषा न तो बहुत पुरानी हो और न ही इतनी साम्प्रतिक हो कि वह सामान्य भाषा से अलग जा खड़ी हो" *

जहाँ तक भारतीय बोलचाल की भाषा का प्रश्न है वह प्रकृतित: एक मिश्रित भाषा है । मिश्रण हिन्दी उर्दू और अंग्रेजी का तो रहता ही है कुछ अन्य प्रान्तीय भाषाएं भी इसमें प्रवेश पा लेती हैं ।

"फिल्म गीतों की भाषा प्राय: खिचड़ी है । उसमें अरबी फारसी की भरमार है । भाषा का रूप अव्यवस्थित है । कहीं उसमें खड़ी बोली है कहीं ब्रज भाषा कहीं पंजाबी अंग्रेजी तो कहीं प्रान्तीय भाषाएं है । संगीत के लिए शब्दों के रूप प्राय: विकृत किए गए हैं तथा इन गीतों की भाषा अधिकतर संगीत के सहारे चलती है । उसका अपना अलग कोई अस्तित्व नहीं । परन्तु फिल्मी गीतों की भाषा की इन सारी कमजोरियों के बावजूद उसका

---

* डा० शिवशंकर कटारे : गीति नाट्य : शिल्प और विवेचन - पृ०54-55

सबसे बड़ा गुण सरलता है - जिसके फलस्वरूप फिल्मी गीतों को अत्यधिक लोकप्रियता मिलती है ।" *

मेरे घर आई एक नन्ही सी परी
चाँदनी के हसीन रथ पर सवार
मेरे घर आई ....[2]

शब्द और भाषा की विफलता ही किसी लेखक को सबसे ज्यादा तोड़ती है । इसलिए इनके गलत उपयोग के प्रति सचेत रहना उसके रचनात्मक विवेक को पहली शर्त है । शब्द अगर स्वयं शब्दकार की आत्मविद्धता और उसके अनुभव जगत की उपज ना हो तो उन्हें दूसरों को भी सिर्फ सुनाया या पढ़ाया भर जा सकता है - अनुभव नहीं कराया जा सकता, जबकि साहित्य की एक भाव सार्थकता दूसरों के द्वारा अनुभव किए जाने, उनके अनुभूति तन्त्र का अविछिन्न हिस्सा बन जाने में ही है । सिर्फ अपने अनुभव करने के लिए तो शब्द का स्मरण मात्र पर्याप्त होता है । लिपिबद्धता को अनिवार्यता अपने आप को ही अनुभव कराने के लिए नहीं होती । शब्द के उच्चारण और लिप्यांतरण का अर्थ ही दूसरों को सम्बोधित करना, उनसे संलग्न होना होता है ।[3]

आंचलिकता : ....

सिने-गीतों में यदि आंचलिक शब्दों का शृंगार है तो महानगर की जिन्दगी को साकार करनेवाले शब्द समूह भी हैं । आज

---

* डा. ओंकार प्रसाद माहेश्वरी : हिन्दी चित्रपट का गीति साहित्य पृ. 54

2 कभी कभी : साहिर

3 जनता और साहित्य : शैलेश मटियानी : पृ. 97

का सिने-गीत केवल कोमलकांत पदावली से सम्पन्न रचना नहीं अपितु एक वातावरण निर्माण करने की क्षमता से परिपूर्ण है । सिने-गीतकारों ने नये शब्द गढ़ने और देशज शब्दों के प्रयोग की परम्परा रही है । इन गीतकारों की विचार भूमि भी परिष्कृत भी रही है और इन्होंने गीत की रचना में सधी हुई शब्दावली का प्रयोग किया है । फिल्म व्यवसाय में अनेक प्रान्त एवं अनेक अंचल के लोग कार्य करते हैं इसलिए स्वयंमेव दूसरी आंचलिक भाषाओं का एक सहज मिश्रण सिनेगीतों में मिलता है । " आंचलिकता के संस्पर्श ने लोक-जीवन और लोक प्रवृत्ति के सौन्दर्य की संक्षिप्त भावमय छवियां प्रस्तुत की है और अभिव्यंजना की ताजगी तथा शक्तिमतता भी दी है ... परन्तु लोकगीतों से प्रभावित होने का यह मतलब नहीं है कि . .... कुछ जनपदीय शब्दों को गीतों में गूंथ दिया .....। गीतकारों ने लोक जीवन को ओढ़ा नहीं बल्कि उसकी अनुभूति की प्रामाणिकता को अपने अन्तर की दमक से दीप्त कर व्यक्तिगत स्तर पर अभिव्यक्त किया । उन्होंने अपने भीतर की पैठ का इजहार कराने के लिए लोकगीतों की धुनों का अनुकरण किया है ..... । आंचलिकता पुट गीत को सदैव ताजगी प्रदान करता है । भाव की सहजता और शिल्प का सौन्दर्य गीतों के बासीपन को दूर करता है, जैसे हिमांचल में प्रेमी के लिए " कांचा " शब्द का प्रयोग किया जाता है । इस का प्रयोग एक सिनेगीत में हुआ है, " *

" कांचा रे कांचा रे, प्यार मेरा सांचा ।
रुक जा न जा दिल तोड़ के .... ।" "

---

* हरे राम हरे कृष्णा

महाराष्ट्र के आंचलिक गीतों में " माका नका " की टेक का प्रयोग किया जाता है । जिसका अर्थ है - " मेरे को नहीं " — इसका सफल प्रयोग ~~किया जाता है । जिसका अर्थ है~~ " दस दम्बरी " फिल्म के एक गीत में किया गया है ।

> " प्रेम का रोग बड़ा बुरा, मा का नका रे भाई,
> मा का नका । "*

ब्रजभाषा एक प्रसिद्ध जनपदीय बोली है । इसका ध्वनितन्त्र कुछ इस तरह का है कि इसके शब्दों को मुंह से उच्चारित करने में किसी तरह की कठिनाई नहीं होती । कवियों ने सदियों से इस ब्रजभाषा को संवारा और पूरे भारतवर्ष में साहित्य के माध्यम से जन-प्रिय बनाया । हिन्दी में " डरियो", " रहियो", " लहलो" जैसे जो क्रिया रूप है ये भी ब्रजभाषा से प्रभावित है । सिनेगीतों में ग्रामीण जीवन एवं उत्तर प्रान्तीय आंचलिकता को प्रस्तुत करने के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है :

> झूठ बोले कौव्वा काटे, काले कव्वे से डरियो
> मै मैके चली जाऊँगी, तुम देखते रहियो । "[2]

.. ..

> लहलो चंपा चमेली गुलाब लहलो [3]

---

* दस नम्बरी :
2 बॉबी : विट्ठल भाई पटेल
3 सोने के हाथ : राजेन्द्रकृष्ण

लोक-भाषा : ....

लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि गावों एवं नगरों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है । *

इसलिए लोकभाषा भी बोलचाल की शब्दों की भाषा है । "भाषा शैली की दृष्टि से जहाँ साहित्यिक गीतों से हिन्दी चित्रपट के गीतोंका मुख्य अंतर है वहाँ लोकगीतों से उनकी इस दृष्टि में बड़ी समानता है । दोनों की भाषा अत्यंत सरल और बोलचाल की है जिसमें अलंकारों की तड़क-भड़क न होकर सीधा-सादापन है ।[2]

हिन्दी चित्रपट के कथानक सामान्यत: शहर से गाँव की परिधि में ही लिखे जाते हैं । इसलिए इनमें शहर एवं गाँव से जुड़ी हुई संस्कृति और पात्र ही होते हैं । जब भी किसी कथानक में किसी ग्राम्य पात्र का सृजन किया जाता है तो उसकी भाषा लोक भाषा हो जाती है और उसकी गीतों की भाषा में लोक मिट्टी की सुगंध प्रस्फुटित हो उठती है । प्रसंग में स्वाभाविकता एवं सहजता लाने के लिए प्रचलित लोक-गीत लोक-धुनें, लोकोक्तियाँ आदि ज्यों की त्यों या थोड़े बहुत फेर बदल से सिनेगीतोंमें डाल दी जाती है । इसलिए प्रारम्भ से अब तक हिन्दी सिने-गीतों में कहीं न कहीं लोकगीतों की छाया की परम्परा आजतक बनी हुई हैं ।

---

* हजारी प्रसाद द्विवेदी : जनपद : वर्ष -1, अंक -1, पृ. 1

2 हिन्दी चित्रपट का गीत साहित्य : डा. ओंकार प्रसाद महेश्वरी : पृ. 85

मथुरा की ब्रजभाषा, अवध की पूर्वी, हैदराबाद की दक्खिनी, बम्बई की बम्बइया, बिहार की बिहारी, इन सब बोलियों का सिने गीतों में खुलकर प्रयोग किया गया है :

> दारू की बोतल में साहेब पानी भरता है
> फिर मत कहना माइकल, दारू पीके दंगा करता है *

<u>लोकोक्ति :</u> ... ...

लोकोक्ति शब्द लोक एवं उक्ति शब्दों का मिश्रण है । लोक परम्परा एवं उक्ति शैली का प्रतीक है । लोक-मानस की प्रमुख विशेषता है परम्परा से मिली हुई भाव-राशिमें उसका अटल विश्वास । इस परम्परागत ज्ञान और विश्वास को अविच्छिन्न बनाये रखने में उसका सदैव योगदान रहा है । शैली की भव्यता लोक-मानस की रुचि को आकर्षित करती है । इसलिए सदैव नयी एवं प्रभावोत्पादक लोकोक्तियों का निर्माण होता रहा है ।

लोकोक्ति का लगाव किसी व्यक्ति विशेष से नहीं अपितु एक जाति, समाज और राष्ट्र की सम्पूर्ण चिन्तनधारा से होता है । यही कारण है कि प्रयोक्ता और श्रोता दोनों ही लोकोक्ति के धरातल पर आकर एक सजीवता और सुसंपन्नता का अनुभव करते हैं ।

सिने गीत की भाषा का मुहावरा उसी प्रकार बदलता रहा है जिस प्रकार किसी काव्यान्दोलन का अंत बदले हुए मुहावरे से प्रकट

---

* कसौटी :

होता है । सन् 1960 से पहले के सिनेगीतों का मुहावरा कुछ बंधा-सधा था वह अराजक विश्रृंखल या उच्छृंखल नहीं हुआ था । सन् 1960 के बाद भारतीय जीवन जिन विरोधों और अन्तर्विरोधों, जिन विकृतियों और विसंगतियों में होकर गुजरा है उनके परिणामस्वरूप गीत की वस्तु प्रकृति और शैली में एक फूहड़पन आया है । व्यवस्था एवं यथा-स्थिति के प्रति जहाँ समकालीन मनुष्य असहिष्णु हुआ है वह असहिष्णुता सिने गीत भाषा में भी दिखलाई पड़ती है । केवल बोल ही नहीं गीत के संगीत पक्ष में - उसकी लय, उसकी तालों में भी वर्तमान युवा मानस की गति प्रकृति प्रतिबिंबित हुई है । इसलिए संस्कारी अभिरुचि को सिने गीत के इस फूहड़ शिल्प में कला का पतन ही दिखाई पड़ता है वह इसको सामान्य जीवन के विश्राम के एक अनिवार्य अंग एवं लक्षण के रूप में नहीं देख पाता ।

गीत भाषा का युगानुकूल सजीव श्रृंगार करने में लोकोक्तियाँ एवं मुहावरों का महत्त्वपूर्ण योगदान है । यह तो सदा से कहा जाता रहा है कि लोकोक्ति एवं मुहावरो भाषा के प्राण संस्थान के जीवंत स्पन्दन है । किन्तु मुहावरे गीत भाषा के लिए इस सीमा तक उपजीवी कभी नहीं बने जितने वे समकालीन सिनेगीत में बने हैं । कहीं कहीं तो मुहावरे या लोकोक्तियों की एक श्रृंखला ही बन जाती है जो वस्तु में व्यंग्य और शिल्प में तीखापन भरती है । उदाहरण के लिए इस पंक्ति को लिया जा सकता है :

काली राय का खुल गया पोल
बीच बजरिया फट गया ढोल
हो गया उसका डिब्बा गोल । *

---

* बरसात की एक रात : आनंद बक्षी

इन पंक्तियों में व्यंग धर्मा अभिव्यक्ति मुहावरों के सहारे सहारे ही मुखर हुई है। एक और गीत में युगधर्म लोकोक्तियों के सहारे भविष्य-वाणी के रूप में तैर आया है।

समाज में जिन वर्गों को भले और बुरे विशेषणों से अभाषित किया जाता था उनकी व्यावहारिक परिणति विपरीत ही हो रही है। गीत चलता है :

रामचन्द्र कह गये सिया से ऐसा कलयुग आयेगा,
हंस चुनेगा दाना तुमसा कव्वा मोती खायेगा। *

जीवन में जब इस प्रकार कर्म-फल विपर्यय घटित होता है तो एक बड़े ही संकट की सूचना मिलती है। ऐसा संकट जिसमें जीवन के मूल्य हिल उठते हैं और मनुष्य की जीवन के प्रति आस्था डगमगा जाती है। इसलिए एक बार भारतेन्दुजीने कहा था कि खल-जनों को सुखी और सज्जनों को दुखी इस संसार में नहीं होना चाहिए। फिर एक लोकोक्ति के सहारे ही आशा और विश्वास को दृढ़ करने का प्रयत्न भी होता है। लोकोक्ति पुरानी होने पर भी आहत मानस के लिए शीतल उपचार बनती है :

दरबार में ऊपरवाले के अंधेर नहीं है,
देरी है। [2]

आज के मनुष्य का जीवन बड़ा खोखला और मुद्राजीवी हो गया है। जीवन को मुहावों ने और आवरणों ने इतना ढक लिया है कि उसका यथार्थ खुल नहीं पाता। जिस प्रकार जलहीन घटायें उमड़घुमड़ कर एक झूठा आश्वासन तो देती है पर पानी नहीं दे पाती उसी प्रकार

---

* राजेन्द्रकृष्ण : गोपी 2 अंजान : हेरा-फेरी

आदमी बड़े आशाप्रद मुखौटे पहन लेता है । किन्तु मुखौटों के पीछे सब कुछ खोखला है । इस सब को पहचान के लिए एक गीत में एक लोकोक्ति जड़ दी गयी है :

जिसमें जितना नीर है, वो बदली उतनी देर बरसती है।*

जिस प्रकार जीवन छल और आपाधापी से भर गया है उसी प्रकार राजनीति भी धोखाधड़ी, षड्यंत्र, छलछंद और मौकापरस्ती का नाम हो गयी है । सबसे अधिक अविश्वसनीय है राजनेता न उसका चरित्र न उसमें रीढ़ की हड्डी । वह स्वार्थ का पुंजीभूत रूप हो गया है और उसका लोक और परलोक सब कुछ कुर्सी के लिए है जनता को धोखे में डालकर कुर्सी परस्ती करना हो उसका धर्म है । इन्दीवर ने यादगार में इसी नेता को लोकोक्तियों के सहारे नंगा किया है :

वोट लिया और खिसक गया
जब कुर्सी से चिपक गया
फिर उसके बाद तुन तुन तुन तुन *2

कुर्सी से चिपकना एक नवीन मुहावरा है जो नेता के घृणित व्यामोह को मूर्तिमान करता है । अंतिम पंक्ति भी एक मुहावरा ही बन गया है । बस उसके बाद बस मजे ही मजे ।

गीतकार इस जगत के कर्ता से भी जूझता है । उसे लगता है कि मालिक की बनाई हुई दुनिया विपर्ययों से भर गई है । कारण और कार्य असम्बन्ध होकर एक बेतरतीब व्यवस्था में ढल गये हैं ।

---

* रविन्द्र जैन : फ. कोरा

*2 सम्भवत: यह दमीच यार किसके - दम लगा के खिसके का रूपान्तरण है।

चिराग कोई जलाता है और उसकी रोशनी किसी और को मिलती है । किसी के चिराग की रोशनी को चुरानेवाला वर्ग इस दुनिया में फल-फूल रहा है ।

अजब है मालिक तेरा जहाँ
चिराग कहाँ रोशनी कहाँ *

चिराग और रोशनी का सम्बन्ध विच्छेद एक मानवीय संकट की सूचना देता है ।

युगधर्म की एक और प्रकृति की ओर संकेत किया गया है - " जिसका जूता उसी का सर " [2] समाज में जो कुछ घटित हो रहा है वह प्रेम व्यापार का भी लांछन बन रहा है । आज मानवीय चरित्र सचाई और मानवीय मूल्य अपनी अस्मिता खो बैठे - पैसा, पैसा, पैसा पैसे के अवमूल्यन से भी सभी परिचित है और उसके मूल्य से भी प्रेम की परीक्षा के पुराने नाप-जोख समाप्त हो गये हैं और उसको भी चाँदी की तराजू पर अपनी तोल सिद्ध करनी है । पैसे और प्रेम का जो नया सम्बन्ध जो इस युग में बन गया है उससे गीतकार पीड़ित है । एक मुहावरा उगा : चाँदी की दीवार । " और इसके प्रयोग से गीत की पंक्ति बनी :

चाँदी की दीवार न तोड़ी
प्यार भरा दिल तोड़ दिया ।[3]

---

* मजरूह : तीन चोर

2 असद भोपाली : फ्री लव

3 आँधी : इन्द्रजीतसिंह तुलसी

गीतकार परिस्थिति की कटुता से पीड़ित होकर कह उठता है :

जिस पलड़े में तुले मोहब्बत उसमें चांदी नहीं तोलना।*

प्रेम जो प्राय: शत प्रतिशत चलचित्रों में केन्द्रीय स्थिति रखता है उसकी विभिन्न स्थितियां भी मुहावरों एवं लोकोक्तियों द्वारा ही प्रतीकायित हुई है । एक ओर प्रिय को प्रेमास्पद को नजर [2] लगने का भय सता रहा है । कहीं दूसरी ओर उसकी अदाओं पर प्रेमी मर रहा है ।[3] साथ ही दिल पुर्जा पुर्जा हो गया है [4] क्योंकि उसमें " पचासी " झटके लगे हैं ।

प्रेम की कटारी चलती है ।[5] दिल की चोरी होती है, और आंखों की तलाशी[6] ली जाती है । प्रेमी को अपना प्रिय पत्थर की मूरत [7] लगता है ।

किसी पत्थर की मूरत से,मोहब्बत का इरादा है ।
{साहिर : हमराज }

फिर भीआंखें चार होना मनुष्य के स्वभाव का भाग है ।

जब वो मिले मुझे पहली बार उनसे हो गयी आंखें चार ।
{हसरत : झुक गया आसमान}

---

* बाबी : इन्द्रजीतसिंह तुलसी
2 तेरी प्यारी प्यारी सूरत को किसी की नजर न लगे : हसरत : ससुरा
3 तेरी अदाओं पर मर मर गये हम : शबनम : जावेद अख्तर
4 हो गया दिल का पुर्जा पुर्जा लगे पचासी झटके : वर्मा मलिक : सावन
5 लागी मनवाके बीच कटारी : साहिर : चित्रलेखा
6 आंखों की तलाशी दे दे मेरे दिल को हो गयी चोरी : अजीत : दिल और मोहब्बत

और सब कुछ सीने पर पत्थर रखकर सहना पड़ता है :

पत्थर रख ले सीने पर ‖ संतोषानंद : रोटी, कपड़ा और मकान ‖

तात्पर्य यह है कि प्रेम के प्राय: सभी पक्ष और प्रेम व्यापार की प्राय: सभी स्थितियाँ कहावतों एवं लोकोक्तियों के माध्यम से सजीव एवं साकार हुई है ।

शब्द शिल्प :

गीतकार को रचना के अनुसार शब्दों का अन्वेषण ही नहीं अपितु उनका निर्माण भी करना पड़ता है । यह निर्माण कभी प्रचलित शब्दों के आधार पर होता है कभी संगीत पर और कभी नवीन अर्थाकृतियों में, यह सर्व-विदित है कि साठोत्तरी सिने-गीतकारों ने अपने को रोमानी एवं भावुकता भरी लिजलिजी शब्दावली से सदैव अनुबंधित रखा है । किन्तु कहीं कहीं योगेश, गुलजार, इन्दीवर, एवं कई अन्य गीतकारों ने इससे अलग हटकर एक नई शब्द शैली को भी प्रयोग किया है ।

कहीं दूर जब दिन ढल जायें, शाम की दुल्हन बदन चुराए

भाषा शब्द-शिल्प की प्रकृति में परिवर्तनशीलता है । सिने-गीतों में जहाँ पूर्ववर्ती शब्द प्रयोग को ज्यों का त्यों ग्रहण किया गया है वहाँ उनकी आकृति और प्रकृति बदल दी गई है । तद्भव शब्दों

---

* आनन्द : योगेश

के साथ साथ तत्सम शब्दों का सहज प्रयोग किया गया है।
तत्सम शब्दावली के साथ यह कठिनाई होती है कि उनके स्थापित रूढ़ अर्थों के स्थान पर नवीन अर्थों की स्थापना सम्भव नहीं है। इसलिए नवीन अर्थ के व्यंजना के लिए बिम्बों एवं प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है।

चंदन-सा बदन चंचल चितवन,
धीरे से तेरा उह मुस्काना .... "*

सिने गीतों की शब्दावली निरंतर बदलती रही है। इसके आदि युग में जहाँ फारसी बहुल एवं तत्सम अथवा देशज शब्द बहुल शब्दावली का प्रयोग हो रहा था, शनैः शनैः 1950 के आते आते हिन्दी उर्दू मिश्रित शब्दावली का प्रयोग होने लगा। और सन् 1960 तक घिसी हुई और सपाट शब्दावली के स्थान पर एक अन्वेषक एवं नवीन भावानुकूल शब्दावली ने स्थान लिया। गीतकार ने क्लिष्ट शब्दों का मोह छोड दिया और शब्दाडम्बर की जगह व्यवहारिक धरातल पर उतरकर गीतों की रचना करने लगा। सन् 1950 से 1960 के बीच उर्दू का प्रयोग कुछ बढ़ गया था। किन्तु 60-65 के बाद गीत भाषा में हिन्दी की तत्समता ने भी स्थान लेना प्रारम्भ किया। सम्भवतः इसका कारण जनसाधारण में बढ़ती हुई हिन्दी की लोकप्रियता रही और लोग तत्सम शब्दों को भी बिना किसी मानसिक वज़न के स्वीकार करने लगे और एक समान अनुपात वाली उर्दू हिन्दी मिश्रित शब्दावली का चिपट संवादों और गीतों में प्रयोग शुरू हो गया। आज भी यह उसी प्रकार चल रहा है। पात्रानुसार एवं स्थानानुसार इस शब्दावली को थोड़ा बहुत बदल दिया जाता है।

---

* इन्दीवर : सरस्वतीचन्द्र

शब्द भण्डार :

सिने-गीतकार के पास एक विपुल शब्द भण्डार है जो काफी विविध है । उर्दू, फारसी, संस्कृत, हिन्दी ही नहीं उसके पास प्रान्तीय विदेशी सभी भाषाओं के ऐसे शब्द है जो भारतीय जनता को स्वीकार है ।

1 तत्सम शब्द	2 उर्दू [अरबी फारसी] शब्द
3 तद्भव शब्द	4 देशज शब्द
5 अंग्रेजी शब्द	6 विभिन्न भारतीय भाषाओं के शब्द ।

तत्सम शब्द :

तत्सम शब्द वे हैं जो अपरिवर्तित रूप में संस्कृत भाषा से हिन्दी में आये हैं । ये शब्द सामान्य रूप से समाज के अभिजात्य वर्ग में प्रचलित रहते हैं और निम्न वर्गीय मानस भी परम्परा से इनके अर्थ ग्रहण करने में सक्षम होता है । हिन्दी की आधारभूत शब्दावली और सामान्य भाषा व्यवहार में तत्सम शब्दों का काफी प्रयोग मिलता है ।

रोज रोज देखूं तुझे, नई नई लगे मुझे
अंगों में अमृत की धारा ..... *

कहीं कहीं क्लिष्ट तत्सम शब्दों का प्रयोग केवल अनिवार्य

---

* इन्दीवर : कुर्बानी

होने पर ही किया जाता है जिसका कारण कथानक की पृष्ठभूमि होता है ।

चंचल, शीतल, कोमल, निर्मल, कोमल
संगीत की देवी स्वर सजनी ...... *

तत्सम शब्दावली के प्रयोग से गीत का अर्थबोध और शैलीगत प्रभाव एवं रुचि का क्षेत्र सीमित हो जाता है किन्तु इनका प्रयोग दूसरे शब्दों की तुलना में कम होने के कारण ये सिनेगीत रचना में विशेष संकट उपस्थित नहीं करते ।

तद्भव शब्द : ... ...

जो संस्कृत शब्द प्राकृत और अपभ्रंश की यात्रा करते हुए अपने स्वतंत्र रूप में विकसित हो गये हैं ऐसे शब्दों को तद्भव शब्द कहते हैं । ये तद्भव शब्द हिन्दी भाषी समाज के भाषा-व्यवहार अपना निश्चित स्थान बना चुके हैं । इनके प्रयोग की क्रिया अचेतन मन तक पहुँच चुकी है । ये तद्भव शब्द दैनंदिन के जीवन में इस तरह से घुल-मिल गयें है कि उनकी मूल संरचना के बारे में बहुत कम सोचना पड़ता है । जैसे —

चन्द्रमा से चांद, चंदा
मित्र से मितरा, मितवा,मीत
स्वप्न से सपना

कुछ सिने-गीतों में तद्भव प्रयोग द्रष्टव्य है :

---

* आनन्द बक्षी : सत्यम शिवम् सुन्दरम् ।

धरती का है आंचल पीला
झूमे अंबर नीला नीला

§ धरित्री का तद्भव शब्द धरती है । §

ना सोना ना चांदी ना घोड़ा ना हाथी

§ सोना स्वर्ण का एवं हाथी हस्ती शब्द का तद्भव है । §

इस तरह यह कहा जा सकता है समाज के हर वर्ग में तब तद्भव शब्द रूप सर्व अधिक प्रचलित है और मध्य निम्न एवं अभिजात्य वर्ग इनका प्रयोग शुद्ध एवं विकृत उच्चारणों से करता रहता है ।

अंग्रेजी शब्द : . . . .

अंग्रेजी के शब्द सामान्य जन-जीवन के अनिवार्य अंग बन गये हैं । इन शब्दों के प्रयोग और अर्थ-बोध का क्षेत्र सबसे अधिक व्यापक है । भारतवर्ष के अनेक भाषा-भाषी लोगों के बीच अंग्रेजी शब्द एक महत्वपूर्ण सूत्र का काम करते हैं । सिने-गीतकारों ने अंग्रेजी शब्दों का ही नहीं, अपितु कहीं कहीं अंग्रेजी के सम्पूर्ण वाक्यों का प्रयोग किया है । भारत के मध्यवर्गीय समाज में तो अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग का संस्कार था ही किन्तु अब निम्न वर्ग में भी इन शब्दों के प्रयोग की होड़-सी चल पड़ी है । और इन शब्दों को अशिक्षित वर्ग तक पहुंचाने का कार्य भी चलचित्रों के माध्यम से हो रहा है ।

" पाप म्यूजिक एवं डिस्को संगीत के "फीवर" के साथ साथ अंग्रेजी शब्दों की " फिटींग " भी पश्चिमी सभ्यता क आभास देने के लिए एक आवश्यकता बन गई है । जीवन के हर क्षेत्र मे

मध्यवर्गीय युवक-युवतियाँ अँग्रेजी का व्यवहार कर रहे हैं, दफ्तर में चपरासी से साहब तक अँग्रेजी के प्रयोग को अपनी महानता स्वीकार कर चुका है । तो सिने-गीतकार उससे कैसे अछूता रह सकता है ।

हम तुम पे इतना डाइंग, जितना सी में वाटर लाइंग
आकाश में पंछी फ्लाइंग, भंवरा नभियन में गाइंग *

ऐसे अनेक अँग्रेजी शब्द है जो जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग बन चुके हैं । जैसे स्कूल, जेल, फिल्म, कुली, डाक्टर, मास्टर, बिस्कुट, आईस्क्रीम, स्टेशन, क्रिकेट, मार्केट आदि ।

बलमा हमार मोटरकार ले के आयो रे[2]

उर्दू (अरबी फारसी) शब्द : ....

हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी, साहित्यिक हिन्दी खड़ी बोली स्वरूप के ही तीन रूप है । भाषा विज्ञान और व्याकरण की दृष्टि से इसकी पुष्टि की जा चुकी है । व्याकरण की दृष्टि से हिन्दी और उर्दू भाषाओं में कोई विशेष अंतर नहीं है । दोनों भाषाओं का मूलाधार यह खड़ी बोली ही है ।

हिन्दी और उर्दू नाम खड़ी बोली के दो साहित्यिक स्वरूपों

---

* खुद्दार : हसरत जयपुरी
2 अनहोनी : वर्मा मलिक

के हैं । अन्तर केवल इतना है कि एक की परम्परा भारतीय रही है और दूसरी पर फारसी परम्परा का प्रभाव है और यही प्रभाव प्रायः दोनों में साम्प्रदायिक अंतर उत्पन्न कर देता है .... चलचित्रों में इसी हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग प्रचुरता से किया जाता है ।

उर्दू साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से पहली चीज़ यह दिखाई देती है कि उर्दू की सांस्कृतिक परम्परा परिवर्तनशील रही है । जो परम्परा जोश या दाग़ की थी वही परम्परा ज्यों की त्यों जोश या कृष्णचन्दर की नहीं है ।[2]

उर्दू के बहुत से पुराने कवियों की ऐसी सैकड़ों पंक्तियां है जो अपनी उक्ति-चातुरी की वजह से बार बार उद्धृत की जाती है और अब बोलचाल में उन्होंने कहावतों की जगह ले ली है । मसलन :

न ज़ोरे सिकन्दर, ना है क़ब्र दारा
मिटे नामियों के निशां कैसे कैसे ...

सिनेगीत : सिकंदर भी आये कलंदर भी आये
न कोई रहा है ना कोई रहेगा .... [3]

हिन्दी उर्दू लिखनेवालों का सामाजिक वातावरण आमतौर एकसा रहा है । इसलिए उनकी साहित्यिक परम्परा के उतार-चढ़ाव उसके मोड़ और नई दिशा में प्रवाह भी मिलते रहे हैं ।[4]

---

* भारतीय चलचित्र : महेन्द्र मित्तल : पृ. 14-15
2 उर्दू साहित्य की साहित्यिक परम्परा : डा, रामविलास शर्मा : पृ.5
3 जोहर महमूद इन गोवा
4 उर्दू साहित्य की परम्परा : डा, रामविलास शर्मा : पृ. 5।

इक कहानी वक्त लिक्खेगा नए मजमून की
जिसकी सुर्खी को जरूरत है तुम्हारे खून की *

.. .. ..

छोड़ो कल की बातें कल की बात पुरानी
नए खून से लिक्खेंगे हम फिर से नई कहानी[2]

उर्दू की बहरे अब सिर्फ उर्दू तक सीमित नहीं रहीं । हिन्दी में बहुत से कवियों ने उसे अपना लिया है और उनमें बेरोक रचनाएं करते हैं .... इसके अलावा फारसी की बहरों और हिन्दी के छन्दों में उतना फर्क नहीं है जितना कुछ लोग समझते हैं । [3]

उर्दू में इस्तेमाल होनेवाले कुछ छन्दों के नाम ये हैं — सुमेरु, विधाता, विहारीक, शास्त्र, पीयूष वर्षा, भुजंग, प्रयात, खरारी हरि गीतिका, आनन्द वर्द्धक, दिग्पाल, भुजंगी, चौपाई आदि आदि। [4]

इससे यह तो जाहिर हो होता हैकि छन्दों के लिहाज से हिन्दी उर्दू की सांस्कृतिक परम्पराओं के बीच कोई गहरी न पट सकनेवाली खाई नहीं है । [5]

हिन्दी सिने गीतों का विकास पारसी थियेटरों की गीत बहुल शैली से मिलता है । जीवन के सभी स्तरों पर उर्दू माध्यम से आये हुए शब्द इतने घुल-मिल गये हैं कि उनको अलग करना लगभग

---

* जोश मलिहाबादी
2 हम हिन्दुस्तानी
3 उर्दू साहित्य की सांस्कृतिक परम्परा : डा. रामविलास शर्मा : पृ. 62-63
4 उर्दू साहित्य का इतिहास : श्री हरिशंकर शर्मा : पृ. 19
5 उर्दू साहित्यकी सांस्कृतिक परम्परा : डा. रामविलास शर्मा : पृ. 62-63

असम्भवसा प्रतीत होता है । ऐसा लगता है अगर उर्दू के शब्दों को सिने-गीतों से एकदम निकाल दिया जाय तो सिने-गीतों के अस्वाभाविकता एवं कृत्रिमता आ जायेगी । सिने गीतकारों ने उर्दू शब्दावली को इसीलिए अपनाया है क्योंकि ये शब्द सामान्य जीवन में पहले से ही घुलमिल गये हैं । हम नीचे ऐसे शब्दों की एक सूची दे रहे हैं जो भाषा व्यवहार में इतने सरलतम है कि उनका प्रयोग अचेतनता से होता रहता है ।

आवाज,*	मंजिल[2]	ज़माना [3]
गम[4]	जुदाई[5]	महफिले दिल [6]
इंसान [7]	आसमान [8]	दरिया [9]
मुसाफिर [10]	दुनिया [11]	अजनबी [12]
हसीना [13]	मुलाकात[14]	ताजी हवा [15]

---

* मेरी आवाज़ की पहचान है : गुलजार : किनारा
2 चलते ही जाये नयी मंजिलों को : साहिर : दाग
3 आज जमाना साथ है : आनंद : भोला भोला
4 गम न करो दिन जुदाई के है कम : आनंद : आपकी कसम
5 " " "
6 हिम्मत न हार चल चला चल : रविन्द्र जैन : फकिरा
7 दुनिया में इंसान को सब चीज नहीं मिलती : आनंद : अपना देश
8 आस्मां पेह चांदनी का एक दरिया बह रहा था : आनंद :राजारानी
9 " " " "
10 कोई मुसाफिर है : आनंद : राजारानी
11 चल पड़ी मैं साथ तेरे, सारी दुनिया को भुलाके :आनंद : राजारानी
12 - 13 इक अजनबी, हसीना से यूं मुलाकात हो गई : आनंद :अजनबी
14 मुझे ताजी हवा पसंद थी : आनंद : बुलेट
15 मैं तस्वीर उतारता हूं : आनंद : हीरा पन्ना

हिम्मत [16]	तलाशी [17]	शिकायत[18]
कफ़न [19]	ज़रूरत[20]	कलेजा [21]
तस्वीर[22]	खैरात[23]	इजाज़त [24]

ऐसे ही अनेक शब्द है जिनकी सूची हजारों तक जा सकती है । जैसे खुश - खुशक, आराम, अफवाह, चीज़, चाकू, तकिया, बिस्तर, बीबी, मरीज - मुहावरा, महसूस, जवाब, परेशान, सलाम, सवारी, इंतजाम, असर, अम्ल, आज़ाद, आदमी, पुर्जा, पेशा, मजाक, मतलब, वक्त, वगैरह, रास्ता, रिश्ता, रुमाल, शामिल, हालाकि, हालत, हिम्मत, हिसाब, साबुन, परीका, ताक्त, तारीख, दुकान आदि आदि ये शब्दावली देनंदिन जीवन के साथ जुड़ी हुई है जहां एक तरफ निम्न वर्ग इस शब्दावली का थोड़ा विकृत उच्चारण करता है । वहीं दूसरी ओर अभिजात्य वर्ग इसके शुद्ध उच्चारण पर जोर देता है ।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है सिनेगीतों में सरल उर्दू शब्दों की शब्दावली का प्रयोग काफी अधिक है और यह प्रयोग जीवंत एवं प्रवाहयुक्त है ।

---

16 हिम्मत न हार चल चला चल : रविन्द्र जैन : फकीरा
16 आँखों को तलाशी दे दे : अजीज कश्मीरी : दिल और मोहब्बत
12 आज की रात नहीं शिक्वा शिकायत के लिए : साहिर : धर्मपुत्र
18 कफ़न से ढके बैठे हैं : प्रदीप : सम्बन्ध
20 इसकी जरूरत क्या होगी
20 लगा कलेजा फटने खैरात लगी है बटने : इन्दीवर : हेराफेरी
22 वही
23 मैं तस्वीर उतारता हूं : आनंद : हीरा-पन्ना
24 मुझको अगर इजाजत मिले तो : आनंद : छक छक

देशज शब्द :   ...   .

सिनेगीत जनसाहित्य है और जन साहित्य की पृष्ठभूमि लोक तत्वों से ही प्रेरणा ग्रहण करती है । हिन्दी चित्रपट के कथानक में जब ग्राम्य पात्रों का सृजन किया जाता है तो उसके गीतों की भाषा मेंम लोक माटी की गंध स्फुटित करने के लिए देशज शब्दों का प्रयोग किया जाता है । गांवों में फैली हुई भारतीय संस्कृति का एक नैसर्गिक चित्रण प्रस्तुत करने के लिए भी गीतकार देशज़ शब्दों का प्रयोग करता है ।

बहना ओ बहना, तोहरी डोली में सजाऊं गा *

देशज शब्दों का प्रयोग गीत में केवल आंचलिकता ही उत्पन्न नहीं करता अपितु गीत के सौन्दर्य में कलात्मकता भर देता है ।

पिया बिन तड़पे जिया रतियां बिताऊं कैसे
बिरहा की अगन को असुवन से बुझाऊं कैसे [2]

ब्रज, अवधी, भोजपुरी, एवं बिहारी देशज शब्दों का भी विपुल प्रयोग सिनेगीतोंमें मिलता है :

जे हम तुम चोरी से, बंधे इक डोरी से
जइयो कहां ए हुज़ूर
अरे ई बंधन है प्यार का .... [3]

---

* अदालत : गुलशन बावरा
2 गंगा जमुना : शकील
3 धरती कहे पुकार के : मजरूह

विभिन्न भारतीय भाषाओं के शब्द ....

हिन्दी चलचित्रों का प्रदर्शन-प्रजाल सम्पूर्ण भारत वर्ष में फैला हुआ है । प्रान्तीय चलचित्रों के साथ-साथ हर प्रान्त के नगरों एवं छोटे-छोटे कस्बों में भी नियमित रूप से हिन्दी चित्रों का प्रदर्शन किया जाता है । महानगरों में तो सर्वभाषा-भाषी जन-समुदाय बसता ही है इसलिए विभिन्न भाषाओं के शब्दों का हिन्दी पर, एवं हिन्दी शब्दों का विभिन्न भाषाओं पर प्रभाव होना स्वाभाविक है । व्यवसाय को दृष्टि से भी निर्माता दूसरी भाषा एवं लो संस्कृति का पुट अपने चलचित्रों में देख देना चाहता है । ताकि इतर हिन्दो भाषी भी उस चलचित्र की तरफ आकर्षित हो ।

हिन्दी चलचित्रों निर्माण की मुख्य संस्थाएं क्रमश: बम्बई (महाराष्ट्र), मद्रास (तमिलनाडु) कलकत्ता, (पश्चिमी बंगाल) मे हैं और ये सभी अहिन्दी भाषी प्रान्त है इसलिए इस उद्योग में काम करनेवाले विभिन्न भाषा-भाषी लोगों की शब्दावली का भी सिनेमा गीतों में मिश्रण होता रहा है ।

> आली रे आली कोल्हापूरवाली,
> ओ पांडुबा कुठो पसली रे पसली । *

तमिल प्रान्त की एक कहावत है कि मुत्तु कोड़ावारो छछड़ा । इसका अर्थ है मोती प्राप्त करने के लिए समुद्र में डूबना पड़ता है, इसका प्रयोग एक सिनेगीत में बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है ।

---

* विधाता :

मुत्तु कोड़ावारी हम्मा ।
प्यार में जो ना करना चाहा वो भी मुझे करना पड़ा ।* *

विचित्र बोल : ....

ऐसे गीतों में कहीं कहीं विचित्र शब्द योजना का प्रयोग किया गया है जिनका सीधा कोई भी कोषीय अर्थ नहीं होता फिर भी वे शब्द गीत की रचना में पूर्ण अस्तित्व रखते हैं एवं भावाभिव्यंजना में सहायक होते हैं ।

"जन्म लेते ही बालक भाषा के वातावरण में घिर जाता है । वे ही ध्वनियाँ जो आरम्भ में उसके लिए एकदम अपरिचित एवं अस्पष्ट होती है धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगती हैं । उन ध्वनियों का प्रारंभिक भेद शनै: शनै: मिटने लगता है और उनकी भिन्नता एवं सांकेतिकता उसका ध्यान आकृष्ट करने लगती है । वह समय पाकर स्वयं भी उन्हें अभिव्यक्ति देने के लिए आकुल हो उठता है । धीरे-धीरे वह अपनी जानी हुई ध्वनियाँ एवं उनके द्वारा सांकेतिक अर्थ का सहारा पाकर आस-पास के पद पदार्थ के ज्ञान के अर्जन में ऐसा जुट जाता है कि अपनी अवस्था और आवश्यकता के अनुरूप जो कुछ अत्यावश्यक रूप से गेय है उसे जानकर ही दम लेता है इस प्रकार जीवन क्रिया के इस महत्त्वपूर्ण साधन पर उसका टूटा फूटा अधिकार ही उसका जीवन संबल बन जाता है ।[2]

उपरोक्त कथन से ये स्पष्ट होता है कि मानव-मन में हर

---

* हंगामा :

2 भारत की सम्पर्क भाषा : डॉ. देवीदत्त एवं डॉ.कृष्ण मधोक पृ.2

ध्वनि लहर के प्रति तीव्र संवेदना होती है जिसका कारण उसके अवचेतन मन में बसी हुई ध्वनि संबंधी अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति है । इसीलिए वह ऐसे विचित्र शब्द या विचित्र बोल जिनका सीधा अर्थ ना भी हो, स्वीकार कर लेता है ।

उई श्माशा उई, उई श्माशा,
ले जा प्यार जरा सा देजा प्यार जरा सा .." *

... ... :.

रिबरि बप्पा रिबरी बप्पा
रत तूबा ख तूबा उ ऊ
खतूबा खतूबा उं ऊं ..... "2

... ...

बुअप्पा बु अप्पा ... बुअप्पा... बुबा
जिन्दगी है क्या ... बोलो जिन्दगी है क्या [3]

<u>द्विरुक्त पद :</u> .. .. ..

द्विरुक्ति पद गीतों में संगीत प्रवाह के साथ साथ भाषा को अधिक प्राणमय बनाते हैं । इन पदों के प्रयोग से वस्तु की भंगिमा विशेष का चित्रांकन जीवंत हो उठता है । जैसे थर-थर, घर-घर, पग-पग आदि ।

उज्वल-उज्वल, निर्मल-निर्मल, सुन्दर-सुन्दर माँ,
अपनी संतोषी माँ .... [4]

---

* क्रान्ति : संतोष आनंद

2 अलीबाबा चालीस चोर : आनंद बख्शी

3 सत्यकाम : कैफी आजमी

4 संतोषी माँ : प्रदीप

उपरोक्त गीत में तीन बार द्विरुक्ति पद का प्रयोग करने से अर्थ सौन्दर्य बढ़ा है ।

रुके रुके से कदम, रुक के बार बार चले ।" *

इस गीत में कदमों के रुकने एवं चलने की द्विरुक्ति से पात्र कि मन:स्थिति का प्रशंसनीय चित्रण किया गया है ।

किसी किसी गीत में तीन पदों का प्रयोग करके/आवश्यक अर्थ सिने गीत को प्रदान किया गया है ।

हम काले हैं तो क्या हुआ, दिल-वाले हैं
हम तेरे तेरे तेरे चाहनेवाले हैं ..... "2

सुन सुन सुन - ओ रूठनेवालो,
तोड़ ना दिल की आस .... "3

<u>शब्द-युग्म :</u>

शब्द युग्मों का प्रयोग भी भाषा को गति प्रदान करता है और गीत सजीव हो उठते हैं । ये युग्म साम्य और वैषम्य, दोनों ही आधारों पर बनते हैं । जैसे :

<u>साम्य शब्द युग्म :</u>

आंधी-अंधड़, हंसी-खुशी, देहरी-द्वार, भक्ति-अनुरक्ति ।

---

*	मौसम	: गुलजार
2	गुमनाम	: हसरत जयपुरी
3	नमस्ते जी	: अंजान

वैषम्य शब्द युग्म :

सुबह शाम, रात दिन, चाँद सूरज, दुख सुख ।

साम्य युग्म :

है अगर दुश्मन-दुश्मन ज़माना, गम नहीं - गम नहीं ।*

आगे हो घन-घोर अँधेरा, पीछे कोई डाकू-लुटेरा ।[2]

वैषम्य युग्म :

जिन्दगी है मेरी एक दाव, तू है हार-जीत मेरी ।[3]

चलते चलते मेरे ये गीत याद रखना, कभी अलविदा न कहना
रोते-हंसते बस यौंही तुम गुनगुनाते रहना....[4]

ध्वन्यात्मक शब्द :

ध्वन्यात्मक शब्दों में अर्थ एवं ध्वनि का प्राकृतिक सम्बन्ध रहता है इन शब्दों के प्रयोग से ध्वनि और अर्थ के सामंजस्य से उत्पन्न लय तो रहती ही है साथ ही बिम्ब और चित्र-तत्व भी जुड़ जाते हैं । संगीत-आश्रयी होने के कारण सिनेगीतों में ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग गीत की गेयता एवं मधुरता को बढ़ा देता है यह ध्वन्यात्मक शब्द साहित्य की भाषा के साथ-साथ संगीत की भाषा से भी लिये जाते हैं ।

---

* हम किसी से कम नहीं : मजरूह

2 बॉबी : आनंद बक्षी

3 गेम्बलर : नीरज

4 ~~चलते चलते : अमीत खन्ना~~

ये विरहा ये दूरी, दो पल की मजबूरी
फिर कोई दिल वाला काहे को घबराये, <u>तरम् पम पम</u> ।*[1]

इसमें, तरम् पम पम ध्वन्यात्मक शब्द है जिसका कोई शाब्दिक अर्थ न होने पर भी गीत रचना में अर्थ सृष्टि करता है ।

ये ध्वन्यात्मक शब्द संगीत के साथ-साथ मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति से संबद्ध होने के कारण अभिव्यक्ति की अधिक सम्भावनाओं से युक्त होते हैं ।

दीवाना होने लगा हूँ - तरररा रम
मैं इनमें खोने लगा हूँ - तरररा रम
नैना तेरे ऐसे जैसे भूलभूलैया ....*[2]

<u>पर्याय शब्द</u> : ....

किसी कवि या गीतकार के सामने पर्याय वाची शब्दों की संपदा रहती है । इसमें उसे अपने उद्देश्य के अनुकूल शब्दों का चुनाव करना होता है । यह चुनाव प्रक्रिया शिल्प चेतना का ही अंग है । सिने गीतकार का अपना एक विशिष्ट क्षेत्र है और उसकी दृष्टि में एक विशिष्ट दर्शक समूह रहता है । सिनेमा के लिए जिस वस्तु या कथावस्तु का चुनाव किया जाता है उसमें भी प्राय: कुछ विशेष तंतु रहते हैं । मुख्य: रूप से प्रेम और सौंदर्य का तंतु अनिवार्यता अनुस्यूत रहता है । कुछ ही चलचित्र ऐसे हो सकते हैं जिसमें यह तंतु [illegible] हीना या अनुपस्थित हो, इसलिए

---

* धरम-करम : मजरूह
2 हीरा-पन्ना : आनंद बख्शी

पर्याय वाची शब्दों के चुनाव के प्रवृत्ति को देखने के लिए दो शब्दों के पर्याय देख लेना पर्याप्त होगा । नायक, नायिका के स्वतंत्र पर्यायों एवं उनके सम्बन्ध युग्मों के चुनाव की वृति पर विचार किया गया है ।

नायक के पर्याय शब्द : ....

हिन्दी चलचित्र के नायक प्राय: प्रेमी है केवल उनके प्रेम की प्रकृति में अन्तर आता है । इसलिए गीतकार प्राय: उन पर्याय शब्दों को ग्रहण करता है । जिसमें प्रेम की कोई छाया व्यक्त होती है, जिस प्रकार गीत भाषा की रेखांकित विशेषता भाषा गत वैविध्य या उसका मिश्रित रूप है उसी प्रकार नायक के लिए विविध शब्दों का प्रयोग हुआ है । विवधता भाषा परक भी है और रचना परक भी है ।

भाषागत वैविध्य : ....

भाषागत वैविध्य की दृष्टि से नायक वाचक शब्दावली को इन वर्गों में बाटा जा सकता : "संस्कृत तत्सम तथा तद्भव शब्द" "आंचलिक शब्द", "विभिन्न भारतीय भाषाओं के शब्द" तथा "विदेशी भाषाओं के शब्द" ।

तत्सम शब्द :

कुछ सिने गीतों में संस्कृत पर्यायों का प्रयोग किया गया है । जैसे - प्रीतम (प्रियतम)" *

---

* प्यार की जिसमें होती है पूजा, ये प्रीतम का घर है
(शैलेन्द्र (दिल एक मन्दिर)

तत्सम शब्दों की क्षेपुता अन्य सभी प्रकार के शब्दों से कम है । ऐसा प्रतीत होता है कि गीतकार शब्दावली के चुनाव में तत्समता से सायास अपनी रचना को बचाना चाहता है, इसका कारण यह प्रतीत होता है कि एक तो सामान्य जन का तत्सम शब्दावली से व्यावहारिक और रागात्मक सम्बन्ध नहीं है । दूसरे नायक की जिस मानसिकता की अभिव्यक्ति अभिष्ट होती है उसके साथ तत्सम शब्दावली का जिन गीतों में शास्त्रीय (क्लासिकल) तत्व अधिक होते हैं, उनमें ही नायक [redacted] वाचक तत्सम शब्दावली संवारी जा सकती है । तत्समों की अपेक्षा तद्भव शब्द गीतकार को अधिक व्यंजक प्रतीत होते हैं ।

तद्भव पर्याय :

तद्भव शब्दों का माधुर्य सभी युगों में स्वीकार किया जाता रहा है इनमें जीवन की गति मूर्तिमान रहती है । यहाँ तक की छायावाद की तत्सम बहुल भाषा में भी [redacted] नायकवाची तद्भव शब्द प्रयुक्त हुए । नव्य छायावादी काव्यधारा* की तो यह एक प्रमुख विशेषता ही मानी जानी चाहिये । यद्यपि पंतजीने पल्लव की भूमिका में यह लिखा था कि अब भाषा ने तोतलाना छोड़ दिया है । वह "प्रिय" को "प्रिय" कहने लगी है, तथापि सघन प्रगीतात्मक स्थितियों में तद्भव पर्यायों का माधुर्य गीतकारों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा । सिने गीतकार ने तो इनके साथ और भी घनिष्ट सम्बन्ध जोड़ा ।

---

* इसमें नरेन्द्र शर्मा प्रभृत गीतकार आते हैं ।

तद्भव पर्याय शब्द : ....

इस प्रकार के शब्दों के कुछ उदाहरण ये हैं :-

सैंया,* पिया,[2] सजन,[3] सांवरिया,[4] मितवा,[5] मीत[6]

आंचलिक पर्याय :

तद्भवों की अपेक्षा आंचलिक शब्दावली और भी चमत्कारपूर्ण होती है । आंचलिकता का जादू तो इसमें सिद्ध होता है कि कुछ चित्रपट आंशिक रूप से आंचलिकता के लिए है ।[7] और कुछ पूर्ण रूप से आंचलिक है ।[8] इसी प्रकार अनेक सिने गीत पूर्णत: आंचलिक है[9] और कुछ आंचलिक शब्दावली से विलासित है । इस दूसरे वर्ग में वे शब्द आते हैं जो आंचलिक होते हुए भी सामान्य गीत भाषा में प्रविष्ट हो गये हैं ।

---

* न जाओ सैंया छुड़ा के, हाय हाय जियरा मोरा सिसके

(अ) जागी बदन में ज्वाला सैंया तूने क्या कर डाला

(साहिर : इज्जत)

2. आजा पिया तोहे प्यार दूं । (मजरूह : बहारों के सपने)

3. कर कोई जतन, ओ बेरी सजन, पिया है या तू ह बुज़दिल

(आनंद बक्षी : दुनिया)

4. तू कहां गयी थी तेरा मर जाय सांवरियां । (मजरूह:धरम-करम)

5. तथा 6. मेरे मितवा मेरे मीतरे, आजा तुझको पुकारे मेरे गीत रे । (भरत व्यास : गीत)

7. उदाहरण के लिए गंगा, जमुना - "डाकू"आदि को लिया जा सकता है।

8. जैसे - गंगा मइया तोरे पियरी चढ़इयो - बृजभूमि

9. गोदान का यह गीत - पीपरा के पतवा सरीखे डोले मनवा - अंजान

हिन्दी भाषी क्षेत्र की आंचलिक बोलियों के शब्द भी नायक के लिये प्रयुक्त हुए हैं :- "बलमा", [1] "ठगवा" [2] "छैला" [3]

विभिन्न भाषाओं के पर्याय : ... ...

सिनेगीतकार ने हिन्दी फिल्मों में भी विभिन्न भाषाओं के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है। इनके प्रयोग से एक चमत्कार और लय की सृष्टि होती है। जैसे - कांचा, [4] यह शब्द आसाम के अंचलों में नायक के अर्थ में प्रयुक्त होती है। इसी प्रकार पंजाबी भाषा का यह पर्याय द्रष्टव्य है, जट यमला [5] {जाट गंवार} मराठी भाषा का "पांडुबा" [6] शब्द भी एक गीत में आया है।

विदेशी भाषाओं के शब्द :

इनमें मुख्यत: फारसी और अंग्रेजी शब्दावली आती है। हिन्दी सिने गीतों में हिन्दी, फारसी और उर्दू शब्दावली के

---

* [redacted] बलमा हमार मोटर कार लेके आयो रे। {वर्मा मलिक - अनहोनी}

2. ठगवा ने डाका डाला
   वो छैला तेरा मनवा मैला {शकील : गंगाजमुना}

3. कांचारे कांचा प्यार मेरा सांचा रुक जान जा दिल तोड के, {आनंद बक्षी : हरेराम हरे कृष्ण}

4. मैं जट यमला पगला दीवाना, ओरब्बा इत्ती-सी बात ना जाना के वो मैनू प्यार कर दी है। {आनंद बक्षी : प्रतिज्ञा}

5. अरे पांडुबा, पोरगी फसली रे फसली। {राजेन्द्र कृष्ण : कहानी किस्मत की}

बीच एक प्रतियोगिता सी दिखाई पड़ती है जहाँ गीत का वातावरण गज़ल का होता है या प्रेम की स्थिति उस वातावरण से उत्पन्न होती है वहाँ फारसी शब्दावली का औचित्य सिद्ध होता जाता है । इसी वातावरण में फारसी शब्दों का प्रयोग मिलता है । फारसी शब्दों के उदाहरण इस प्रकार के हो सकते हैं -

दिलबर,* दिलदार,[2] हमदम,[3] महबूब[4], सनम,[5] जानेमन,[6] हमसफर,[7] मुसाफिर,[8] जालिम,[9] दिलनशी,[10] जैसे शब्द बहुत लोकप्रिय हो गये हैं ।

---

* कहो हसीना आज इसे क्यों अपना दिलबर माना
{राजेन्द्र कृष्ण : मन का गीत}

2. यार दिलदार तेरे जैसा चाहिए, प्यार के लिए मगर पैसा चाहिए।
{आनंद बक्षी : छैला बाबू}

3. हमदम मेरे मान भी जाओ कहना मेरे प्यार का {मजरूह : मेरे सनम

4. मेरे महबूब तुझे मेरी मोहब्बत की कसम, फिर मुझे नरगिसी आँखों का सहारा दे दे । {शकील : मेरे महबूब}

5. अच्छी नहीं सनम दिल्लगी, दिले बेकरार से
{मजरूह : रात्री और दफकडो}

6. वही है डगर वही है सफर नहीं साथ मेरे मगर मेरा हमसफर { योगेश : छोटी सी बात }

7. वही है डगर वही है सफर नहीं साथ मेरे मगर मेरा हमजफर ।
{ योगेश : छोटी सी बात}

8. चलत मुसाफिर मेहलियोरे पिंजरेवाली मुनियाँ {शैलेन्द्र: तीसरी कसम}

9. दिल को मेरे मेरा दिलनसी चाहिये { शकील : लीडर }

10. डार्लिंग-डार्लिंग - हलो डार्लिंग हलो डार्लिंग
{आनंद बक्षी : }

फारसी की अपेक्षा अंग्रेजी शब्द बहुत कम है जैसे - छोरा *
डीयर,[2] डार्लिंग,[3] हैंडसम,[4] जैसे कुछ शब्द ही प्रयुक्त हुए दिखाई
पड़ते हैं ।

सांस्कृतिक पर्याय : ... .

कुछ पर्याय शब्द संस्कृति की कुछ विशेष धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं इनमें इस प्रकार की शब्दावली आती है :
"जोगी," जोगी शब्द कुछ मध्यकालीन प्रेमगीतों में नायक का वाचक है मीरा ने स्वयं अपने गीतों में नायक के लिए इस शब्द का प्रयोग किया है ।"[5]

जायसी के पद्मावत का नायक रतनसेन भी पद्मावती को प्राप्त करने के लिये -जोगी- बनता है तान्त्रिकों की योगी, योगिनी साधना भी इसकी पीठिका है कुछ चलचित्रों में नायक जोगी बनकर नायिका के पास जाता है ।

व्यक्तिवाचक पर्याय शब्द : ....

जहाँ जातिवाचक शब्द नायक का वाचन करते हैं वहाँ कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्द भी नायक के लिये प्रयुक्त हुए हैं । ये शब्द प्राय: प्रसिद्ध प्रेम कथाओं के नायकों से संबंधित है । भारतीय

---

* तुम हो बुद्दु मान लो । यार हैंडसम जान लो ।
(आनंद बक्शी : एक दूजे के लिए)

प्रेम कथाओं में रांझा* बहुत प्रसिद्ध है । फारसी प्रेम कथाओं में मजनू,[2] फरहाद,[3] जैसे नायक के व्यक्ति वाचक नाम होते हुए भी सामान्य नायक के प्रतीक बन गये हैं । "सलीम और अनारकली का नायक सलीम भी इस रूप में कभी-कभी दिखाई पड़ता है ।

रचनागत वैविध्य : .. .. ..

इस शीर्षक के अन्तर्गत नायक वाचक वे शब्द आते हैं जो प्रकृति में विशेषण प्रतीक या अलंकार है ।

विशेषण मूलक पर्याय : .. .. ..

विशेषण विशेष्य के स्थानापन्न हो सकते हैं । विशेषणों में किसी भी व्यक्ति को सम्बोधित भी किया जा सकता है । सिने गीतकारों ने नायक के लिए प्रयुक्त विशेषणों की संज्ञा रूपों में ग्रहण करके एक विशेष चमत्कार को सृष्टि की है । उदाहरण के लिए ये विशेषण शब्द लिये जा सकते हैं ।

---

* कितने रांझे तुझे देखकर बेरागी बन गये । [बरसात]

2

निददों,* निर्मोही,[2] परदेसी,[3] अनाडी,[4] जंगली जानवर,[5] बदतमीज,[6] दीवाना,[7] बेकदर,[8] बेवफा,[9] भाड़े का टट्टू,[10] मतवाली [11] बुद्धू,[12] बुद्धू, हैंडसम,[13] मुआ [14]

<u>प्रतीक शब्द :</u> ....

नायक के लिये कुछ परम्परागत प्रतीक भी प्रचलित है ।

---

* ओ निर्दयी मैं पछतायी, तुझसे नेहा लगाए के,

2. ओ निर्मोही चुपके चुपके मैं तो तेरी हो गई ।

{अंजान : गोदान}

3. खाई है रे हमने कसम संग रहने की,

आयेगा रे उड के मेरा हंस परदेसी {मजरूह : तलाश}

4. से 8 तक एक अनाडी जंगली जानवर बदतमीज दीवाना,

कहो हसीना आज इसे क्यूँ अपना दिलबर माना,

{राजेन्द्र कृष्ण : मन का मीत}

9. से 10: रेत में बैठकर, बाँहों में भीचकर उसने मुझसे कहा,

बेकदर, बेवफा {आनंद बक्षी : छैला बाबू}

11. मेरे सामने वाले कमरे में एक भाड़े का टट्टू रहता है ।

{आनंद बक्षी : लाखों में एक}

12. तू है मेरा राही मतवाला {हसरत : हरियाली और रास्ता}

13. यू आर हैंडसम जान लो । {आनंद बक्षी : एक दूजे के लिये}

14. रात भर मुआ सोने न दे । {विधाता : अंजान}

इनका प्रयोग भी कुछ गीतों में मिलता है - जैसे - हंस,*
कबूतर,[2] भंवरा,[3] (भ्रमर) परवाना,[4] राही ।[5]

<u>आलंकारिक पर्याय :</u> ....

नायक के लिये आलंकारिक पर्यायों का प्रयोग एक विशेष काव्यात्मक चमत्कार उपस्थित करता है, उदाहरण के लिये इन शब्दों को लिया जा सकता है । मांझी[6] खिवैया[7] प्रणय के देवता,[8] सपनों के देवता ।[9]

नायक वाचक पर्याय शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति वैविध्य को भी लिये हुए हैं और चमत्कार को भी इसमें दर्शकों के मानसिक सांस्कृतिक और रुचिकरक स्तर प्रतिभागत है । इन सभी स्तरों को स्पर्श करने के लिये सिनेगीतकार को प्रयोग धर्मा

---

*. आयेगा रे उड के मेरा, हंस परदेसी (मजरूह : तलाश)
2. ये आजकल के लड़के, ये पढ़ते ना लिखते है फैशन फिर भी देखो बे पर के उड़ते है, बात इनके देखो गाल इनके देखो चाल इनकी देखो देखो, कबूतर - कबूतर (मजरूह : दिल्लगी)
3. भंवरा बड़ा नादान हाय । बगियन का मेहमान हाय (शकील : साहब बीबी गुलाम)
4. तू है मेरा राही मतवाला (हसरत : हरियाली और रास्ता)
5. मांझी रे मांझी अपना किनारा नदिया की धारा (गुलजार : खुशबू)
6. नइया संभालो कित खोये हो खिवैया (आनंद बक्षी : फिलर)
7. तुम, प्रणय के देवता हो । (भरत व्यास : सती सावित्री)
8. सपनों के देवता तुझे क्या करू मैं अर्पण (आनंद बक्षी : कटी पतंग)

इनका प्रयोग भी कुछ गीतों में मिलता है - जैसे - हंस,*
कबूतर,[2] भंवरा,[3] (भ्रमर) परवाना,[4] राही ।[5]

<u>आलंकारिक पर्याय :</u> ....

नायक के लिये आलंकारिक पर्यायों का प्रयोग एक विशेष काव्यात्मक चमत्कार उपस्थित करता है, उदाहरण के लिये इन शब्दों को लिया जा सकता है । मांझी[6] खिवैया[7] पुण्य के देवता,[8] सपनों के देवता ।[9]

नायक वाचक पर्याय शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति वैविध्य को भी लिये हुए है और चमत्कार को भी इसमें दर्शकों के मानसिक सांस्कृतिक और रुचिकरक स्तर प्रतिकागत है । इन सभी स्तरों को स्पर्श करने के लिये सिनेगीतकार को प्रयोग धर्मा

---

*. आयेगा रे उड के मेरा, हंस परदेसी (मजरूह : तलाश)
2. ये आजकल के लड़के, हैं पढ़ते ना लिखते है फैशन फिर भी देखो
बे पर के उड़ते है, बात इनके देखो गाल इनके देखो चाल इनको देखो
देखो, कबूतर - कबूतर (मजरूह : दिल्लगी)
3. भंवरा बड़ा नादान हाय । बगियन का मेहमान हाय
(शकील : साहब बीबी गुलाम)
4. तू है मेरा राही मतवाला (हसरत : हरियाली और रास्ता)
5. मांझी रे मांझी अपना किनारा नदिया की धारा
(गुलज़ार : खुशबू)
6. नइया संभालो कित खोये हो खिवैया (आनंद बक्षी : किला)
7. तुम, पुण्य के देवता हो । (भरत व्यास : सती सावित्री)
8. सपनों के देवता तुझे. क्या करूं मैं अर्पण (आनंद बक्षी : कटी पतंग)

होना पड़ा है इस रूप में वह अन्वेषी भी उसके शब्दानुवेषण की प्रक्रिया विभिन्न स्तरों पर चलती है । इसी प्रवृत्ति के कारण हिन्दी सिनेगीत अधिक से अधिक लोक प्रिय होते जा रहे हैं । जहाँ इनकी लोक प्रियता ■ ये लय और शैली का योगदान है वहाँ शब्दावली के महत्व को भी नहीं भुलाया जा सकता ।

नायक - नायिका युग्म पर्याय : ....

कुछ शब्द युग्म इस प्रकार प्रयुक्त हुए हैं जिनके द्वारा नायक और नायिका का सम्बन्ध प्रकट होता है । नीचे इन शब्दों की एक सूची प्रस्तुत है ।

नायक	नायिका
देवता*	पुजारिन*
चाँद [2]	चकोरी [2]
गगन[3]	धरती[3]

---

* आ देवता तू अपनी पुजारिन के पास आ ।
जनमों से बिछुड़ी बावरी दुल्हन के पास आ ।

(फिल्म : अब क्या होगा)

2- 3 चाँद से देखो दूर चकोरी
धरती दूर गगन से

(फिल्म : चिराग कहाँ रोशनी कहाँ : प्रेम धवन)

नायक	नायिका
राम *	सीता *
सलीम[2]	अनारकली[2]
तोता[3]	मैना[3]
शाब (साहब)[4]	मेम[4]
भंवरा (भ्रमर)[5]	कली [5]
रजपूत (राजपूत)[6]	पद्मनिया (पद्मिनी)[6]

---

* शुनो शुनो ।

चलो हम तुम कोई दूजा नाम रख लें,
जाओ जाओ,
नाम बदल कर सीता राम रख लें

(आनंद बक्षी : ये गुलिस्तां हमारा)

2. कहां सलीम का रुतबा
कहां अनारकली ।

3. तोते से बोली मैना
बुजरगों का कहना
प्यारे सच है ना बोल (आनंद बक्षी : चाचा भतीजा)

4. एक मेम शाब है
साथ में शाब है (वर्मा मलिक : कसौटी)

5. भंवरा बड़ा नादान हाय
बगिया का मेहमान हाय
फिर भी जाने ना जाने ना
कलियन की मुस्कान हाय (शकील बदायूंनी : साहब बीबी गुलाम)

6. वह है तेरी पद्मिनियां और तू बांका रजपूत
(इंदीवर - अनोखी रात)

नायक	नायिका
बादल[*]	घटा[*]
कान्हा[2]	बंसी[2]
फुलवा (फूल)[3]	खुशबू[3]
परवाना[4]	शमा[4]
चोर[5]	रानी[5]
राजा[6]	रानी[6]
गुलाम[7]	हुजूर[7]

---

* से 3 तक) मैं घटा प्यार भरी तू है मेरा बादल
तू है मेरी बंसी मैं हूँ तेरा कान्हा
तू है मेरा फुलवा मैं हूँ तेरी खुशबू.

(मजरूह : जिद्दी)

4\. ओ शमा मुझे तू फूंक दे
मे न मैं रहूँ तू न तू रहे
परवाने का है अजब चलन
यहाँ जीते जी अपना मिलन
किस्मत को नहीं मंजूर । (शैलेन्द्र : आशिक)

5\. तथा मैं एक चोर तू मेरी रानी

6\. चोर नहीं, तू मेरा राजा, मैं तेरी रानी

(आनंद बक्षी : राजारानी)

7\. राह में पडे हैं, हुजूर के गुलाम है ।

(हसरत : जयपुरी : जंगली)

नायक	नायिका
शराबी *	साकी *
गुल [2]	बुलबुल [2]
कांचा [3]	कांची [3]
शाम [4]	राधा [4]
इश्क [5]	हुस्न [5]
गुड्डा [6]	गुड्डी [6]
मजनू [7]	लैला [7]

---

* मैं हूं साकी, तू है शराबी ॥आनंद बक्षी : दुल्हन ॥

2. एक था गुल और एक थी बुलबुल
   दोनों चमन रहते थे ॥ नींद हमारी ख्वाब तुम्हारे ॥

3. कांची रे कांची रे प्रीत मेरी साची
   कांचा रे कांचा रे प्यार मेरा सांचा

   ॥ आनंद बक्षी - हरे राम हरे कृष्ण ॥

4. जैसे राधा ने माला जपी शाम को
   मैने ओढी चुनरीया तेरे नाम की ॥नीरज : तेरे मेरे सपने॥

5. ऐ हुस्न जरा जाग तुझे इश्क जगाये॥शकील : मेरे महबूब ॥

6. बोल मेरी गुड़िया गुड्डे के संग जायेगी

   ॥साहिर : भाई हो तो ऐसा॥

7. लैला हूं लैला ऐसी मैं लैला
   मजनू बना दू ऐसी मैं लैला

   ॥इंदीवर : कुर्बानी॥

ऊपर की सूची के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नायक नायिका सम्बन्ध सूचक युग्म शब्द वैविध्यपूर्ण है । इन शब्दों में से कुछ तो बिलकुल रूढ़ है जिनकी कवि समय के रूप में मान्यता है । जैसे "चाँद और चकोरी", "शमा और परवाना आदि कुछ न्याय पौराणिक प्रकृति के हैं जैसे रा धा और शाम आदि । कुछ युग्म प्रसिद्ध प्रेम कथाओं से ग्रहित है जैसे - राजा-रानी, लैला मजनू, लोक कथाओं के तोता मैना भी संदर्भ का विकास करते हैं । ऐतिहासिक दृष्टि से राजपूत और पद्मनी का युग्म उल्लेखनीय है । फारसी संस्कृति से गुलाम हुजूर का युग्म आगत है किन्तु प्रयोग में नवीन है ।

तात्पर्य यह है कि चल-चित्र के दर्शक वर्ग की विविधता को ध्यान में रखते हुए नायक नायिका के सम्बन्ध का वाचन भी विविध शब्दावली करती है । यह युग्म शब्द शब्द संदर्भ गीत के पूरे लहजे और रचाव में इस तरह जड़ दिये जाते हैं कि भाव और प्रभाव कि एक सामंजस्य इकाई बन सके । कुछ शब्द गंभीर वातावरण को व्यक्त करते हैं । कुछ मौज मस्ती के वातावरण को ।

<u>नायिका के लिये प्रयुक्त पर्याय :</u> ....

प्रकृतितः नायक सम्बन्धी पर्याय शब्दों के जो वर्ग बनते हैं वे ही नायिका संबंधी पर्यायों के हैं । "प्राणेश्वरी" ।* "हृदयेश्वरी", 2 "कामिनी", 3 जैसे पर्याय शुद्ध तत्सम हैं ।

---

* से तीन तक : प्रिय प्राणेश्वरी : हृदयेश्वरी :
ओ कामिनी {हम तुम ओखों}

इसी प्रकार "साजनिया"* एक तद्भव की सारी मिठास को अपने में समेटे हुए है । "गोरी"[2] ; या "सावल गोरी"[3] भी इसी प्रकार की चमत्कृति लिए है ।

"छोकड़ी"[4] और "पोट्टी"[5] दक्खनी हिन्दी शब्द आंचलिक छाया में पले - पनपे हैं ।*

विभिन्न भाषाओं से ग्रहित पर्यायों के उदाहरण ये हैं:- "पोरगी"[6] {मराठी} "कांची"[7] {असमी} "कुड़ी"[8] {पंजाबी} आदि ।

---

* तू कहाँ गया था, तेरी मर जाये साजनिया
{मजरूह : धरम कांटा}

2 पर्दे के पीछे बैठी सांवलगोरी {मजरूह : धरम कांटा}

3 अंग्रेजी मूलक में कितना रोमांस है, बाहर का छोकड़ी कितना एडवांस है । {मजरूह : औलाद}

4 हाल्ल की खिदमत में सलाम अपुन का, पोट्टी फंसाना फकत काम अपुन का । {आनंद : देश प्रेमी}

5 अरे पांडुबा, पोरगी फसली {राजेन्द्र कृष्ण : कहानी किस्मत की}

6 कांची रे कांची रे, प्रीत मेरी सांची
{आनंद बक्षी : हरे राम हरे कृष्ण}

7 दिल में यह मेरे बस गई है, एक कुड़ी फंस गई है ।
{राजेन्द्र कृष्ण : कहानी किस्मत की

विदेशी भाषा के शब्दों में सबसे अधिक क्षिप्रता फारसी शब्दों की है । बल्कि यह कहना चाहिए कि यह शब्दावली सभी प्रकार की शब्दावली से अधिक है । "हुस्न" * "नाजनीना"[2] "दिलरुबा"[3] "महबूबा"[4] "जानेमन"[5] "जोहरा"[6] जानी"[7] जैसी शब्दावली गीतों में छाई हुई है ।

उपर्युक्त भाषा वैविध्य को प्रकट करनेवाली शब्दावली के अतिरिक्त रचना-वैविध्य के उदाहरण भी कम नहीं मिलते । इनमें पहला रूप व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का नायिका के लिए प्रयोग किया गया है । कुछ उदाहरण इस प्रकार है :- "हीर"[8] "जूलियट"[9] "लैला"[10] "सोणिये"[11] "सोनी" "अनारकली" आदि ।

---

* ऐ हुस्न तेरे खातिर मैं मरने चला हूँ । ॥हसरत : गुनाहों का देवता ॥

2 तेरी जवानी तपता महीना ओ नाजजीना ॥साहिर : अमानत॥

3 ऐ मेरी दिलरुबा । आ जा मेरे पास । मेरे लब में है प्यास । ॥आनंद : छैला बाबू ॥

4 महबूबा ओ महबूबा, गुलशन में गुल खिलते है ।
जब सेहरा में मिलते है, "मै और तू" ॥आनंद : शोले ॥

5. जाने मन जाने मन, जानेमन किसी का नाम नहीं ॥ आनंद : जानेमन ॥

6. एक मेरी जोहरा जबी, तुझे मालूम नहीं
तु अभी तक है हंसी, और मैं जवां । ॥साहिर : वक्त ॥

7. लाखों में काट दु लम्बी लम्बी ये लट,
तुमको तो हीर से बनना है जूलियट ॥मजरूह : औलाद ॥

8. लैला हुँ लैला ऐसी मैं लैला, मजनूं बना दूं, ऐसी मैं लैला, ॥इंदीवर : कुर्बानी ॥

विशेषण मूलक : ... .

रचना की दृष्टि से विशेषण का संभावत प्रयोग बहुत लोकप्रिय है अर्थात् नायिका से संबंधित विशेषणों को नायिकावाची शब्दों के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया गया है । इस प्रकार के विशेषण शब्दों की मिली-जुली सूची इस प्रकार की हो सकती है : "जाने तमन्ना" * "पिंजरे की मुनिया"[2] "मस्तानी"[3] "गोरी"[4] "हसीना"[5] आदि ।

प्रतीक शब्द : ....

नायिका सूचक प्रतीकात्मक शब्दों की भी एक परंपरा है । इस परंपरा से भी हिन्दी सिनेगीतकार ने अपने सृजन का सम्बन्ध जोड़ा है । इन शब्दों में आदिम मानवता को महक समाई

---

* बदल पे सितारे लपेटे हुए, ऐ जाने तमन्ना किधर जा रही हो
{हसरत : प्रिंस}

2 चलत मुसाफिर मोह लियो रे, पिंजरे वाली मुनिया ।
{शैलेन्द्र : तीसरी कसम}

3 ओ मस्तानी कोई निशानी, या जुबानी बोलो रानो,
{वर्मा मलिक : विक्टोरिया नं. 203}

4. हक गोरी ना पिया झुमका न टूट जाये,
रूठेगी देखो तुम्हारे दिल की रानी ।
{मजरूह : औलाद}

5. गोरी तेरी पैजनियाँ, मन के खोले भेद ।
{आनंद : महबूबा}

हुई है । इस प्रवृत्ति के कुछ उदाहरण इस प्रकार है । "हिरणिया"[1] "मछरिया"[2] [मछली] "राधा" चकोरी ।[3]

अलंकारिक पर्याय : ... .

अलंकारिक पर्यायों में रूपकात्मक रचना का समावेश होता है । ये प्रयोग गीतों को काव्यात्मक पीठिका प्रस्तुत करते हैं : - जैसे - "लाल छडी",[4] "कच्ची कली"[5] कचनार की "दिल की रानी"[6] "पत्थर के सनम"[7] "फूलों की रानी"[8] "बहारों की मलिका"[9] आदि । कुछ प्रयोग तो सूक्ष्म भावों की व्यंजना में पूर्णतः सक्षम है । जैसे प्रेमिका की निष्ठुरता की व्यंजना, "पत्थर के सनम" से हो रही है ।

---

* धीरे रे चलो, मेरी बांकी हिरणिया ।
[कमरजलालाबादी : जौहर महमूद इन गोवा]

2 किस्मत से जाल में, आई है मछरिया ।
[वर्मा मलिक : मेम साहब]

3 बोल राधा बोल संगम होगा कि नहीं । [शैलेन्द्र : संगम]

4 एक छोरी है इक गोरी है, इस चांद की जान चकोरी है,
[आनंद : लगन]

5 लाल छडी मैदान खडी
क्या खूब लडी क्या खूब लडी । [हसरत : जानवर]

6 कच्ची कली कचनार की । [राजेन्द्र कृष्ण : हंगामा]

7 रूठेगी देखो तुम्हारे दिल की रानी [मजरूह : औलाद]

8 पत्थर के सनम तुझे हमने मोहब्बत का खुदा जाना [मजरूह: पत्थर के सनम]

9 ऐ फूलों की रानी, बहारों की मलिका,
तेरा मुस्कुराना गजब हो गया । [हसरत : आरजू]

निष्कर्ष :   ....

भाषा का जन्म कब हुआ और उसका रूप कैसा है ये सदैव ज्वलंत प्रश्न रहा है । विद्वानों ने इस पर अनेक प्रकार से विचार किया है । वस्तुत: अस्पष्ट कल्पना शब्दों के माध्यम से भाषा रूप में ढलकर उतरती है । गीत भाव जगत की पृष्ठभूमि से जन्म लेता है । इसलिए गीत की भाषा अन्य भाषाओं से अलग होती है । अन्य भाषाओं का अर्थ है, तकनीकी, दर्शन या समाज विज्ञान की भाषा ।

फिल्म जन साधारण को ध्यान में रखकर बनाई जाती है । इसलिए प्रयत्न यही होता है कि भाषा का रूप दुरूह न होने पाये और दर्शकों का एक बड़ा वर्ग उसे आसानी से समझ लें । सिने गीत भाषा में यदि आंचलिक शब्द का श्रृंगार है तो महानगर की जिन्दगी को साकार करनेवाले शब्द-समूह भी । आज का सिने गीत केवल कोमल-कान्त पदावली से सम्पन्न रचना नहीं है अपितु एक वातावरण निर्माण करने की क्षमता से परिपूर्ण है । सिने गीतकारों ने नये शब्द गढ़े हैं और देशज़ शब्दों का प्रयोग किया है । इनकी विचार भूमि परिष्कृत रही है और इन्होंने गीत रचना में सधी हुई शब्दावली का प्रयोग किया है ।

फिल्म व्यवसाय में अनेक भाषा-भाषी लोग काम करते हैं । इसलिए दूसरी भाषाओं के शब्दों का मिश्रण सिने गीतों में हुआ है ।

गीत भाषा का युगानुकूल सजाव श्रृंगार करने के लिए

लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग किया गया है । ये मुहावरें बहुत जीवन्त रूप में आये हैं । इससे वस्तु में व्यंग्य और शिल्प में तीखापन उत्पन्न हुआ है ।

सिने गीतों में एक व्यापक शब्द भण्डार का प्रयोग किया गया है जिसमें तत्सम, तद्भव, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, अरबी, देशज एवं विभिन्न भारतीय भाषाओं के शब्द भी हैं । सिने गीत भाषा में ध्वन्यात्मक शब्दों एवं पर्यायवाची शब्दों का भी बड़ा चमत्कारिक प्रयोग किया गया है ।

कुल मिलाकर सिने गीत की भाषा, बोलचाल की भाषा के बहुत निकट बैठती है । गीतकारों ने जनता की भाषा को गीतों में अपना लिया है । यह भाषा हमें हर तरफ हर जगह हमें सुनाई पड़ती हैं । सिने गीतों में चरित्र के अनुकूल भाषा का प्रयोग भी किया जाता है । तथा छंद, तुक, अलंकार आदि को सहज रूप में अपनाया जाता रहा है ।

छन्द : .. .. ..

प्रास्ताविक : "हृदय के उच्छ्‌वास को शब्द अर्थ द्वारा मूर्तित करने की प्रक्रिया में शब्द अर्थ स्वयं उच्छ्‌वासित होकर अनायास ही छन्द के बंधन में बंध जाते हैं और गद्य की लय हृदय के तारल्य को बांधने के लिए अपर्याप्त हो जाती है ।" *

शास्त्रीय रूप से नियमित शब्द लय को छन्द कह सकते हैं - जितने तरह की शब्द लय होगी उतने ही छंद होंगे । छन्द को कविता का व्याकरण कहा जा सकता है । सिने गीतों में नए नए छंद बनते रहते हैं और टूटते रहते हैं ।

---

* डॉ. नगेन्द्र : भूमिका- ऊष्मा : डा. कान्ति त्रिपाठी

छन्द एक चेतन्यमय गति है जो समस्वर प्रतिबन्धों से उद्भूत और नियमित होती है । यह कलाकार के हाथों की सृजनात्मक शक्ति है । जब तक शब्द छंद विहीन गद्यरूप में रहते हैं तब तक उनके यथार्थ का कोई स्थाई भाव नहीं मिलता जैसे ही उन्हें छन्दबद्ध किया जाता है, वे जैसे चेतन्यमय आन्दोलन का निर्माण करने लगते हैं । *

छन्द क्रिया - समान अंतरालों की गति छन्द को जन्म देती है । यह एक छन्दबद्ध अवधान है जिसमें काल, परिमाण, आघात और विराम शामिल हैं । यह गति समान अंतराल की तरंगों के अनुसार ली जाय तो उसे समगीत छंद कहा जाएगा और यदि असमान दूरी के अनुसार लिया जाय तो उसे विषम गति छन्द अथवा विषम छन्द कहा जाएगा ।

काव्य में विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया जाता है जिनके नाम संस्कृत में हैं । स्वर, ध्वनि और व्यंजनों के आधार पर उनका वर्गीकरण किया जाता है और अक्षरों, शब्दों, पदांशों तथा पद समुदाय के अनुसार उनका नामकरण किया जाता है जैसे - लघु, लघुतर, लघुतम, गुरु गुरु-तर गुरुतम और उनका मिश्रण । गद्य में छन्द नहीं होता बल्कि विराम, अर्द्ध विराम चिह्न होते हैं ।[2]

लययुक्त तुकान्त छन्द से एक उत्कृष्ट फिल्म गीत का स्वरूप जन्म लेता है जिसे संगीत के प्रयोग से अधिक प्रभावशील बनाया जाता है । सिनेगीत का दृश्यी-करण होता है अत: वह नव-गीत से सर्वथा भिन्न है ।

---

* रिलिजियन आफ एन आर्टिस्ट : रवीन्द्रनाथ ठाकुर - पृ.18
इंग्लिश से हिन्दी अनुवाद : मदनलाल व्यास

2 राग ताल के मूल तत्व और अभिनव स्वर लिपि पद्धति
निखिल घोष : पृ.62-63

आधुनिक प्रचलित मुक्त छन्द का भी सिनेगीतों में प्रयोग हो रहा है ।

नवगीत ने गीत में सीधापन और सादगी लाने के लिए छायावादी कला-मूल्यों पर आघात किया । *

" छन्द रे स्वच्छन्द होकर गा
मत कहीं भी बन्द होकर गा " *

शिल्प की दृष्टि से एक उत्कृष्ट सिनेगीत "नवगीत" के बहुत सन्निकट होता है किन्तु विधा का अंतर होने के कारण सिने गीत लिखने का ढंग इस प्रकार होता है कि निर्देशक को उसमें दृश्य भी गूंथने का अवसर हो । सिनेमा दृश्य-श्रव्य माध्यम होने के कारण यदि सुन्दरतम गीत भी दृश्यीकरण की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है तो प्रभावोत्पादक नहीं बनता । उदाहरण के लिए फिल्म "अनजान राहें" का इन्दीवर का गीत

मुझे नहीं पूछनी तुमसे बीती बातें
कैसे भी हो गुजारी तुमने अपनी रातें
जैसी भी हो तुम आज से बस मेरी हो

मेरी ही बनकर रहना, मुझे बस तुमसे इतना ही है कहना
बीते हुए कल पर तुम्हारे अधिकार नहीं है मेरा ।[3]

§ये पंक्ति गीत में ठीक है पर चित्रीकरण योग्य नहीं - इस पर सिर्फ नायक का गाता हुआ चेहरा या नायिका की रोती आँखें ही दिखाई जा सकती है । §

---

* छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत : डा॰ विनोद गोदरे : पृ॰242

2 लेखनी बेला - वीरेन्द्र मिश्र - पृ॰ ।।

उस द्वार पे मैं क्यूं जाऊं जो द्वार नहीं है मेरा
बीता हुआ पल तो बीत चुका, कल का दुख न सहना ।*

{ ये पंक्ति एक दार्शनिक उपदेश है - दृश्य के योग्य नहीं । }

मैं राम नहीं हूं फिर क्यूं मैं उम्मीद करूं सीता की
कोई ईसा मैं क्यों ढूंढे - पावनता गंगा की
दुनिया में कोई फरिश्ता नहीं - इंसान ही बनके रहना

{मानसिक ग्रन्थि को कैमरे द्वारा कैसे कहा जायगा - उसी के अनुकूल शब्द एवं छन्द चयन होना चाहिए । }

"अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए विधा का उतना महत्व नहीं जितना भीतर की अर्ज का ।"[1]

छन्द से युक्त सिने गीत बड़े प्रभावशाली ढंग से चित्रित किए जा सकते हैं क्योंकि छन्द का बंधन कैमरे को भी बांधता है ।

"नवगीत में छन्दों के प्रयोग में विभिन्न है । इनमें चरणों की संख्या अनिश्चित रहती है ... ... किन्हीं गीतों के चरण लघु होते हैं और किन्हीं गीतों के चरण लम्बे लम्बे होते हैं । इसके अलावा कभी कभी एक ही गीत में पंक्तियों की विविधता दृष्टिगत होती है ।"[2]

---

* रामदरश मिश्र : बासंती, 2 मार्च 1962

2 छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत : डा॰ विनोद गोदरे
पृ॰ 297

"छन्द के कलेवर में गीत रचना से टेक की तुक का निर्वाह करना आवश्यक हो जाता है । सांगितिक आग्रह के कारण कवि की कल्पना टेक के निर्वाह के ईर्द गिर्द घूमती है जिससे कवि की मनोभूमि गीत में ठीक से अभिव्यक्ति नहीं कर पाती । ... पर टेक की पुनरावृत्ति से गीत के समवेत प्रभाव में कमी आ जाती है । नया गीतकार संगीत के अनुरोध के लिए गीत पंक्तियों की समानता तथा समचरणान्तता के पक्ष में नहीं है ।" *

"पद की जान टेक की तुक नहीं है, टेक का केन्द्रस्थ भाव है ।[2]

"नया गीत" एक उत्कृष्ट सिने-गीत के बहुत निकट है । सिने गीतों में पारस्परिक छंदों का प्रयोग भी नए छंदों के अलावा आज तक चलता आ रहा है क्योंकि ये पारम्परिक छंद एक समुदाय में शीघ्रग्राही और प्रचलित है । सिने गीतों में कविता और छंद का अटूट सम्बन्ध होता है । तुकान्त छन्द संगीत की धुन के साथ माधुर्य पैदा करते हैं इसलिए ऐसे छन्द अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं जिनमें लय हो ।[3]

"भावों के उतार-चढ़ाव और जटिलता की अभिव्यक्ति के लिए लय का होना अनिवार्य है । लय से भाव घनीभूत हो जाते हैं ।"[4]

---

* छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत : डा. विनोद गोदरे : पृ.297
2 पांच जोड़ बांसुरी : श्री विद्यानिवास मिश्र : पृ.183
3 डा. नगेन्द्र - भूमिका - ऊर्मा - डा. कान्ति त्रिपाठी : पृ.1979
4 गीति नाट्य शिल्प और विवेचन - डा. शिवशंकर कटारे : पृ.55-56

लय युक्त तुकान्त छंदों से एक उत्कृष्ट सिने गीत का स्वस्थजन्म लेता है जिसे संगीत के प्रयोग से अधिक प्रभावशाली बनाया जाता है । सिने गीत का चित्रीकरण होता है अतः वह साहित्यिक गीत से सर्वथा भिन्न है । छंद से मुक्त सिने गीत भी बड़े प्रभावशाली ढंग से चित्रित किए जा सकते हैं क्योंकि छंद का बन्धन भी कैमरे को बांधता है और सिनेमा दृश्य-श्रव्य माध्यम होने के कारण सुन्दरतम छंदोबद्ध गीत भी अगर चित्रीकरण की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है तो प्रभावोत्पादक नहीं बन सकता ।

साथ ही छंद से छुटकारा अभिनेता या अभिनेत्री को भाव प्रदर्शन का अधिक से अधिक अवसर देता है ।

सिने गीतों में छन्दों के प्रयोग में वैभिन्य है उनमें चारणों की संख्या निश्चित नहीं रहती है किन्हीं गीतों के चरण लघु होते हैं और किन्हीं गीतों के लम्बे । कभी-कभी एक ही गीत की पंक्तियों में विविधता पाई जाती है ।

छन्द के कलेवर में गीत रचने से टेक की तुक का निर्वाह करना आवश्यक हो जाता है । सांगितिक आग्रह के कारण कवि की कल्पना टेक के निर्वाह के इर्द गिर्द घूमती है ।* *

सिने गीत में साहित्यिक छंद का कलेवर कम होने पर भी संगीत निर्मित छंद का कलेवर गीत की रचना पर पूर्ण रूप से हावी होता है और सिने गीतकार की कल्पना भी संगीत के टेक के निर्वाह के इर्द गिर्द घूमती है । इसीलिए सिने गीतों में मुक्त छंद अधिक उपयुक्त है । क्योंकि मुक्त छन्द वो विषय छन्द है जिसके चरणों की संख्या

---

* छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत : डा. विनोद गोदरे : पृ.297

और विस्तारपूर्ण अनिश्चित और स्वतन्त्र होते हैं - केवल संगीताश्रयी लयाकार आद्योपांत एक-सा रहता है । भावों एवं संगीत रचना के अनुसार शब्दों का चयन और उतार चढ़ाव इसमें संभव है । जहां अन्य छंदों की बनावट में संगीत की मुखरता के कारण कृत्रिमता आ सकती है - वहां मुक्त छन्द संगीत की आत्मा के साथ-साथ गीत की आत्मा के साथ भी न्याय करने में सक्षम है ।

सिने गीतों के आदिकाल में §1931§ शास्त्र-सम्मत छंदों अथवा लोक छंदों का प्रयोग ही अधिक रहा किन्तु शनैः शनैः सिने गीत अपने विकास क्रम में अन्वेषी होते गए और उनमें नए नए प्रायोगिक छंदों का प्रयोग होने लगा । पहले गीत की रचना प्रक्रिया में गीतकार गीत लिखता था और संगीतकार उस गीत के अनुरूप संगीत का सृजन करता था इसलिए छंद का बंधन अनिवार्य था किन्तु कालक्रम में विदेशी सिने ~~गीत~~ संगीत के प्रभाव के कारण संगीत की धुन पहले बनने लगी और उस धुन पर गीत की रचना भी की जाने लगी । इस स्थिति में शास्त्रीय छंद का निर्वाह संभव नहीं था इसलिए जितनी नई धुनें बनती रहीं उतने नए नए छंद सामने आते गए ।

....

.... **बिम्ब**

प्रास्ताविक :

बिम्ब किसी वस्तु के मानस चित्र या कल्पना चित्र का नाम है । कवि, जगत की वस्तु को यथावत रूप में देखकर कल्पना के सहारे उसे नया रूप प्रदान करता है । मानव के मानस पटल पर विविध घटनाओं की अनेक छवियाँ अंकित रहती हैं । " बिम्ब " शब्द इसी मानस प्रतिभा का अपर नाम है । *

---

* गीति नाट्य : शिल्प और विवेचन : डा. शिवांकर कटारे : पृ.56-59

यद्यपि बिम्ब संयोजन गीत तंत्र के लिए आवश्यक नहीं है क्योंकि गीत में सहृदय एवं सृष्टा दोनों के मध्य किसी भी प्रकार का अंतराल असह्य है । बिम्ब अपनी ऐन्द्रियता तथा समर्थता के कारण कवि को सम्पूर्णतया मुखरित नहीं होने देता । वह एक मिथ्या मर्यादा का निर्माण कर देता है जिससे गीतकार की अपनी निजता स्पष्ट होने के बजाय संकेतों में बदल जाती है । अत: गीत शिल्प में बिम्ब विधान को प्रमुखता नहीं दी जाती । *

यही स्थिति सिने गीतों की है । जबरदस्ती ठूंसा हुआ बिम्ब भाव की लय और विकास को रोकता है । दृश्य को कैमरे का नाम है । अत: गीत के शब्दों में बिम्ब जितना कम हो उतना ही अच्छा है । सहज एवं अनायास आ जानेवाले बिम्ब भाव दृश्यीकरण में अवरोध नहीं बनते ।

अनुभूतियों के अंकन में प्रयुक्त सन्दर्भों के मूर्तिकरण को बिम्ब कहा जाता है । सन्दर्भों मे बिम्ब उतारने के लिए सादृश्य संदर्भों की संयोजना की जाती है ।

बिम्ब श्रोता या पाठक के मन में उस भाव का एक प्रतिबिम्ब उत्पन्न कर देता है ।

" बिम्ब की उत्कृष्टता किसी दृश्य की संयोजना भर करने में नहीं अपितु हमारे अन्य राग-बोधों को छूने में निहित है अत: वे

---

* छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत : डा॰ विनोद गोदरे
पृ॰ 298

समस्त बिम्ब जो एक दृश्य उपस्थित करने के साथ ही हमारे इन्द्रियों को संवेदित करते हैं काव्य शिल्प विधि की दृष्टि से उत्कृष्ट बिम्ब है । *

<u>सिने-गीतों में बिम्ब प्रयोग :</u>

सिने गीत, चूँकि उनका सीधा सम्बन्ध एक बहुत बड़े जन-समूह से है, इसलिए इन गीतों में वही बिम्ब अधिकतर प्रयुक्त किए जाते हैं जो एक बड़े वर्ग की शिक्षाशील संस्कार और अभिरुचि के अनुकूल रहते हैं । इन परम्परागत बिम्बों के प्रयोग के अलावा भी सिने गीतों में नए नए बिम्बों की योजना हुई है । एक बिम्ब -

तुम्हारी जुल्फ है या सड़क का मोड़ है ये
तुम्हारी आँखें हैं या नशे का तोड़ है ये [2]

उपरोक्त बिम्ब में नायिका के घुंघराले केशों का सड़क के मोड़ का बिंब बिलकुल अछूता और कवि गीतकार आनंद बक्षी की मौलिकता का परिचायक है । इसी तरह कवि एस.एच.बिहारी ने नायिका के अंधेरों के बिंब का बहुत ही लुभावना चित्र प्रस्तुत किया है ।

ये है रेशमी जुल्फों का अन्धेरा
ना घबराइए
जहाँ तक महक है मेरे गेसुओं की
चले आइये [3]

---

* आधुनिक कविता में शिल्प : कैलाश वाजपेयी : पृ.80

2 दुश्मन : आनन्द

3 मेरे सनम : एस.एच.बिहारी

अध्ययन की सुविधा हेतु बिम्ब को निम्नलिखित रूपों में विभक्त किया जा सकता है :

1. चाक्षुष बिम्ब
2. भाव बिम्ब
3. अलंकार बिम्ब
4. सांद्र बिम्ब
5. वस्तु बिम्ब
6. विवरण परक बिम्ब
7 प्राकृतिक बिम्ब
8 सांस्कृतिक बिम्ब
9. व्यवहारिक बिम्ब
10. पौराणिक बिम्ब
11. दार्शनिक बिम्ब
12 स्मृति बिम्ब
13 ऐतिहासिक बिम्ब
14 राजनैतिक बिम्ब
15 सामाजिक बिम्ब
16 सम-सामयिक
17 वैज्ञानिक
18 परा मनो वैज्ञानिक

....

1. चाक्षुष बिम्ब :

चाक्षुष बिम्ब हमारी दृश्य चेतना को स्पर्श करते हैं। क्योंकि गीतकार समस्त विश्व को अपनी दृष्टि से देखता है और उससे ग्रहण की

हुई अनुभूति को अपने व्यक्तित्व के द्वारा अपनी रचना में प्रकट करता है । इसलिए चाक्षुष बिम्ब बहुत ही जीवन्त होते हैं ।

इस धरती इस खुले गगन का क्या कहना
ग्वालनों का रूप
ज्वारों की आड़ में
बछियों का प्यार
बेरियों के झाड़ *

.. ..

कान में झुमका, चाल में ठुमका, कमर पे चोटी लटके
हो गया दिल का पुरजा पुरजा लगे पचासी झटके
तेरा रंग है नशीला अंग अंग है नशीला [2]

.. ..

छू लेने दो नाजुक होठों को कुछ और नहीं जाम है ये
कुदरत ने जो बख्शा है हमको वो सबसे हँसी इनाम है । [3]

2. भाव बिम्ब : .. ..

भाव अमूर्त होता है । वह दिखता नहीं, उसकी अनुभूति मन द्वारा होती है । भाव बिम्ब वह है जो कल्पना ग्राह्य हो, जिसे केवल मन

---

* गंगा तेरा पानी अमृत : साहिर लुधियानवी
2 सावन भादों : वर्मा मलिक
3 काजल : साहिर लुधियानवी

अनुभव करें । ये बिम्ब किसी दृश्य की स्पष्ट योजना प्रस्तुत नहीं करते उसकी झलक भर देते हैं ।

सपने छलते ही रहे रोज नई राहों से
कोई फिसला है अभी अभी बाहों से *

.. ..

खूबसूरती जो तूने पाई
लुट गई बस खुदा की खुदाई [2]

.. ..

तुम आ गए हो तो नूर आ गया है
नहीं तो चरागों से लौ जा रही थी । [3]

3. अलंकार बिम्ब : ... .

सिने गीतों में अलंकार बिम्बों का बहुत सुगठित एवं प्रयोगिक है । ये बिंब परम्परानुयायी एवं चमत्कारपूर्ण होते हैं । उक्ति-वैचित्र्य के साथ-साथ रूपकों की संयोजना की जाती है ।

जो बात तुझमें है तेरी तस्वीर में नहीं
रंगों में तेरा अक्स ढला
तू न ढल सकी

---

* आविष्कार : कपिलकुमार
2 अब्दुल्ला : आनंद बक्षी
3 आंधी : गुलजार

सांसों को आंच जिस्म की
खुशबू न ढल सकी
जो लोच तुझ में है
तेरी तहरीर में नहीं - *

..   ..   ..

आंच देने लगा कदमों के तले बर्फ का फर्श
आज जाना के मुहब्बत में है गर्मी कितनी
संगेमरमर की तरह सख्त बदन पे तेरे
आ गई है मेरे छूने से गर्मी कितनी ।[2]

4 सान्द्र बिम्ब :

सान्द्र बिम्बों में अभिव्यक्ति पक्ष बहुत प्रबल होता है । ये बिम्ब अपनी निर्माण में घनत्व की मांग करते हैं ।

बेशक मन्दिर मस्जिद तोड़ो
बुल्लेशाह यह कहता
पर प्यार भरा दिल कभी न तोड़ो
इस दिल में दिलबर रहता
जिस पलड़े में तुले मुहब्बत -
उसमें चांदी नहीं तोलना ।[3]

सान्द्र बिम्बों में अनुभूति की तीव्रता और एक संश्लिष्ट चित्र

---

*	सिकन्दर ऐ आज़ाद	:	राजेन्द्र कृष्ण
2	आदमी वक्त	:	[illegible] साहिर
3	बाबी	:	आनन्द बख्शी

मिलता है । ये बिम्ब भाव बिम्ब की अपेक्षा अधिक मुखर होते हैं ।

चांद छुपा और तारे डूबे रात गजब की आई
हुस्न चला है इश्क से मिलने जुल्म की बदली छाई

मौत की नागिन आज खड़ी है - राह में फन फैलाए
जंगल जंगल नाच रहे हैं शैतानों के साए
आज खुदा खामोश है जैसे भूल गया हो खुदाई *

.. ..

रंग और नूर की बारात
किसे पेश करूं
ये मुरादों की हंसी रात किसे पेश करूं ।[2]

5. <u>वस्तु बिम्ब</u> : ....

वस्तु बिम्ब यथार्थ ग्राही होती हैं ।

घुंघरू की तरह बजता ही रहा हूं
कभी इस पग में कभी उस पग में [3]

.. .. ..

इन बिम्बों में स्पष्ट वस्तु के प्रयोग से भावाभिव्यंजना की जाती है ।

गोरी तोरी पैंजनिया
मन के खोले भेद सजनिया....[4]

---

* सोहनी महिवाल : शकील 2 ग़ज़ल : साहिर
3 चोर मचाए शोर : रवीन्द्र जैन 4 महबूबा : आनंद बख्शी

गीतकार साहिर ने दाग फिल्म में काँटे कलियाँ और हथकड़ियाँ आदि वस्तुओं से एक बड़ा ही मधुर एवं संवेदनशील बिम्ब प्रस्तुत किया है ।

अब चाहे काँटे मिले या कलियाँ
यारा मैंने तो हाँ कर ली
अब चाहे लग जाए हथकड़ियाँ
मैंने तेरी बाह पकड़ ली । *

बदन पे सितारे लपेटे हुए
ए जाने तमन्ना किधर जा रहो हो ।[2]

6. विवरण परक बिम्ब : .. .. ..

ये बिम्ब सामान्य कल्पना तथा उपमानों से निर्मित विषयवस्तु को सर्वतोपयोगी बना देते हैं । जैसे - चुनरी में दाग लगनेवाली सामान्य कल्पना :

लागा चुँदरी में दाग
छुपाऊं कैसे
घर जाऊ कैसे
हो गई मैली मोरी चुनरिया
कोरे बदन को कोरी चुनरिया
जाके बाबुल से नजरे मिलाऊं कैसे ।[3]

---

* दाग : साहिर
2 प्रिन्स : हसरत जयपुरी
3 दिल ही तो है : साहिर
*

विवरण परक बिम्ब का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है -

रहने को घर हो फर्श हो फर्श पे छत हो
खिड़की उड़की बिजली उजली घन्ट बन्टी कुछ
नहीं चाहिए प्यारे
बस एक छोटा सा दरवाजा हो । *

7. प्राकृतिक बिम्ब :

इनके गीतों में प्राकृतिक उपकरणों से निर्मित बहुत सुन्दर बिम्ब मिलते हैं ।

देख वो छत पे उतर आई है सावन की घटा
दे रही द्वार पे आवाज खड़ी पुरवाई
बिजली रह रह के पहाड़ों पे चमक उठती है
सूनी आँखों में कोई ख्वाब ले जो अंगड़ाई [2]

मानवीय संवेदना की पृष्ठभूमि के प्रस्तुत प्राकृतिक बिम्ब बहुत सजीव हो उठते हैं -

मेरे मुन्ने मेरे गुलजार के नन्हे पौधे
तुझको हालात की आँधी से बचाने के लिए
आज मैं प्यार के आँचल में छुपा लेती हूँ
कल ये कमजोर सहारा भी ना हासिल होगा
कल तुझे काँटों भरी राह पे चलना होगा
जिन्दगानी की कड़ी धूप में जलना होगा ।[3]

---

* बीवी और मकान : गुलजार

2 नई उमर की नई फसल : नीरज

3 मुझे जीने दो : साहिर

कवि नीरज ने "नई उमर की नई फसल" सटीक प्राकृतिक बिम्बों का प्रयोग किया है ।

स्वप्न भरे फूल से
मीत चुभे शूल से
लुट गए सिंगार सभी
बाग के बबूल से
और हम खड़े खड़े
बहार देखते रहे
कारवाँ गुजर गया
गुबार देखते रहे । *

सांस्कृतिक बिम्बों में भारतीय संस्कृति की अच्छी झलक प्राप्त होती है । सिन्दुर, अजन्ता आदि पर आश्रित बिम्ब बड़े सुन्दर बन पड़े हैं ।

8. <u>सांस्कृतिक बिम्ब</u> : .. ..

भारतीय ब्याहता नारी संस्कृति :

मैंने सिन्दूर से माँग अपनी भरी
रूप सैयाँ के कारण सजाया
इस डर से की पी को नजर ना लगे
झट नैनन में कजरा लगा बैठी [2]

भारत की गौरवमयी संस्कृति के बिंबों का सुन्दर चित्रण निम्न गीत में द्रष्टव्य है -

---

* नई उमर की नई फसल : नीरज

2 साहब बीबी गुलाम : शकील

अब कोई गुलशन न उजड़े अब वतन आजाद है
रूह गंगा की हिमालय का बदन आजाद है
खेतियाँ सोना उगाएँ वादियाँ मोती लुटाए
आज गोतम की जमीं तुलसी का मन आजाद है । *

हसरत जयपुरी ने "अजन्ता" की गुफाओं में चित्रित नारी सौन्दर्य का बिम्ब फिल्म अर्चना में किया है जो नवीन और सजीव है ।

कितनी प्यारी हो मगर फिर भी परी लगती हो
भेष कोई भी सही फिर भी परी लगती हो
जैसे दीवारे अजन्ता से उतर आई हो ।[2]

9. व्यवहारिक बिम्ब :

इन बिम्बों में जीवन-व्यवहार को बिंबायित किया जाता है और इनके माध्यम से जीवन दृष्टि को स्पष्ट किया जाता है ।

कुछ ऐसे लोग भी होते हैं
अपनी गलती पर रोते हैं
अपना तो पेट नहीं भरता
पर दस दस बच्चे होते हैं
हर साल कैलेन्डर छाप दिया
परिवार नियोजन साफ किया
तो उसके बाद फिर तुन तुन तुन [3]

---

*	मुझे जीने दो	:	साहिर
2	अर्चना	:	हसरत
3	यादगार	:	इन्दीवर

जमाने के यारों चलन है निराले
यहाँ जिस्म उजले और दिल है काले
ये दुनिया है दुनिया यहाँ मालों जर से
दिलों में खराबी छुआई गई है । *

... ...

रंग ले आएंगी, रूप ले आएंगी
कागज के फूल भूल, अरे भूल
खुशबू कहाँ से लाएंगी । [2]

कागज के फूल का बिंब कृत्रिमता को बिंबायित करता है ।

10 पौराणिक बिम्ब :

ये बिम्ब पौराणिक आख्यानों और पात्रों पर आधारित होते हैं । इसकी जड़े देश, काल, धर्म और संस्कृति से जुड़ी हुई होती है । इसलिये ये बिंब बहुत प्रभावशाली एवं संस्कारित होते हैं ।

इस अनोखे जगत की मैं तकदीर हूँ
मैं विधाता के हाथों की तस्वीर हूँ
इस जहाँ के लिए धरती माँ के लिए
शिव का वरदान हूँ मैं तुम्हारी तरह [3]

---

* लीडर : शकील 2. भंवर : आनन्द
3 दोस्ती : मजरूह

तू ओढ़े लाल चुनरिया, गहनों से करे सिंगार
शेरों पर करे सवारी तू शक्ति का अवतार
तेरे तेज़ भरे दो नैना तेरे अधरों पर मुस्कान
तेरे द्वारे शीश झुकाए क्या निर्धन क्या धनवान

हे माँ - शेरा वालिए - लाटा वालिए - हे माँ । *

..   ..

लाख छुपाए मीरा रानी मनमोहन की प्रेम दीवानी
जान गई जान गई सब सखियाँ ।[2]

पौराणिक बिम्ब में कृष्ण और राधा के प्रेम का बिम्ब बाँधा गया है ।

जैसे राधा ने माला जप शाम की
मैंने ओढ़ी चुनरिया तेरे नाम की ।[3]

11. दार्शनिक बिम्ब :

दार्शनिक बिम्बों में दर्शन सम्बन्धी गूढ़ रहस्यों के बिम्बों को चित्रित किया जाता है ।

वक्त की पाबन्द है
ये आती जाती रौनकें
वक्त है फूलों की सेज
वक्त है काटों का ताज ।[4]

---

* आलिंगन : नक्शलायलपुरी   2. आपकी कसम : आनंद
3 तेरे मेरे सपने : नीरज   4. वक्त : साहिर

कोरी चुनरिया आत्मा मोरी
मैल है माया जाल
वो दुनिया मेरे बाबुल का घर
ये दुनिया ससुराल
जाके बाबुल से नजरे मिलाऊ कैसे । *

इस बिम्ब में आत्मा रूपी चुनरी पर माया रूपी मैल और का बिम्ब बहुत सटीक बैठा है । यह सम्पूर्ण सृष्टि उस अनंत की खोज निरन्तर कर रही है ।

औरे ताल मिले नदी के जल में नदी मिले सागर में
सागर मिले कौन से जल में कोई जाने न
सूरज को धरती तरसे धरती को चन्द्रमा
पानी में सीप जैसे प्यासी हर आत्मा
बूंद छिपी किस बादल में कोई जाने ना ।[2]

12. स्मृति बिम्ब : .. .. ..

सिने गीतों में स्मृति बिम्ब-विधान के सहारे नारी रूप का चित्रण किया गया है ।

हाँ ये कसमे ये रस्मे सभी छोड़ के
तू चली आ चूर प्यार की ओढ़ के
ये चला जाऊँगा मैं ये जग छोड़ के
जिस जगह याद तेरी रुलाने लगे
उस जगह एक पल भी ठहरना नहीं ...[3]

---

* दिल ही तो है : साहिर 2 अनोखी रात : इन्दीवर
3 कटी पतंग : आनंद

सारंगा तेरी याद में मैंने हुए बेचैन
मधुर तुम्हारे मिलन बिना दिन कटता नहीं रैन
वो अबुआ का झूलना वो पीपल की छाँव
घूंघट में जब चांद था मेंहदी लगी थी पांव
आज उजड़ के रह गया वो सपनों का गांव । *

नायिका की स्मृति का बिम्ब नायक के प्रेम की तीव्रता को उद्घाटित करता है ।

13. <u>ऐतिहासिक बिम्ब :</u> .. .. ..

ऐतिहासिक बिम्बों में ऐतिहासिक घटनाओं, स्थानों या पात्रों का आधार कर बिम्बों का निर्माण किया जाता है ।

रोते हुए आते हैं सब हंसता हुआ जो जाएगा
वो मुकद्दर का सिकन्दर जाने मन कहलाएगा ।[2]

"गोरों का चना खाना" का बिम्ब उस सम्पूर्ण दास्ता को अभिव्यंजित करता है जो भारतवर्ष ने भोगी और भारतवर्ष जो कि कभी सोने की चिड़िया था उसकी सारी समृद्धता अंग्रेज ले गये ।

मेरा चना खा गये गोरे
जो गिनती में है थोड़े
फिर भी मारे हमको कोड़े
सुन सुन शरम शरम

---

* सारंगा : भरत व्यास
2 मुकद्दर का सिकन्दर : अन्जान

लाखों कोड़े छूटे फिर भी टूटा न दम खम
घना जोर गरम । *

14. <u>राजनैतिक बिम्ब</u> : .. .. ..

राजनीतिजन्य घटनाओं को लेकर बड़े ही अर्थपूर्ण बिम्बों का प्रयोग सिने गीतों में मिलता है ।

राम न करें मेरे देश को - कभी भी ऐसा नेता मिले
जो आप भी डूबे देश भी डूबे - जनता को भी ले डूबे
वोट लिया और खिसक गया - जब कुर्सी से चिपक गया
फिर उसके बाद .. .. तुन तुन ।[2]

वोट लेकर खिसकना और कुर्सी के चिपकना केवल राजनैतिक बिम्ब ही नहीं अपितु आज मुहावरे बन चुके हैं ।

15. <u>सामाजिक बिम्ब</u> : .. .. ..

समाज की व्यवस्था में कई तरह के घटनाओं के बिम्ब सिने गीतों में प्रयुक्त हुए हैं । वेश्यावृत्ति से सम्बन्धित एक बिम्ब आया है जहाँ नर्तकी वेश्या अपने ऊपर लगायी गयी । नायक की कीमत से संतुष्ट नहीं है;

राजा दिल माँगे चवन्नी उछाल के ..
ऐसे कैसे दे दूँ - ऐसे कैसे दे दूँ
कलेजा निकाल के ।[3]

---

* क्रान्ति : संतोष आनंद 2 यादगार : इन्दीवर
3 खून पसीना :

16. <u>समसामयिक बिम्ब</u> : .. .. ..

इन बिम्बों में समसामयिक घटनाओं में चित्रों का आयोजन होता है और ये बिम्ब समय-सापेक्ष होते हैं ।

क्या मिल गया सरकार इमरजेन्सी लगा के
नसबंदी करा के हमारी बैंसी बजा के
घर वाले बड़े खुश थे के मैं दुल्हा बनूंगा
घोड़ी पे चढ़ूंगा तो मैं फूलों से सजूंगा
सेहरे के फल रख दिए अर्थी पे सजा के । *

17. <u>वैज्ञानिक बिम्ब</u> : ... .

राकेट कोई चलाता है
कोई एटम बम बनाता है
अमन के नाम पे देखो वो
दुनिया पे रौब जमाता है
बारूद अगर ये चल जाएं
सारी दुनिया जल जाएं
तो उसके बाद ... तुन तुन ...[2]

18. <u>परा मनोवैज्ञानिक बिम्ब</u> : .. .. ..

परा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध एक अदृश्य चेतना है जिसका आधार आत्मा है ।

---

* नसबन्दी : हुल्लड़ मुरादाबादी

2 यादगार : इन्दीवर

आधी रात नहाने को
निकली एक नागिन मस्तानी
ऐसा ज़हर चढ़ा नदी पर
नीला पड़ गया पानी *

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि सिने गीतों में बिम्बों का वैविध्यपूर्ण प्रयोग हुआ है । ये बिम्ब उत्कृष्ट है और दृश्य की सम्पूर्ण संयोजना करते हैं जो कि सिनेमा की एक दृश्य श्रव्य [आडियो विजुअल] माध्यम है उसके लिये बहुत उपयुक्त है । चूंकि सिने गीतकारों की मूल भावना रोमांटिक है इसलिये बहुरंगी बिम्बों की संयोजना की गई है ।

....

---

* जीवन संग्राम : गुलजार

प्रतीक :   ....

प्रास्ताविक : प्रतीक किसी सूक्ष्म एवं जटिल भाव या विचार को व्यक्त करने का सशक्त साधन है । प्रतीकों से भाषा की लाक्षणिकता और व्यंजकता का विकास होता है । कवि कम से कम शब्दों से अधिक से अधिक भावों को सुन्दरता एवं मार्मिकता के साथ व्यंजना चाहते हैं । इस उद्देश्य के लिए प्रतीक ही उसके सहायक होते हैं ।

"प्रतीक साधारण रूप में किसी वस्तु का वह रूप है जिससे किसी अन्य वस्तु का प्रति विधान किया जाता है । इसमें दृश्य अथवा गोचर वस्तु अपने साधर्म्य के कारण किसी अदृश्य अथवा अगोचर विषय का प्रतिविधान करती है । *

---

* गीति नाट्य : शिल्प और विवेचना : शिवशंकर कटारे : पृ.58

"बीन है सितार है वायलिन है
    पर जिन्दगी
खोखला भोंपू है, सायरन है " *

..   ..

एक शहर चिपका रहा है
मेरे जूतों से
मैं लौटना चाहता हूँ[2]

शहर एक पुरानी थकी हुई व्यवस्था है । जूते आधारभूत मौलिक मान्यताओं के प्रतीक है । सिने गीतों में प्रतीकों का प्रयोग भी विपुल है । सिनेगीत जन जीवन के बिल्कुल समीप है इसलिए, अधिकतर ऐसे प्रतीक ही प्रयोग किए गए है जो सहज ग्राह्य हों । सिने गीतकार ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से प्रतीकों को चुना है और उसे जीवन्त बना दिया है । जैसे -

मेरा जीवन कोरा कागज
    कोरा ही रह गया
एक हवा का झोंका आया
टूटा डाली से फूल
ना पवन की ना चमन की
    किसकी है ये भूल
जो गई खुशबू हवा में
कुछ ना रह गया .....[3]

---

* चांदनी चूनर - शकुन्त माथुर : पृ. 102
2 एक सूनी नाव : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : पृ.34
3 कोरा कागज : एम.जी. हशमत

इसमें हवा का झोंका विपदा का प्रतीक है । "डाली" घर का प्रतीक है । फूल घर के व्यक्ति का ।

हम दोनों - मिल के
कागज पे दिल के,
चिट्ठी लिखेंगे
जवाब आएगा । *

यहाँ "कागज का दिल" कोमल भावावेश भरा मन है और चिट्ठी प्रेम स्पंदनों के सम्प्रेषण का प्रतीक है ।

प्रतीक रूप :

सिने गीतों में प्रयुक्त प्रतीकों का निम्नलिखित रूपों में अध्ययन किया जा सकता है ।

1 पौराणिक प्रतीक
2 सांस्कृतिक प्रतीक
3 ऐतिहासिक प्रतीक
4 सामाजिक प्रतीक
5 दैन्यदिन जीवन के प्रतीक
6 दार्शनिक प्रतीक
7 प्राकृतिक प्रतीक
8 मनोवैज्ञानिक प्रतीक
 (यौन प्रतीक)

---

* तुम्हारी कसम : आनंद बख्शी

1 पौराणिक प्रतीक :

पौराणिक प्रतीक अंत: प्रेरणा की दिशा का बोध कराते है तथा संपूर्ण संवेदनशील व्यक्ति का माप होते है । पौराणिक प्रतीक एक विशेष वर्ग-समूह की अन्तं-आत्मा के साथ बहुत गहरे जुड़े हुए होते हैं ।

कुछ रीत जगत की ऐसी है
हरे एक सुबह की शाम हुई ...
तू कौन है तेरा नाम है क्या
सीता भी यहाँ बदनाम हुई । *

सीता एक ऐसी नारी का प्रतीक है जो सतीत्व पर दृढ़ रहने पर भी लांछित की जाती है ।

मैं राम नहीं हूँ फिर क्यूं
उम्मीद करूं सीता की
कोई इंसानों मे दृढ़ि क्यों
पावनता गंगा की ।[2]

आज के दाम्पत्य जीवन के नैतिक मूल्यों में परिवर्तन आ चुका है । राम एक पत्नीव्रत और सीता पतिव्रता का प्रतीक है ।

2 सांस्कृतिक प्रतीक : .. .. ..

भारतीय संस्कृति जो केवल गावों में ही नहीं महानगरों के जन जंगल में ये भी आज तक अपने स्वरूप को बचाए हुए हैं - उसके प्रतीक सिनेगीतों में मिलते हैं :

---

* अमर प्रेम : आनंद बक्शी
2 अन्जान राहे : इंदीवर

प्यार की गलियाँ
बागों की कलियाँ
सब रंग-रलियाँ - पूछ रही है
गीत पनघट पे
किस दिन आएगी तू .. मेरे सपनों की रानी *

प्यास और पनघट का सम्बन्ध बहुत पुराना है । यहाँ पनघट नायक नायिका को मांसल मिलन का प्रतीक है ।

> खेतियाँ सोना उगाए, वादियाँ मोती लुटाए
> आज गौतम की जमीं, तुलसी का वन आजाद है ।[2]

सोना भारतवर्ष की कृषि आधारित संस्कृति का प्रतीक है । गौतम की जमीं, तुलसी का वन - भारत का प्रतीक है ।

3 ऐतिहासिक प्रतीक :

इतिहास से संबंधित स्थान, पात्र एवं घटनाएं प्रतीक के रूप में प्रयोग की गई है :

> मेरा चना खा गए गोरे
> जो गिनती में थे थोड़े [3]

"चना" भारत की गौरवमयी संपदा का प्रतीक बनकर आया है । जिसे अंग्रेजी शासक खा गए । व गोरे - अंग्रेजी सत्ता का प्रतीक है ।

---

* आराधना : आनंद बख्शी 2 मुझे जीने दो : साहिर
3 क्रान्ति : संतोषानंद

एक बूंद में चर्चिल हो गए
एक बूंद में हिटलर । *

चर्चिल रचनात्मक प्रवृत्ति और हिटलर ध्वसात्मक प्रवृत्ति का प्रतीक है ।

4 सामाजिक प्रतीक :

सामाजिक संदर्भों एवं सम्बन्धों के रूप सिने गीतों में प्रतीक रूप में आए है :

देखो हम दोनों है
एक डाली के फूल
मै ना भूला तू कैसे
मुझको गई भूल ।[2]

यहां "एक डाली के फूल" भाई बहन के रक्त संबंध का प्रतीक है ।

अब कोई गुलशन न उजड़े
अब वतन आजाद है
रूह गंगा की
हिमालय का वतन आजाद है ।[3]

यहां "गुलशन" उन परिवारों का प्रतीक है जो विभाजन के समय और डाकुओं के आतंक से विस्थापित हो गए थे :

---

* खामोशी : गुलजार
2 हरे राम हरे कृष्ण : आनंद बक्शी
3 मुझे जीने दो : साहिर

5 दैनंदिन जीवन के प्रतीक :

सिने गीतों में वास्तविक जीवन की भाषा बोलचाल के शब्द तथा दैनिक जीवन में व्यवहार किए जानेवाली चीजों के प्रतीक आए हैं जो ऐसे वातावरण की रचना करते हैं जो किसी न किसी ढंग से चिरपरिचित दुनिया की हमारी पहचान को और गहरा कर देते हैं -

लाल छड़ी, मैदान खड़ी
क्या खूब लड़ी क्या खूब लड़ी
हम दिल से गए हम जान से गए
बस आंख मिली और बात बढ़ी *

यहाँ लाल छड़ी उस छरहरे वदनवाली सुन्दरी का प्रतीक है जो लाल परिधान पहने है :

ये दो दीवाने दिल के
चले है देखो मिल के
चले हे चले हे चले है ससुराल
आई है लेने देखो हमको बराती
ससुरे ने लेने भेजा लोहे का हाथी
चले हैं बन ठन के
सरकारी दूल्हा बन के ।[2]

---

* जानवर : हसरत

2 जौहर महमूद इन गोवा - इन्दीवर

ससुराल जेल, बाराती - पुलिस दल, ससुरा - जेलर, लोहे का ६
जेलवाहन, सरकारी दुल्हा - कैदी का प्रतीक है ।

ऐसा हाथ जमाया
दो राज धरती मा
गए धस धस धस *

दो गज धरती में धंसना मृत्यु का आलिंगन करने का प्रतीक है ।

6 दार्शनिक प्रतीक :

सिने गीतों में दार्शनिकता का बहुत ही सरल और सहज रूप मिलता है लेकिन उसकी पकड़ उतनी ही गहरी और सूक्ष्म है :

मैं तो एक ख्वाब हूँ
इस ख्वाब से तू प्यार न कर ...
ये हवाएं कभी चुप चाप चली जाएगी
लौट के फिर कभी गुलशन में नहीं आएगी
अपने हाथों से ख्वाबों को गिरफ्तार न कर[2]

ख्वाब जीवन की क्षणभंगुरता है । हवाएं जीवन के आनंद की अनुभूतियाँ है । गुलशन मानव मन का प्रतीक है ।

सजन रे झूठ मत बोलो
खुदा के पास जाना है
न हाथी है ना घोड़ा है
वहाँ पैदल ही जाना है ।[3]

---

* हिमालय की गोद में : आनंद बख्शी 2 अदालत : गुलशन बावरा
3 तीसरी कसम : शैलेन्द्र

हाथी - सांसारिक वैभव का, घोड़ा गति के आक्रामक रूप का और पैदल कालक्रम का प्रतीक है ।

7 प्राकृतिक प्रतीक : .. .. ..

प्रकृति के साथ मनुष्य का नैकट्य सम्बन्ध है अत: प्रकृति से विमुख कवि का कोई काव्यात्मक आस्तित्व नहीं रह जाता । सिने गीतों में बड़े पैमाने पर प्राकृतिक प्रतीक लिए गए हैं ।

धूल का एक बादल अलबेला
निकला हूँ अपने सफर में अकेला
छुप छुप देखूँ मैं दुनिया का मेला ।[1]

धूल का एक बादल - मानव इकाई का प्रतीक है ।

सफर के वक्त में पलक पे
मोतियों को तोलती
वो तुम न थी तो कौन थी ।[2]

मोती आँसू का प्रतीक है ।

तारों से सजके अपने सूरज से
देखो धरती चली मिलने[3]

सूरज प्रेमी और धरती प्रेमिका का प्रतीक है ।

---

1 जिस देश में गंगा बहती है : शैलेन्द्र
2 संगम : शैलेन्द्र
3 जल बिन मछली नृत्य बिन बिजली : मजरूह

8 मनोवैज्ञानिक प्रतीक :

मनोविश्लेषण विज्ञान के फलस्वरूप सिने गीतों में मनोवैज्ञानिक प्रतीक का प्रयोग किया गया है । इन प्रतीकों के प्रयोग का कारण यह है कि चेतन क्षणों में मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन असंभवसा हो जाता है और उसकी पूर्ति या तो स्वप्न जगत या कला जगत में करता है ।

सागर कितना मेरे पास है
मेरे जीवन में फिर भी प्यासा है
है प्यास बड़ी जीवन थोड़ा
अमानुस बना के छोड़ा । *

सागर : संसार की रागात्मक प्रवृत्तियों का प्रतीक है ।
प्यास : असन्तुष्टिका
अमानुस : पशु स्तर पर जीते हुए मानव का प्रतीक ।

दफा का लेके नाम वो धड़क रहे थे हर घड़ी
वो मेरे नेक नेक दिल तुम्हीं तो थे
जो मुस्कुराके रह गई
जहर की बन सुई गड़ी ।[2]

जहर की जब सुई गड़ी - विश्वासघात करने का प्रतीक है ।

चिंगारी कोई भड़के
तो सावन उसे बुझाए

---

* अमानुष : इंदीवर
2 संगम : शैलेन्द्र

सावन जो आग लगाए
उसे कौन बुझाए .... *

चिंगारी विरह और सावन मिलन का प्रतीक है ।

सिने गीतों में अधिकतर परम्परागत प्रतीकों का ही प्रयोग मिलता है । इसका कारण है ये कि नये प्रतीक प्रयोग रचना को दुरूह बना देते हैं और वह जनसाधारण के एक बड़े प्रतिशत को सहज ग्राह्यी नहीं होते । कहीं कहीं गीतकार प्रतीक के प्रयोग के लिए अन्वेषी हुआ लगता है और उसने बड़े सुन्दर प्रतीकों का गीत रचना में प्रयोग किया है । परम्परागत प्रतीकों के प्रयोग में भी मौलिकता की छाप कवि गीतकार ने सदैव छोड़ी है ।

......

---

* अमर प्रेम : आनंद बख्शी

अलंकार : .. .. :...

प्रास्ताविक : साठोत्तर सिने गीतों में काव्य का तत्व पूर्वकालीन सिने गीतों की अपेक्षा अधिक मुखर हो गया है । इसका कारण एक तो यह है कि साहित्यिक गीतकारों का प्रवेश सिने संगीत के क्षेत्र में अधिक हुआ । दूसरे संगीत को लय और तान के चमत्कारिक सौन्दर्य के साथ काव्य सौन्दर्य का समावेश करके गीत रचना को अधिक प्रभावशाली और चमत्कारपूर्ण बनाने की ओर गीतकार अधिक प्रेरित हुआ । इसी सौन्दर्य तात्त्विक अभियान में अलंकारों का विशेष प्रयोग भी आ जाता है । यह तो सच है कि गीतकार ने नवीन उपमानों की खोज अधिक नहीं की किन्तु पुराने उपमानों के आधार पर अभिव्यक्ति को नवीन भंगिमाये अवश्य लाई गई । इनका अध्ययन ही प्रस्तुत अध्याय में आयासित है ।

एक विशेष बात यह द्रष्टव्य है कि अलंकार प्रयोग के द्वारा गीतकार ने अर्थ को केवल सौन्दर्य प्रदान ही नहीं किया बल्कि दर्शक या पाठक के सन्दर्भ में रचना की अर्थवित्ता को भी बढ़ाया । अलंकार के सम्बन्ध में पन्त जी ने लिखा है – "अलंकार केवल वाणी के सजावट के लिये नहीं वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार है । भाषा की पुष्टि के लिये राग की परिपूर्णता के लिये, आवश्यक उपादान है । वे वाणी के आचार व्यवहार और राजनीति है, पृथक स्थितियों के पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न भिन्न चित्र है ।" *

यह कथन साठोत्तर सिने गीतों की अलंकार योजना में चरितार्थ होता है । काव्य के प्रमुख उपकरण के रूप में अलंकार संगीत कला के उपकारक होकर और संगीत अलंकार योजना का उपकारक होकर और संगीत अलंकार योजना का उपकारक होकर सहवर्ती बने हैं ।

<u>अलंकारीय :</u> .. .. ..

यह बात पूरे विश्वास के साथ कही जा सकती है कि सिने गीतों का वस्तु विधान प्रेम और सौन्दर्य के धागों से बुना हुआ है, प्रेम की विविध स्थितियाँ और मानसिकतायें सिने गीतों में बिम्बित मिलती है । इन्हीं स्थितियों के साथ सौन्दर्य की और विशेष रूप से नारी सौन्दर्य की भंगिमायें अनुस्यूत रहती है । कथा का केन्द्र ही प्रेम और सौन्दर्य का स्पर्श पाकर जीवन की परिधियों तक फैलता है । प्रेम और सौन्दर्य के समन्वित रूपाकारों को काव्य और

---

* सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव की भूमिका

संगीत की कलात्मक संगीत अर्पित हो जाती है । न जाने कितने बिम्ब प्रतीक और अलंकार सिने गीतों के कलात्मक अनुष्ठान को गतिशील सजीव और संगठित बनाते हैं । तात्पर्य यह कि सिने गीतों की प्रमुख अलंकारीय वस्तु प्रेम और सौन्दर्य से संबंधित है और नारी सौन्दर्य की प्रयुक्त उपमानों ने मानसिक जगत और वस्तु जगत में व्यापक बनाया है । अन्य वस्तु सूत्र सामान्य रूप से अलंकृत हुए हैं । पुरानी वस्तु को अलंकार प्रयोग नवीनता प्रदान करता है और पुराना अलंकार विधान वस्तु के सौन्दर्य से अनुप्राणित होता है ।

<u>आलंकारिक विशेषण :</u> ....

कुछ विशेषणों की रचना उपमान या रूपक की रचना के आधार पर हुई है । एक प्रकार से अप्रस्तुत विधान ही विशेषणों में परिणत हो गया है । नीचे इस *रचना* रचना की सूची प्रस्तुत है :-

उपमेय	उपमान	विशेषण
आँखें	गुलाब जैसी	गुलाबी *
सौन्दर्य सुरा	शराब	शराबी[2] (दिल)

---

* गुलाबी आँखें जो तेरी देखी
शराबी ये दिल हो गया (दो ट्रेन : आनंद बक्षी)

2 - वही -

उपमेय	उपमान	विशेषण
कोमल शरीर	रेशम	रेशमी *
जुल्फ़	रेशमी	रेशमी [2]
पलकें	नरगिस	नरगीसी[3]
गाल	गुलाब	गुलाबी [4]
पैर	चम्पा	चम्पई[5]
आखें	नरगिस	नरगिसी[6]

उपर्युक्त सूची के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जिसे गीतकार सीधा प्रस्तुत विधान न करके उसको विशेषण में परिणत करता है इस प्रकार भाषा की संरचना में अप्रस्तुत ● धुल जाता है । विशेषणों की रचना उपमान रूप संज्ञा के आधार पर हुई है । कभी इन विशेषणों के द्वारा विशेषण के प्रभाव को देखा जाता है और कभी सौन्दर्य की कवियों को प्रगल्भ बनाया जाता है ।

---

*.: सांवला रंग है मेरा रेशमी अंग है मेरा {रामपुर का लक्ष्मण}

2 क्या श्याम और सवेरा ये रेशमी जुल्फ़े
ये नरगिसी पलकें कहती है, आ मिल के महके {मजरूह :संतोषानन्द}

3 - वही -

4 मेरे चने की आंख शराबी
इसके देखो गाल गुलाबी {क्रान्ति : संतोषानन्द}

5 हसीन चम्पई पैरों को जबसे देखा है
{आज और कल : साहिर}

6 फिर मुझे नरगीसी आँखों का सहारा दे दे ।
{शकील : मेरे मेहबूब}

मानवीकरण :

मानवीकरण की प्रक्रिया मानवेत्तर उपकरणों पर मानवीय गुणों, नामों क्रियाओं विशेषणों आदि के आरोप करने से सम्पन्न होती है । आलोच्य युग के सिने गीतों में यह प्रक्रिया घटित हुई है । इसके द्वारा चेतना के विस्तार का मार्ग प्रशस्त हुआ है ।

मानवीकरण की प्रक्रिया में प्राय: क्रियाओं का उपयोग हुआ है - मानवेतर उपकरणों के साथ मानवीय क्रियाओं का संयोग मिलता है -

मानवेत्तर कर्ता	मानवीय क्रिया
मौज {लहर} *	पुकारा है १ *
बरखा	शोर {क्यों} मचाती है 2
इश्क	जगाये 3
बहार {ने}	लूटा {हमें}

अधिक चमत्कार वहाँ उत्पन्न होता है जहाँ मानवीय कृत क्रिया का कर्म भी मानवेत्तर उपकरण होता है । यह लम्बी संरचना एक प्रकार से रूपक की रचना को ग्रहण कर लेती है । नीचे इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत है ।

---

* आँखों में इशारा है,
  मौजों ने पुकारा है {जिंदगी और तूफान}

2 शोर क्यों मचाती है
  ये बरखा दीवानी {आनंद बक्षी : बचपन}

3 मुझे इश्क जगाये {शकील : मेरे महबूब}

4 लूटा हमें बहार ने {शमोंली : मजरूह}

क. ए हुस्न ज़रा जाग
तुझे इश्क जगाये *

ख. घायल कर दी जान
तेरे दो नैनों ने[2]

और भी लम्बी रचनायें मिलती है । एक रूपक लम्बी व्याकरणिक रचना के साथ गीत की निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है जो मानवीकरण के द्वारा पुष्ट है :-

तुम्हारी जुल्फोंसे खुशबू की भीख लेने को
झुकी झुकी सी घटायें बुला रही है तुम्हें [3]

विरोधाभास पूर्ण मानवीकृत रचना और भी चमत्कारपूर्ण हो जाती है । जैसे -

बागों को तो पतझड़ लूटे, लूटा हमें बहार ने
दुनिया मरती मौत से लेकिन हमारा हमको प्यार ने ।[4]

इस प्रकार के उदाहरण और भी जुटाये जा सकते हैं । यहाँ कुछ उदाहरणों के द्वारा प्रवृत्ति को स्पष्ट किया गया है । ऊपर के उदाहरणों में कर्ता, क्रिया और कर्म की मानवीकृत व्याकरणिक रचना दिखलाई पड़ती है । कभी-कभी विशेषण विशेष्य की रचना को

---

*	शकील बदायूनी	2	इज्जत : साहिर
3	आज और कल	:	साहिर
4	शर्मिली	:	मजरूह

मानवीकृत रूप दिया गया है । इस रचना में मानव या चेतन प्राणी के लिये युक्त विशेषणों का प्रयोग मानवेतर या अचेतन उपकरणों के लिये किया गया है । जैसे :

मानवीय विशेषण	मानवेत्तर विशेष्य
उदास *	राहों *
आवारा[2]	मौसम[2]
दीवानी[3]	बरखा[3] (वर्षा)
सिसकता[4]	साज[4]
मायूस[5]	

रचना की यह प्रक्रिया विशेषण विपर्यय की प्रक्रिया के अन्तर्गत भी रखी जा सकती है । गीत की [illegible] आत्मा का सचेतन विस्तार इस प्रक्रिया के द्वारा होता है । मानवोचित गुणों के अध्यारोपण के द्वारा मानवेतर उपकरण जीते जागते दिखाई पड़ते हैं । साथ ही अमूर्त भावों को कभी-कभी ऐन्द्रिय बिम्ब अभिव्यक्ति करते हैं । जहाँ तक इस रचना के अर्थ का प्रश्न है वह घूम फिर कर वह मानव पर ही आता है ।

---

* यह जिन्दगी जो अबतक भी तेरी निगाहों में
चली है आज भटकने वफा की राहों में । (नील कमल : साहिर)

2 चल भाग चले दोनों मौसम भी आवारा है ।
(जिंदगी और तूफान)

3 शोर क्यों मचाती है ये बरखा दीवानी (बचपन : आनंद बक्षी)

4 दर्द से डूबा गीतन दे गमका सिसकता साज न दे (आदमी : शकील)

5 आईना देखता है जब मुझको एक मायूस सा ख्याल लिये (सीमा : गुलजार)

उपमा :

उपमा सारे अलंकार विधान की प्राण मानी जाती है। इसके द्वारा प्रस्तुत और अप्रस्तुत संदर्भ एक सम्बन्ध वाचक कड़ी से जुड़कर एक जैसे हो जाते हैं। उपमा की सबसे सरल रचना एक उपमान और एक उपमेय के युग्म में घटित होती है जैसे - "चंदन सा बदन"* इस रचना में "है" क्रिया छुपी हुई है। कभी कभी यह क्रिया प्रकट भी रहती है जैसे "मैं इक किरण हूँ"[2] तथा "चलती पवन हूँ।[3] और भी दो उपमानों और उपमेयों की रचना साथ-साथ हुई है। इस रचना में मालोपमा की झलक दिखलाई दे जाती है। जैसे:-

मेरी कनक छड़ी सी कमर

x x x

मेरा सोने जैसा रंग[4]

इसी रचना में कभी-कभी गतिशीलता लाई जाती है।

उपमेय एवं उपमान एक गति सूत्र में समन्वित हो जाते हैं। जैसे :-

क. लहरायें तेरा आँचल सावन के फूलों जैसा
दिल ले गया है तेरा रूप गोरी
सरसों के फूलों जैसा [5]

ख. तू जो चलती है छोटे से आँगन में
चमन सा डोलता है।[6]

---

* (इन्दीवर : सरस्वतिचन्द्र) 2 तथा 3 वर्मा मलिक : सावन भादो

4 फिल्म : रानी और लालपरी

5 आनंद बक्शी : राजा और रंक

6 मजरूह : वापस

कभी कभी मन या हृदय गतिशील दिखलायें जाते हैं इसकी रचना विपर्यय की होती है इसकी तुलना स्थूल उपकरण की क्रिया से की जाती है ।

जियरा रे झूमे ऐसे जैसे
वन में नाचे मोर *

इस प्रकार की प्रक्रिया में कभी कभी अमूर्त मानसिकता के प्रभाव की बात भी गूंथ दी जाती है । जैसे :-

वो भूली दोस्ता लो फिर याद आ गई
नज़र के सामने घटा सी छा गई ।

प्रेमी और प्रेमिका के सम्बन्ध को व्यक्त करनेवाला दोहरा उपमा विधान भी कहीं कहीं मिलता है । जैसे :-

तू सूरज मैं सूरजमुखी हूँ पिया
न देखूँ तुझे तो न लागें जिया [2]

इस रचना में प्रश्न की रचना जोड़कर विधान को अधिक मुखर और संवादी बना दिया जाता है । जैसे :-

सोने के गहने क्यों तूने पहने,
काया तेरी खुद कंचन है ।[3]

इस प्रकार साठोत्तर फिल्मी गीतकारों ने उपमा की संरचना के द्वारा

---

*	आनंद बक्षी	:	मिलन
2	इंदीवर	:	हिमालय की गोद में
3	इंदीवर	:	रेशम की डोरी

गीतों में सुरुचि का संचार किया है । सौन्दर्य बोध और अभिरुचि की परिष्कार करनेवाली उपमाओं की रचना बे गीतों के साहित्यिक आस्वाद में सहायक बनती है ।

स्पक :

स्पक सिनेगीत का सबसे अधिक लोकप्रिय अलंकार है । स्पक की रचना भी कभी लघु और कभी दीर्घ होती है । छोटी रचना में ऐसे प्रयोग मिलते हैं प्यार की डोर,* तिरछी नजर की कटारी[2], शाम की दुलहन[3], जिंदगी रूपी कटी पतंग [4], प्यार की भिक्षा[5], सपनों की बारात [6], सपनों की महफिल[7], यादों की दुल्हन [8], गीतों की डोली ।[9]

---

* प्यार की डोर से बंध जायेगा : शैलेन्द्र : प्रोफेसर

2 तिरछी नजर की कटारियाँ : आनंद : लफंगे

3 शाम की दुल्हन बदन चुराये : योगेश : फिल्म आनंद

4 मेरी जिंदगी है क्या एक कटी पतंग है : आनंद बक्षी : कटी पतंग

5 तू डाल दे भिक्षा प्यार की : एम.जी. हसरत : मेरा जीवन

6 सुन्दर सपनों की बारातें : आनंद बक्षी : जूली

7 नैनों ने सपनों की महफिल सजाई है : : मजरूह : तलाश

8 यादों को को तेरी में दुल्हन बनाकर : हसरत : ब्रह्मचारी

9 मुझे गीतों की डोली सजाने दो : आनंद बक्षी : सरगम

कुछ बड़ी रचनाओं में दो से अधिक रूपकों की श्रृंखला सम्मूर्तन की प्रविधि बन जाती है। उदाहरण के लिये नायिका के के लिये एक साथ तीन रूपक नियोजित किये गये :

सुन्दरता की ओ शहजादी
हुस्न की देवी, ए मूरत खामोशी की

- आनंद बक्षी : धरम करम

इसी प्रकार की रचना यह है :

मेरे ख्वाबों के महल, मेरे सपनों के नगर
पी लिया जिनके लिए मैंने जीवन का ज़हर

- शैलेन्द्र : दूर गगन की छांव में

सबसे लम्बी रचना सांग रूपक की होती है। एक दूजा का सांग रूपक इस प्रकार रचा गया है :

प्यार तेरा कुमकुम है, बाहें तेरी माला
प्राण मेरा पुजारी, तन है शिवाला

- नीरज : अर्चना

यह कल्पना कवि गीतकार नीरज की है। कमर जलालाबादी ने एक विवाह का सांग रूपक इस प्रकार रचना है -

सारा गगन मण्डप है,
सारा जग बाराती
मन के फेरे, सच्चे हैं सब साथी

- कमर जलालाबादी : होली आई रे

आनंद बक्षी की रचना में एक शराबखाना ही उतर आया है । यह प्रेमिका की आँखों में है । इसकी शराब पीकर शराबी होने की आशंका है । *

गीतकार संतोषानंद ने रिश्तों की मेहंदी से दुल्हन को सजाने का रूपक बाँधा है ।[2]

एम॰जी॰हसरत ने कल्पना की है कि जीवन एक कागज़ है उसपर जो लिखा था वह आँसुओं से धुल गया ।[3]

आनंद बक्षी ने ग़मरूपी किताब में खुशी का फसाना ढूंढने की बात कही है :

ज़मानेवालों किताबे ग़म में
खुशी का कोई फसाना ढूंढो
- आनंद बक्षी/जीने की राह

---

* आंखों की इस गली में
है इक शराब खाना
मैं इस तरफ गया तो
हो जाऊंगा शराबी
- आनंद बक्षी/आसपास

2 रिश्तों की मेहंदी ले आओ
दुल्हन सा मुझे सजाओ
- संतोषानंद/क्रान्ति

3 मेरा जीवन कोरा कागज कोरा ही रह गया ।
- एम॰जी॰ हसरत : कोरा कागज

गुलज़ार ने ख्यालों के आँगन में सपनों के दीप जलायें -

मेरे ख्यालों के आँगन में
कोई सपनों के दीप जलाये

- गुलज़ार/फिल्म : आनंद

शैलेन्द्र ने पुराने उपमानों का एक नया रूपक बुना है -

इन दो नैनों के सागर में
कोई दिल की नैया डुबोता है

- शैलेन्द्र/जब प्यार किसी से होता है

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि रूपक के क्षेत्र में सिने गीतकार सबसे अधिक अन्वेषी और प्रयोगशील है कुछ प्रयोग तो निश्चित रूप से अछूते है । गीतकार कवि कभी बिम्ब के आधार पर और कभी उपमेय उपमान के नवीन सम्बन्धों के आधार पर रूपक की रचना को सजीव करता है ।

<u>उत्प्रेक्षा :</u> ....

उत्प्रेक्षा की भूमिका में कल्पना का उन्मुक्त विहार रहता है । प्रस्तुत का कथन करके "मानो" की रचना कल्पना के द्वार को उन्मुक्त कर देती है । इसके पश्चात अप्रस्तुत की विलक्षण रचना में कवि की प्रतिभा लग जाती है । इसकी भी छोटी बड़ी रचनायें मिलती है । छोटी रचनाओं में संक्षिप्ति का सौन्दर्य निखर उठता है । नायिका की जुल्फों में मानों खुशबू ने डेरा डाल दिया है । *

---

* तेरी जुल्फों में खुशबु का डेरा

- [इन्दीवर/पारस]

यह कल्पना इंदीवर की है । आनंद बक्षी की नायिका शैशव से यौवन में प्रविष्ट हो गयी है । "मानो" गुल गुलिस्तान बन गया हो । * हसरत जयपुरी की नज़र नायिका के कानों के बालों पर पड़ी "मानो" ये दोनों चंदा सूरज हों ।[2]

इन उदाहरणों में उपमानों की खोज और उनके नियोजन क में कवि की कल्पनर शीलता स्पष्ट है ।

उत्प्रेक्षा को लम्बी रचनायें भी कुछ गीतकारों ने की है । इस प्रवृत्ति कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं ।

हसरत जयपुरी की एक रचना लीजिये -

आ गये आपके कदमों पें उतरकर बादल
बन गई मस्त घटा आपके सर का आंचल

- हसरत/शिकार

मजरूह ने भी नायिका के रूप को उत्प्रेक्षा की एक लम्बी रचना में बांधा है -

चेहरे में घुल गया है, हँसी चांदनी का नूर
आखों में है चमन की जवां रात का सुरूर

- मजरूह/भारती

---

* आज मैं जवान हो गई हूं
गुलसे गुलिस्तान हो गई हूं ।

- आनंद बक्षी/मैं सुन्दर हूं

2 चंदा सूरज दोनों मोरे कानों के है बाले

- हसरत/जब प्यार किसी से होता है ।

कश्मीर की कली के एक गीत में यह रचना मिलती है ।

हर सुबह किरण की लाली
है रंग तेरे गालों का
हर शाम की चादर काली
साया है तेरे बालों का

- एस.एच.बिहारी/कश्मीर की कली

<u>विभावना :</u> ....

रूपकातिशयोक्ति का शिल्प कारण और कार्य पर आधारित होता है । कभी कोई चीज अकारण ही घटित होती है और कभी कारण और कार्य के बीच का सम्बन्ध कल्पना-जन्य होता है । उदाहरण के लिए इस रचना को लिया जा सकता है :-

छुप गये सारे नज़ारे ओय क्या बात हो गई
तूने काजल लगाया दिन में रात हो गई ।

- आनंद बक्षी /दो रास्ते

इस उदाहरण में दिन में अँधेरा हो जाने का कारण काजल लगाना कल्पित किया गया है । विभावना की रचना अतिशयोक्ति से पुष्ट हो रही है । इसी प्रकार बिना कारण के कार्य होने की बात इस रचना में कही गई है ।

नज़र मिली भी न थी और उनको देख लिया
ज़ुबाँ खुली भी न थी और बात भी कर ली -

- कैफ़ी आज़मी/अनोखी रात

घटायें छा रही है, झुक रही है । वे नायिका के केशों से सुगन्ध की भीख लेने को झुकी आ रही है :-

तुम्हारी जुल्फों से खुशबू की भीख लेने को
झुकी झुकी घटायें बुला रहीं है मुझे

- साहिर/आज और कल

इस रचना में कारण की कल्पना की गई है और यह उत्प्रेक्षा से पुष्ट है ।

प्रेम में नारी सलज्ज हो उठती है । एक पेड़ से लिपटी हुई बेल को देखकर आज वह लज्जित हो रही है । यहाँ असली कारण का प्रतीकात्मक संस्थापन हुआ है । पंक्तियाँ ये हैं :-

पेड़ से लिपटी बेल जो देखूँ
लाज से भर मर जाऊँ

- इन्द्रजीत सिंह तुलान/
चोर मचाये शोर

अंधेरा होने पर गीतकार कवि कल्पना करता है कि चेहरे पे जुल्फ़ आने से ऐसा हुआ है । यहाँ पर रूपक से मुख चाँद का प्रतीक है और केश अंधेरे का इसलिये कवि नायिका से कहता है ।

जुल्फों को हटा ले चेहरे से
थोड़ा सा उजाला होने दे
- एस.एच.बिहारी/सावन की घटा

विभावना शिल्प चमत्कार मूलक होता है । इसमें प्रचालित कार्यकारण रूढ़ियों का तिरस्कारकरके कवि कल्पना स्वच्छन्द विहार करती है । नायिका के रूप सौन्दर्य के चित्रण में प्राय इस शिल्प का प्रयोग हुआ है ।

रूपकातिशयोक्ति : ....

रूपकातिशयोक्ति की योजना वहाँ होती है जहाँ उपमेय लुप्त रहता व केवल उपमान का प्रयोग रहता है और उसके द्वारा उपमेय की ध्वनि निकलती है । इस अलंकार शिल्प का भी प्रचुर प्रयोग साठोत्तर सिने गीतों में हुआ है । कभी-कभी उपमान प्रतीक का रूप ग्रहण करने लगता है । नीचे एक संक्षिप्त सूची प्रस्तुत है :

	उपमान	संभावित उपमेय	संदर्भ संकेत
1.	एक बुझती हुई शमा का परवाना	अभागा प्रेमी	आनंद बक्षी/मेरा गांव मेरा देश
2.	अंगारा	मुसीबतें और कठिनाइयां	मजरूह/हम किसी से कम नहीं
3.	शोला या आग	विरह	
4.	खिज़ां (पतझर)	निराश स्थितियां	आनंद बक्षी/ दो रास्ते
5.	बहार (बसंत)	आशा और आनंद	-वही-
6.	(पांव के) कांटे	पीड़ायें	मजरूह/बहारों के सपने
7.	फूल	खुशियां	मजरूह/सोना चांदी
8.	तूफान	भावावेश	हसरत/नादान
9.	गुल्शन	जीवन	कमर जलालाबादी/ हिमालय से ऊंचा
10.	(दो) लाश	रूढ़ग्रस्त गतिहीन व्यक्ति	रामवतार त्यागी/ जिंदगी और तूफान

11. आंचल	स्नेह	नक्श लायलपुरी/चेतना
12. अमृत	सौन्दर्य	इन्दीवर/कुर्बानी
13. भ्रमर	प्रेमी	हसरत/नादान
14. कली	प्रेमिका	हसरत/नादान

इन उदाहरणों में उपमेय की व्यंजना कभी संदर्भ से होती है और कभी रूढ़ि से वैसे ऊपर लिखे हुए सभी उपमान परम्परित हैं। केवल गीत का संदर्भ और उसका भावजगत इन रूढ़ियों को जीवन दान देते हैं।

अन्य अलंकार रचनायें :

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य अलंकारों की सामान्य रचनायें हुई हैं। उदाहरण के लिए अतिशयोक्ति की रचना को लिया जा सकता है। बर्फ के फर्श पर चलने पर भी पैर गर्मी से तपे जा रहे हैं - गर्मी है प्रेम की -

आंच देने लगा कदमों के तले
बर्फ का फर्श
आज जाना कि मोहब्बत में है गर्मी कितनी

- साहिर/वक्त

साहिर के इस विधान के समान ही हसरत ने दो कदम आगे बढ़कर अतिशयोक्ति की एक रचना की है।

पड़ जाय तुमपर धूप तो
संवलाये गोरा तन
मखमल पे तुम चलो तो
छिले पांव गुलबदन

-हसरत/एक दिल सौ अफसाने

कसौटी के एक गीत में एक हल्के हास्य से लिपटी हुई अतिशयोक्ति की झलक देखी जा सकती है ।

छनकी जो तेरी पायल
देखा तो सात मरे और सतरह घायल

– कसौटी

कहने की आवश्यकता नहीं कि अतिशयोक्ति का रूप अधिकतर उर्दू और फारसी की शेरो शायरी से प्रभावित है ।

इसी प्रकार संदेह की रचना कहीं कहीं मिलती है । संदेह में उपमान और उपमेय के बीच अनिश्चितता का भाव रहता है । एक उदाहरण इस प्रकार है :

चल है कि मौज की रवानी
ये जुल्फ़ है कि रात की कहानी
होंठ है कि आइनें केवल के

–आनंद बक्षी/ अब्दुल्ला

सामान्य रूप से शब्दालंकारों का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है । अपवाद रूप में कुछ प्रयोग मिल जाते हैं उदाहरण के यमक की यह रचना ली जा सकती है ।

और फिरकीवाली तू कल फिर आना
नहीं फिर जाना तू अपनी जुबान से

–आनंद बक्षी/राजा और रंक

<u>नये उपमानों की खोज</u> : जैसा कि पहले देखा जा चुका है कि कवि गीतकारों ने प्रायः रूढ़ उपमानों का प्रयोग किया है फिर भी उसकी अन्वेषी वृत्ति कहीं कहीं सक्रिय मिलती है। नये उपमानों से उपमेयों को विभूषित किया गया है। नीचे नये उपमानों की एक सूची प्रस्तुत है।

उपमेय	उपमान	संदर्भ संकेत
गाल	कटोरे	मजरूह/घर संसार
नयन	सुरमेदान	
हुस्न	हथकड़ी	इन्दीवर/ कसमकस
नयन	भूलभुलैया	आनंद/ बाबी
होंठ [रूपोकली]	प्यार की गज़ल	हसरत/ आरज़ू
रूप की परछाई	अजंता की दीवारें	हसरत/ अर्चना
मुख	समुद्र में चमकता सवेरा	इन्दीवर/ पारस

एक रूपक की रचना नये उपमानों के साथ इस प्रकार हुई है -

कफ़न से ढक के बैठे हैं
हम सपनों की लाशों को

- प्रदीप / सम्बन्ध

अलंकारों का ऐसा विशद शिल्प 1960 से पूर्व के सिने गीतों में विकसित नहीं हुआ था इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उनमें अलंकारों का नितान्त अभाव है बल्कि यह कि अलंकार शिल्प अनेक प्रक्रियाओं और प्रविधियों में ढलकर, पलकर, प्रौढ़ बना है। इस शिल्प की तीन प्रमुख विशेषतायें है - कल्पनाशीलता, प्रयोगशीलता एवं अन्वेषण।

खण्ड - पांच : उपसंहार

उपसंहार

से सिने-निर्माताओं का दिशा-निर्देशन भी होगा और कला का स्पष्ट बोध भी ।

अब वह समय चला गया है जब सिने गीतों को साहित्य के क्षेत्र में परिगणित करना विवादास्पद था । अब प्रायः सभी स्वीकारने लगे हैं कि पटकथा और सिने गीत को शुद्ध साहित्य की कोटि में रखा जा सकता है और उसी रूप में यह विधायें अध्येय और अनुसंधेय भी होजा सकती है । यह दोनों अनुसंधान के विषय बने हैं किन्तु इनके अध्ययन की परम्परा को अभी पूर्ण रूप से स्थापित होना है । धीरे-धीरे यह परम्परा बनती भी जा रही है ।

चलचित्र सम्बन्धी साहित्य और कला का विकास युग और परिवेश के साथ हुआ है । यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो यह सिद्ध हो जाता है कि सिने गीतों के विकास के पड़ाव आधुनिक हिन्दी विकास के पड़ावों से भिन्न नहीं है । उनके वस्तु और शिल्प में जो विकास हुआ है वह युग से कटा हुआ नहीं है । एक विशेष बात यह भी द्रष्टव्य है कि सिने गीतों के वस्तु और शिल्प के विकास में अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू तीनों ही शैलियों का योगदान रहा है । इस विकास को साहित्य से जोड़ने वाला सूत्र भी है । उर्दू और हिन्दी के प्रसिद्ध आधुनिक कवि अपना प्रातिभ योगदान इस विकास यात्रा को दे रहे हैं । शुद्ध सिने-गीतकार भी साहित्यिक संस्कार ग्रहण कर रहे हैं और साहित्यिक गीतकारों का प्रवेश सिने-संसार में हो रहा है । जहाँ यह विकास गज़ल और गीत का संगम उपस्थित कर रहा है वहाँ लोक गीतों की धारा इस संगम को त्रिवेणी में बदल देती है ।

सिने गीतों के विकास के काल खण्ड भी है । सुधारवादी चेतना, स्वच्छन्दतावादी चेतना, राष्ट्रीय चेतना और समाजवादी

चेतना जिस प्रकार आधुनिक युग के खण्डों का निर्धारण करती है, उसी प्रकार का विभाजन सिने गीतों का भी किया जा सकता है। प्रेम और सौन्दर्य के गीतों में छायावादी वस्तुबोधी और रोमांसवादी स्पर्श दिखाई पड़ते हैं। राष्ट्रीय भावना का इतिहास भी सिने गीतों को प्रेरणा देता है। तात्पर्य यह है कि इस कला की विकास यात्रा युग के साथ कदम मिलाकर चली है। यहाँ तक कि प्रेम और सौन्दर्य के तत्त्व को भी युवा मानस के वर्तमान विश्लेषण से जोड़ा जा सकता है।

जब यह बात कही जाती है कि युग के स्पन्दन सिने गीतों में समायें हैं तो हमारी दृष्टि में युग-परिवेश मूर्तिमान हो जाता है। विशेष रूप से प्रस्तुत प्रबन्ध में साठोत्तर युग परिवेश को लिया गया है। इस काल खण्ड की भूमिका में स्वतन्त्रता, स्वप्नलोक, सम्मोहन और स्वप्नभंग के तत्त्व हैं। प्रस्तुत रूप से देश पर हुए विदेशी आक्रमणों पर दृष्टि केन्द्रित होती है। इसी युग में आपात-कालीन स्थिति घटित होती है और इसी साथ में समाज के यथार्थ के प्रति कवि और गीतकार की दृष्टि विशेष रूप से जाती है। समाज के जलते हुए प्रश्नों एवं समस्याओं को उचित आदर देने के लिये साहित्यिक बेचैन हो जाता है। यथार्थ इतना भयावह और जीवन इतना जटिल हो जाता है कि साहित्य को नये मुहावरे का अनुसंधान करना पड़ता है जो युग को वाणी दे सके। ज्यों ज्यों युग आगे बढ़ता है त्यों त्यों आम आदमी की लड़ाई तेज होती जाती है। अर्थ व्यवस्था कुछ ऐसी विकृत हो जाती है कि उत्पादन और वितरण दोनों ही वर्ग केन्द्रित हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि इतना भयावह यथार्थ सम्भवत: इतिहास में पहले कभी घटित नहीं हुआ था। इसी काल खण्ड में लक्ष्य-हीन दिशाधारा संत्रस्त और भ्रमित युवा पीढ़ियाँ जन्म लेती हैं। जिनका कुछ आभास सिने कथा की पात्र कल्पना में देखा जा सकता है।

आश्चर्य यह है कि इस सारे परिवेश से सिने-गीत स्पष्ट रूप से नहीं जुड़ता किन्तु गहराई से देखने पर युग-परिवेश और सिने गीत का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। प्रेम और सौन्दर्य की गीतात्मक अनुभूतियों को देखकर यह सन्देह सबसे अधिक होता है कि सम्भवतः सिने गीत युग से कट कर चल रहा है किन्तु प्रेम और सौन्दर्य मूलक गीत वस्तु को ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि चाहे इस वस्तु को शिल्प-सज्जा पुरानी रूढ़ियों को लेकर चल रही हों फिर भी उसमें एक द्वन्द स्पष्ट रूप से लक्षित है, कभी काम और प्रेम सम्बन्धी क्रान्ति सिर उठाती मिलती है। कभी कुण्ठा की कटुता गीत के अन्तराल में घुल जाती है और कभी मनोविश्लेषण का पल्ला पकड़ा जाता है। इसके अतिरिक्त समकालीन पीढ़ी का कामाचार वस्तु के साथ आकर जुड़ जाता है। तात्पर्य यह है कि काम सम्बन्धी गीत-वस्तु नव संस्कार की प्रक्रिया में है।

साठोत्तर सिने गीतों की गीतवस्तु की सामाजिक चेतना उसकी पूर्ववर्ती गीत वस्तुओं से अलगाती है। सामाजिक समस्याओं और सामाजिक यथार्थ की जितनी अभिव्यक्तियाँ साठोत्तर गीतों में मिली है उतनी पहले के गीतों में नहीं दिखलाई पड़ती।

सन् 1960 के बाद सामाजिक यथार्थ और जीवन राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय विचारधाराओं को लेकर उपस्थित होता है जो जीवन दर्शन पश्चिम में बहुत पहले ही विकसित हो गये थे उनका प्रभाव गीत वस्तु सम्बन्धी दृष्टिकोण को प्रभावित करने लगा है, इनमें अस्तित्ववाद, अतियथार्थवाद और मार्क्सवाद जैसे दर्शन सम्मिलित है। सिने गीतकार को वस्तु चयन के समय यह दृष्टियाँ प्रभावित करती है। एक और आर्थिक शोषण के नये रूप विकसित होकर आम आदमी के जीवन को कुरूप और भौंडा बना देते हैं। अलगाव संत्रास, बेकारी,

भ्रष्टाचार, भुखमरी, जैसी वस्तु स्थितियाँ गीत वस्तु में प्रवेश पाने के लिये मचल उठती है । इस प्रकार साठोत्तर हिन्दी गीत का वस्तुगत विस्तार बहुत अधिक होता है ।

जहाँ तक शिल्प का सम्बन्ध है, उसमें विकास थोड़ा कम होता है । गीत शिल्प की दृष्टि से गज़ल की लोकप्रियता बढ़ती है और लोकगीत की प्रविधियों का प्रयोग भी लोकप्रिय होता है । विशेष रूप से लोक धुन का प्रयोग दृष्टव्य है । होटलों और क्लबों के दृश्य पाश्चात्य धुनों से भर जाते हैं । वातावरण "डिस्कोमय" हो जाता है । कभी कभी इनका मिश्रण नवीन शिल्प रूप को जन्म देता है

भाषा-शिल्प में स्पष्ट विकास दिखलायी पड़ता है । सबसे पहली बात यह है कि बोलचाल की भाषा का आकर्षण बढ़ता है । बोलचाल की भाषा की प्रकृति भी मिश्रित भाषा की होती है । मिश्रण में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग मध्यवर्गीय भाषा को प्रभावित करता है । आम बोलचाल का साहित्य में प्रयोग आज की एक विशेष प्रकृति है बल्कि यह एक आन्दोलन का रूप ग्रहण करता जा रहा है । बिम्ब और प्रतीक विधान कुछ अधिक साहित्यिक हुआ है । अलंकार के प्रयोग में वैचित्र्य और चमत्कार के तत्त्व बढ़े हैं । छंद की स्पष्ट पहचान कठिन हो गयी है । छंद के स्थान पर शुद्धलय तत्त्व प्रमुख हो गया है ।

ਪਰਿਸ਼ਿਸ਼ਟ

परिशिष्ट - 1

शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त गीतों के फिल्मों की सूची

अपना देश	..	अन्नदाता
अनपढ़	..	अक्लमंद
अनामिका	..	अमीर गरीब
अनोखी रात	..	अंजान है कोई
अमानत	..	आशिक
अमर-प्रेम	..	आपकी कसम
अमानुष	..	आन मिलो सजना
अहसास	..	अमन
अनुराग	..	आवारा
अनहोनी	..	आरती
अजनबी	..	आंसू और मुस्कान
अब क्या होगा	..	आक्रमण
अलीबाबा और चालीस चोर		आँखें
अदालत	..	आलिंगन
अर्चना	..	आंगन कली
अब्दुल्ला	..	आज का महात्मा
अपना घर	..	आविष्कार
अंदाज	..	आंधी
अनजान राहें	..	आसपास
अभिमान	..	आराधना
अमर-अकबर-एंथोनी	..	आनंद

आदमी और इंसान	..	कहानी किस्मत की
आज और कल	..	कटी पतंग
आप बीती	..	कशमकश
आदमी	..	कभी कभी
आबरू	..	कर्ज़
आरज़ू	..	कराटे
आपके ख़ातिर	..	काला सोना
इश्क-इश्क	..	काजल
इज्ज़त	..	कश्मीर की कली
ईमान-धर्म	..	क्रान्ति
उपकार	..	काम शास्त्र
उस्तादों के उस्ताद	..	किनारे किनारे
उपासना	..	कुर्बानी
उमराव जान	..	कोरा कागज
उलझन	..	कैद
एक महल हो सपनों का	..	
एक मुट्ठी आसमान	..	खानदान
एक दूजे के लिये	..	खामोशी
एक बार मुस्कुरा दो	..	खिलौना
एक सपेरा एक लुटेरा	..	खून पसीना
एक दिल सौ अफ़साने	..	खुदा कसम
एक सलोना दो दीवाने	..	खुद्दार
औलाद	..	खेल खेल में
कसौटी	..	गंवार
कन्यादान	..	गमन
कच्चे धागे	..	गज़ल

गंगा जमुना	.	छोटी बहन
गंगा तेरा पानी अमृत	..	छोटा भाई
गाईड	..	छुपा रूस्तुम
गीता मेरा नाम	..	छोटी सी बात
गुनाहों का देवता	..	छैला बाबू
गुमराह	..	
गूंज उठी शहनाई	..	ज्वैल थीफ
गुमनाम	..	जब प्यार किसी से होता है
गेम्बलर	..	जंगल में मंगल
गोदान	..	जल बिन मछली नृत्य बिन बिजली
गोल्ड मेडल	..	जमीर
गोपी	..	जंजीर
गौतम गोविन्दा	..	ज्योति
घरौंदा	..	जानवर
घटना	..	जानो मेरा नाम
घर संसार	..	जानेमन
घूंघट	..	जिन्दगी और तूफान
चंदन का पलना	..	जिद्दी
चलो सिपाही चलो	..	जीवन संग्राम
चलते चलते	..	जुआरी
चाचा भतीजा	..	जूली
चार दिल चार राहें	..	जोशीला
चिराग कहाँ रोशनी कहाँ	..	जौहर महमूद इन गोवा
चित्रलेखा	..	जौहर इन काश्मीर
चोर मचाये शोर		

झील के उस पार	..	पुजारीन
झुक गया आसमान	..	पुतली बाई
पहचान	..	फकीरा
प्यार का बन्धन	..	फरिश्ता या कातिल
प्यार किये जा	..	फ्री लव
पती पत्नी और वो	..	फूल और पत्थर
पत्थर के सनम	..	फूल बने अंगारे
पतंगा	..	फौजी
परछाइयाँ	..	बर्निंग ट्रेन
प्यार का सागर	..	बरसात
प्यार की प्यास	..	बन्धन
प्रतीक्षा	..	बरसात की एक रात
पाकीजा	..	बहारों के सपने
पारसमणी	..	बचपन
पारस	..	बहुरानी
प्रान्त	..	बंदिनी
प्रिया	..	ब्लैक मैल
प्रीतम	..	बालक
प्रेम नगर	..	बीवी
प्रेम पुजारी	..	बिन्दिया
प्रेम रोग	..	बिरादरी
प्रेम कहानी	..	बीबी ओ बीबी
पैसे की गुड़िया	..	बीबी और मकान
पैसा या प्यार	..	बुड्ढा मिल गया
पुष्पांजलि	..	बुलेट
पूरब पश्चिम	..	बुनियाद

बे दर्द ज़माना क्या जाने	..	मेरा घर मेरे बच्चे
भरोसा	..	मेरा जीवन
भाई हो तो ऐसा	..	मेरा गाँव मेरा देश
भूल भैला	..	मेरी सूरत तेरी आँखें
भोला भाला	..	मुक्ति
मदर इन्डिया	..	मुग़ले आज़म
ममता	..	मुकद्दर का सिकन्दर
मनचली	..	मुझे जीने दो
महबूबा	..	मौसम
मन मेरा तन तेरा	..	मैं सुन्दर हूँ
मन का मीत	..	तपस्या
मंझली दीदी	..	तमन्ना
महबूब की मेंहदी	..	तलाश
मानवता	..	तीसरी कसम
माई बाप	..	तीन चोर
माटी मेरे देश की	..	तुम्हारी कसम
मिलन	..	तेरे मेरे सपने
मिलाप	..	दस लाख
मिली	..	दस नम्बरी
मेरे महबूब	..	दादी माँ
मेरे लाल	..	दाग
मेरा साया	..	दिल्लगी
मेम साब	..	दिल भी तेरा हम भी तेरे
मेरा नाम जोकर	..	दो ट्रेन
मेरे अपने	..	दिल ही तो है
मेरे सनम	..	दिल और मोहब्बत

दिल की राहें .. नमक हलाल
दिल एक मंदिर .. नमस्ते जी
दुनिया का मेला .. नई उमर की नई फसल
दूर गगन की छांव में .. नाच उठा संसार
दुनियां .. नादान
दुल्हन .. निर्दोष
दुश्मन .. निकाह
देश प्रेमी .. निरिमा
दो बदन .. नींद हमारी ख्वाब तुम्हारे
दोस्त .. नील कमल
दो रास्ते .. नैना
दोस्ती .. यह जिन्दगी कितनी हसीन है
दो चोर .. यह गुलिस्तां हमारा
दो मासूम .. यादगार
दो जासूस .. रजनी गंधा
दो राह .. रफ्तार
धड़कन .. रजिया
धरती .. राजा रानी
धर्मपुत्र .. रामपुर का लक्ष्मण
धर्म करम .. राजा और रंक
धर्मात्मा .. राखी और हथकड़ी
धरती कहे पुकार के .. रानी और लालपरी
धर्म कांटा .. राम और श्याम
नया रास्ता .. रोटी कपड़ा और मकान
नया नशा .. रेशम की डोरी
नसीब
नसबंदी

लव स्टोरी	..	सफर
ललकार	..	स्वयंवर
लगन	..	सत्यकाम
लक्ष्मी	..	संघर्ष
लम्बे हाथ	..	सत्यम शिवम सुन्दरम
लावारिस	..	ससुराल
लाखों में एक	..	सरस्वती चंद्र
लोफर	..	संतोषी मां
वक्त	..	सती सावित्री
वह कौन थी	..	सफेद
वतन की आबरू	..	संत ज्ञानेश्वर
वापस	..	सन्यासी
वारन्ट	..	सड़क
वासना	..	सावन भादों
विधाता	..	सावन को आने दो
शर्मिली	..	सास भी कभी बहू थी
शबनम	..	साहब बीबी गुलाम
शागिर्द	..	सोने के हाथ
शोले	..	सौतन
शेर दिल	..	सोहनी महीवाल
शोर	..	सूरज और चंदा
सम्बन्ध	..	सिकन्दरे आज़म
सच्चा झूठा	..	सवेरा
संतान	..	सोना चांदी
सबसे बड़ा रुपैया	..	हरे राम हरे कृष्ण
सरगम	..	हमजोली

हमराज	..	हंसते ज़ख्म
हम दोनों	..	हिमालय की गोद में
हम सब उस्ताद हैं	..	हीरा
हथकड़ी	..	हीर रांझा
हीरा पन्ना	..	हिमालय से ऊंचा
हंगामा	..	हिन्दुस्तान की कसम
हम किसी से कम नहीं	..	हिमालय की गोद में
हरियाली और रास्ता		
हम एक हैं		
हम हिन्दुस्तानी		
हरिश्चन्द्र तारामती		
हवस		
[illegible]	....	....

परिशिष्ट - 2

शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त गीतकारों की सूची

अनजान	..	देव कोहली
असद भोपाली	..	न्याय शर्मा
अमित खन्ना	..	नक्श लायलपुरी
आनंद बक्षी	..	नरेन्द्र शर्मा
इन्दीवर	..	प्रेम धवन
इन्द्रजीत सिंह तुलसी	..	प्रकाश मेहरा
इरशाद	..	प्रदीप
उद्धव कुमार	..	भरत व्यास
कमर जलालाबादी	..	मजरूह सुल्तानपुरी
कपिल कुमार	..	गाफ़िल सरवर
कमल अमरोही	..	मदन
किशोर कुमार	..	एम. जी. हशमत
कैफ़ी आज़मी	..	माया गोविन्द
गुलज़ार	..	योगेश
गुलशन बावरा	..	रविन्द्र जैन
गोपालदास "नीरज"	..	राजा मेंहदी अली खाँ
जी.एल. रावल	..	रामअवतार त्यागी
टी.के. गोयल	..	राजेन्द्र कृष्ण
जाँ निसार अख्तर	..	वर्मा मलिक

विट्ठल भाई पटेल

विश्वा मित्र आदिल

शहर यार

शकील बदायूनी

शमीम जयपुरी

शैलेन्द्र

संतोषानंद

साजन देहलवी

एस॰एच॰बिहारी

सावन कुमार टाक

साहिर लुधियानवी

हरिवंशराय बच्चन

हसरत जयपुरी

हुल्लड़ मुरादाबादी

....

परिशिष्ट - 3

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

(हिन्दी पुस्तकें)

क्रम संख्या	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
1.	अपनी शताब्दी के नाम	दूधनाथ सिंह	-
2.	आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ	डा॰ प्रेम प्रकाश गौतम	सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा 1972
3.	आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप वर्णन	डा॰ राम शिरोमणि "होरिल"	ग्रन्थम अलीगढ़ 1979
4.	आधुनिकता की चुनौती- हिन्दी कहानी की दशक यात्रा	राजीव सक्सेना	प्रथम संस्करण
5.	उष्मा	डा॰ क्रान्ति त्रिपाठी	-
6.	उर्वशी	रामधारी सिंह दिनकर	-
7.	उर्दू साहित्य का इतिहास	श्री हरिशंकर शर्मा	-
8.	उर्दू साहित्य की सांस्कृतिक परम्परा	डा॰ रामविलास शर्मा	-
9.	एक दुनिया समान्तर	राजेन्द्र यादव	-
10.	एक सूनी नाव	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	-
11.	कवितान्तर	जगदीश गुप्त	ग्रन्थम कानपुर 1973

क्रम संख्या	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
12.	कबीर ग्रन्थावली	डा. श्यामसुन्दरदास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं. 2009
13.	काव्यानुशीलन आधुनिक-अत्याधुनिक	कुमार विमल	ज्ञानपीठ प्रा. लि. पटना, 1970
14.	काव्य के रूप	गुलाबराय	आत्माराम एण्ड सन्स, 1975
15.	काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास	शकुन्तला दुबे	-
16.	गिरिजाकुमार माथुर	डा. नगेन्द्र	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1975
17.	गीत-अगीत	सुमित्रानंदन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1977
18.	चाँदनी चूनर	शकुन माथुर	-
19.	छंद का आधुनिक रचना विधान	सुशील त्रिवेदी	राष्ट्रभाषा प्रकाशन, दिल्ली 1980
20.	छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत	डा. विनोद गोदरे	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
21.	जनता और साहित्य	शैलेश मटियानी	
22.	दीवाने ग़ालिब	सं. नूरनबी अब्बासी	ओक पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 1981

क्रम संख्या	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
23.	ध्वनि और संगीत	प्रो. ललित किशोर सिंह	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली 1977
24.	नई कहानी	सतीश जमाली विद्याधर शुक्ल	कलकत्ता
25.	नीरज के लोकप्रिय गीत	गोपालदास नीरज	हिन्दी बुक सेंटर नयी दिल्ली, 1975
26.	नाट्य शास्त्र	भरत मुनि	मोतीलाल बनारसीलाल देहली
27.	पल्लव	सुमित्रानंदन पन्त	-
28.	पाँच जोड़ बाँसुरी	विद्यानिवास मिश्र	-
29.	पाँचाली	रांगेय राघव	-
30.	पारिभाषिक शब्द संग्रह भाग पहला और दूसरा	-	सेंट्रल हिन्दी डायरेक्टरेट, मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, 1962
31.	पारसी थियेटर उद्भव और विकास	सोमनाथ गुप्त	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1981
32.	फिल्मों में प्रवेश कैसे करें	विनोद तिवारी	आनंद पेपर बैक्स दिल्ली 1977

क्रम संख्या	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
33.	भक्तिकालीन काव्य में नायिका भेद	डॉ. ध्रुव भट्टाचार्य	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1975
34.	भाषा विज्ञान	डॉ. भोलानाथ तिवारी	किताब महल, इलाहाबाद (छठा संस्करण)
35.	भारतीय लोक साहित्य	श्याम परमार	-
36.	भारतीय चल-चित्र	महेन्द्र मित्तल	-
37.	भारत की सम्पर्क भाषा	डॉ. देवीदत्त एवं डॉ. कृष्ण मधोक	-
38.	भारतीय चलचित्र का इतिहास	फिरोज रंगूनवाला	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली. 1975
39.	भारतीय दर्शन-1	डा. राधाकृष्ण अनुवादक : नंदकिशोर	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1973
40.	भारतीय फिल्मों की कहानी	बच्चन श्रीवास्तव	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
41.	मनुस्मृति	महर्षि मनु	गीता प्रेस, गोरखपुर
42.	रस सिद्धान्त	डॉ. ऋषि कुमार चतुर्वेदी	ग्रन्थायन अलीगढ़, 1981
43.	रागताल के मूल तत्व और अभिनव स्वर लिपि पद्धति :	निखिल घोष	-
44.	राग व्याकरण	विमलकांत राय चौधरी	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली 1981

क्रम संख्या	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
45.	युग की गंगा	केदारनाथ अग्रवाल	-
46.	युगचारण दिनकर	डा. सावित्री सिन्हा	-
47.	लेखनी बेला	वीरेन्द्र मिश्र	-
48.	संगीत समय-सार	आचार्य पार्श्वदेव सं. आचार्य बृहस्पति	श्री कुन्दकुन्द भारती प्रकाशन दिल्ली, 1977
49.	समकालीन हिन्दी कहानी और मूल्य संघर्ष की दिशा/ हिन्दी कहानी दो दशकीय यात्रा	सविता जैन	-
50.	समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि	बच्चन सिंह	-
51.	सहारा संग्रह	रामनारायण शुक्ल	-
52.	समाज मनोविज्ञान	श्री हंसराज भाटिया	राजकमल प्रकाशन देहली, 1969
53.	समाज और संस्कृति	सावित्री चंद ओझा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, देहली 1978
54.	सन्धिनी	महादेवी	लोकभारती, इलाहाबाद, 1965
55.	साठोत्तर कविता	सलिल गुप्त	एकला प्रकाशन, दिल्ली, 1969

क्रम संख्या	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
66.	हिन्दी उपन्यास प्रेम और जीवन	डॉ. शान्ति भारद्वाज	सुशील प्रकाशन, अजमेर, 1969
67.	हिन्दी में शब्दालंकार-विवेचन	डॉ. देशराज सिंह भाटी	अशोक प्रकाशन, दिल्ली - प्रथम
68.	शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन	डॉ. इन्द्रपाल सिंह	चौखम्बा प्रकाशन, 1967
	....		
अंग्रेजी पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकायें :	....	.....	....
69.	डायरेक्टिंग मोशन पिक्चर्स	टी.सेंट.से मारनर	कामबुरो एन.जे. लंडन, 1972
70.	इन्टरव्यूज विथ फिल्म डायरेक्टर्स	एण्डरयू सरीज	डिस्कस बुक्स/ पब्लिश्ड बाई एवोन बुक्स न्यूयार्क, 1967
71.	फिल्म कटींग रूम	अर्नेस्ट वाल्टेर	फोकेल प्रेस, लण्डन एण्ड न्यूयार्क 1976

क्रम संख्या	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
72.	फिल्म मेकिंग	बेरी कलेगन	दि थेमस एण्ड हडसन मैन्युअल्स, लंदन
73.	फिल्म डायरेक्टर	ए.ज. रेनेरटसन	फोकेल प्रेस, लंदन एण्ड न्यूयार्क 1975
74.	फिल्म एनीमेशन	जान हल्लास एवं रोजेर मनवेल	-वही-1976
75.	फिल्म सेंस	सर्जी आइन्सटीन	फेबर एण्ड फेबर लिमिटेड, लंदन, 1970
76.	गाइड टू फिल्म मेकिंग	ई. पिनकस	फोकेल प्रेस, 1969 न्यूयार्क
77.	हाऊ टू चूज़ म्यूजिक	एफ. राविलिंग	फोकेल प्रेस 1969 लंदन एण्ड न्यूयार्क
78.	हाऊ टू स्क्रीप्ट	आस्वेल ब्लेकस्टन	-वही-
79.	हाऊ मेक सिने गजेट्स	एच. वेल्डन	-वही- 1959
80.	हाऊ फिल्म	जी. वेन	-वही- 1969
81.	हाऊ टू राइट फिल्म स्टोरीज	आर. हरीशन	-वही-
82.	कम्यूनिकेशन वाया पब्लिक स्पीकिंग	हरी चंदनानी	जाइको पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1972

क्रम संख्या	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
83.	मास्टर्स आफ स्टेज एण्ड स्क्रीन	अलेक्जेंडर लिपोवस्की	प्रोग्रेस पब्लिशर्स मास्को, 1969
84.	मोशन पिक्चर कैमरामैन	फ्रीडीएस एण्ड पाल पीटर गोल्ड	फोकेल प्रेस, 1972
85.	मेकअप	विसेंट जे.आर.केहों	-वही-1978
86.	मेकिंग ए फिल्म	एल.हार्ड्रेलन	-वही-1952
87.	म्यूपिलस् थियेटर फ्राम दि बाक्स आफिस टू दि स्टेज	माइक डेविडो	प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को
88.	स्पेशल इफेक्टरस	रेयमन्ड फीलिडींग	फोकेल प्रेस, लंदन एण्ड न्यूयार्क 1977
89.	दि टेक्नीक आफ फिल्म एडीटिंग	कार्ल रेज एण्ड गवीन मिल्लर	फोकेल प्रेस, न्यूयार्क, 1975
90.	दि टेक्नीक आफ फिल्म म्यूजिक	रिचार्ड आर्नेल एण्ड पीटर	-वही-1975
91.	टेलीविजन	वी.एफ.सामोलोय बो.पी.रवरोयोमोय	मीर पब्लिशर्स मास्को
92.	दि टेक्नीक आफ दि साउंड स्टूडियो	अलेक निस्बत	फोकेल प्रेस, 1977

क्रम संख्या	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
93.	दि टेक्नीक आफ स्क्रीन प्ले राइटिंग	यूज़ीनवले	यूनिवर्सल लाइब्रेरी ग्रोसेर एण्ड डनलप पब्लिशर्स, न्यूयार्क, 1972
94.	दि मूवीज़	हेरमन बोडी	मार्डीन केवेन्डिश बुक्स लंदन, 1970
95.	•	रिचार्ड ग्रिफीथ, आर्थर मेयर	बोननजा बुक्स, न्यूयार्क 1957

पत्रिका :

96. सिने ब्लिट्ज

97. स्टार डस्ट

98. फिल्म फेयर

99. स्क्रीन

100. फिल्म इण्डस्ट्री

परिशिष्ट - 4

सिने गीत की रिकार्डिंग

जब किसी रिकार्डिंग थियटर में प्रवेश किया जाय तो सौ के लगभग वाद्य-वादक कलाकार अपने वाद्यों के साथ {जिसमें छोटी सी बांसुरी से लेकर बड़े पियानो तक होते हैं} मौजूद मिलते हैं। हर वाद्य यंत्र के लिए एक लकड़ी के स्टेण्ड पर एक लिखित संगीत आलेख रहता है जो पाश्चात्य शैली में लिखा होता है।

विभिन्न कोणों पर चार-पांच माइक्रोफोन रखे जाते हैं जो एक जैसे वाद्य-यंत्रों के कंपन को प्रभावोत्पादक ढंग से पकड़ते हैं।

वाद्य यंत्रों में भारतीय भी होते हैं जैसे सारंगी, सितार, तबला, जल तरंग आदि। लेकिन बहुतायत पश्चिमी वाद्यों की ही होती है। जैसे - वायलिन, बोंगो, ड्रम, गिटार, पियानों आरगन, कर्नसटिना आदि।

गाने की भाषा हिन्दी या उर्दू या भारत की अन्य प्रान्तीय भाषा होते हुए भी अधिकतर सिने गीतों का संगीत पाश्चात्य सुरों के आवरण में बांधा जाता है। भारतीय और पाश्चात्य संगीत का संगम बुरा हो ऐसी कोई बात नहीं है। इसी संगम से हमें अनेकों कालजयी जनप्रिय गीत मिले हैं। भारत में पाश्चात्य पहनावा, पाश्चात्य जीवन पद्धति, विदेशी पाप संगीत के प्रति रुचि जनप्रिय है और विशेष तौर पर औद्योगिक शहरों में तो जीवन की यही शैली चल रही है। इसीलिए पाश्चात्य संगीत भी गीतों पर छाया हुआ है।

कुछ अपवाद भी है । कुछ संगीत निर्देशक केवल भारतीय वाद्य-यंत्रों का ही प्रयोग करते हैं और रागों का चयन करके शास्त्रीय ढंग से धुने बनाते हैं । लेकिन अधिकतर जनप्रिय संगीत निर्देशक भारतीय और पाश्चात्य संगीत को मिलाकर ही पेश करते हैं जो जितना सफल संगीतकार है वो उतने ही ज्यादा वाद्यंत्रों का प्रयोग करता है । इस बड़े हाल के पार्श्व में दो साउंड प्रूफ छोटे कमरे भी होते हैं । एक गायक/गायकों के लिए आरक्षित रहता है । यहाँ से सारी जगत प्रसिद्ध आवाजें गाती हैं जो भारतीय सिनेमा में सुनी जाती है । लता मंगेशकर, आशा भोसले, मोहम्मद रफी, किशोर कुमार, मुकेश, तलत महमूद एवं अन्य - चाहे एकल गान हो या युगल गान हो या कभी कभी कोरस ।

सारे माइक्रोफोन एक रिकार्डिंग मशीन से सम्बन्धित होते हैं जो दूसरे कमरे में स्थापित होती हैं जहाँ रिकार्डिस्ट और उसके सहयोगी अपने सामने की मशीन के कई लट्टूओं और चाभियों का नियंत्रण करते हैं । इनके द्वारा वे अलग अलग माइक्रोफोनों से उपलब्ध ध्वनियों को घटा-बढ़ाकर गीत के बोलों को मिलाकर, तबला एवं अन्य ताल-वाद्यों के साथ सिने गीत की रिकार्डिंग करते हैं । कभी-कभी केवल एक ही वाद्य जैसे बाँसुरी या सारंगी क्लरिनेट या सेक्साफोन को ही महत्त्व दिया जाता है या एक साथ बजती हुई पूरी वायलनों को पंक्ति को । शब्दों और संगीत में संतुलन के लिए तालमेल रिहर्सल आदि में लगभग दो घंटे लगते हैं । जब रिकार्डिस्ट और संगीत निर्देशक (जो रिकार्डिस्ट के साथ ही बैठकर लाउडस्पीकर से आते हुए गीत को बड़े ध्यान से सुनता है) दोनों सन्तुष्ट हो जाते हैं तो रिकार्डिंग प्रारम्भ होती है । पहला टेक अक्सर ओ.के. नहीं किया जाता । साधारणतया पाँच या छः टेक लेकर उनमें से सर्वांग सुन्दर "टेक" को ओ.के. घोषित किया जाता है । यही "टेक" चुम्बकीय पट्टी

से=हिम.

से फिल्म पट्टी पर परिवर्तित किया जाता है जिससे मूल्यवान साउंड फिल्म का व्यर्थ प्रयोग बच जाता है ।

इस फिल्म पट्टी से एक प्रति धुलाई के उपरान्त फिल्म के छायांकन के लिए प्लेबैक करने हेतु रख ली जाती है और दूसरी प्रति किसी ग्रामोफोन कम्पनी को रिकार्ड बनाने हेतु दे दी जाती है ।

.....